रामेश्वरलाल खण्डेलवाल

कहानी कुसुम

(विश्वविद्यालयों की प्रारम्भिक कक्षाओं के छात्रों के
लिए चुनी हुई सरल व रोचक कहानियाँ)

सम्पादक
डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, पी-एच० डी०
रीडर, हिन्दी विभाग,
सरदार वल्लभभाई विद्यापीठ,
वल्लभ विद्यानगर

रामचन्द एण्ड कम्पनी
प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता
१, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली

सम्पादकीय निवेदन

'कहानी कुसुम' नामक यह कहानी-संग्रह भारतीय विश्वविद्यालयों की प्रारम्भिक कक्षाओं के साहित्य-अध्येता छात्रों को लक्ष्य में रखकर तैयार किया गया है। विषय वैविध्य, सरलता और रोचकता को ध्यान में रखकर ही कहानियों का चयन किया गया है। हिन्दी कहानी-लेखन की सब शैलियों, धाराओं और कला के उत्कर्ष का प्रतिनिधित्व यहाँ नहीं है—अनजाने ही किन्हीं रूपों या अंशों में संयोगवशात हो गया हो तो बड़ी भली बात ! लक्ष्य छोटा और साफ ही रखा है, बहुत ऊँचा, नील-घूमिल नहीं।

कहानी के निकटतर परिचय के लिए जितनी बातें आवश्यक समझी गई हैं वे भूमिका रूप में जोड़ दी गई हैं। प्रत्येक कहानी की मार्मिक विशेषता दर्शाते हुए लेखकों का परिचय भी वहीं दे दिया गया है। पुस्तक के अन्त में प्रत्येक पाठ पर शब्दार्थ व प्रश्नमाला भी है। कहानी-कला विषयक प्रवर्धमान विशेष जिज्ञासा की तुष्टि के लिए विद्यार्थियों के विविध ज्ञान-स्तरों के अनुरूप कुछ चुनी हुई अध्ययन-सामग्री के निर्देश का समावेश भी कर दिया गया है। आशा है, इस दृष्टि से पुस्तक विशेष उपादेय सिद्ध होगी।

विद्यार्थियों के हाथ में सत्त्वशील व रुचिकर सामग्री पहुँचे, इस बात को कहीं भी भुलाया नहीं गया है।

—सम्पादक

सूची

भूमिका

कहानी क्या है ? कहानी का महत्त्व

कहानी समाज के साथ मानव-सभ्यता के अरुणोदय काल से ही और मनुष्य के साथ उसके बचपन से ही लगी आई है। कहानी कहना-सुनना मनुष्य की एक जन्म-जात स्वाभाविक प्रवृत्ति है। किसीकी भी कोई चर्चा चल रही हो, हम कान लगा-कर सुनने लग जाते हैं, पाँच-सात आदमी इधर-उधर से आकर सड़क पर इकट्ठे हुए नहीं कि हम भी तुरन्त लपककर पहुँच जाते हैं, काम हर्ज हो रहा हो फिर भी दो-चार मिनट और ठहर जाते हैं। और दफ्तर में देर से पहुँचने का कोई बहाना गढ़ लेते हैं। बात यह है कि मनुष्य मानव-समाज का ही अंग है, इसलिए उसे अन्य मनुष्यों के बारे में जानने के द्वारा मानो अपनी ही निजी बात जानने को मिलती है। अपने से किसे प्रेम नहीं है ? कहानी में मनुष्य अपने-से अन्य मनुष्यों के चरित्र, क्रिया-व्यापार, आचरण-व्यवहार के बारे में पढ़कर मानो अपने को ही देखता है, अपना ही अध्ययन करता है, अपने ही चरित्र व स्वभाव के रहस्यों को जानकर अपनी जिज्ञासा को शान्त करता है, और इसी में उसके मन का अनुरंजन होता है। दादी-नानी की गोद से ही हम अपनी इस प्रवृत्ति को अंकुरित करने लगते हैं। चाहे राजा और रानी को हमने देखा भी न हो व कहानी के कई शब्द खाक समझ में न आवें, पर दादी-नानी की आँख से आँख मिलाकर बस करते चलेंगे—'हूँ, हूँ'।

साहित्य भी तो जीवन में से आता है। इसलिए उसमें भी कहानी का महत्त्व हो तो क्या आश्चर्य ? साहित्य में नाटक, कविता, उपन्यास, निबन्ध आदि बहुत-सी विधाएँ होती हैं, पर कहानी भी एक बड़ी महत्त्वपूर्ण विधा है और उसके बिना साहित्य का काम नहीं चलता। कहानी का काम दूसरी कोई विधा नहीं सारती। सबका अपना-अपना महत्त्व जो है ! अंगूर, अनार, संतरा एक-दूसरे के स्थानापन्न कैसे हों ! बस, तो कहानी, कहानी ही है और, और। कैसे ? वृत्त या कथा-सूत्र से रहित कविता सामान्य व्यक्ति की समझ में ज़रा देर या कठिनाई से आएगी। कविता में प्रायः ऊँची और सूक्ष्म बातें होती हैं, आदर्शों और कल्पनाओं की ऊँची

उड़ानें होती हैं। भाषा की लक्षणा और व्यंजना शक्तियाँ लगती हैं। कविता के अर्थ और मर्म को समझने में थोड़ी अपनी कल्पना की पूँजी भी चाहिए। एक विशेष मानसिक स्तर की भी आवश्यकता है। इसलिए कहानी, जो सामान्यत: सबके लिए सुगम होती हैं, का स्थान कविता नहीं ले सकती।

नाटक का मज़ा तो देखने में ही आता है, वे मुख्यत: अभिनय के ही लिए होते हैं। केवल पढ़ने ही के लिए लिखे गए नाटक से हम केवल कहानी के अंश का ही आनन्द लेते हैं। पर यह तो कहानी का ही महत्त्व हो गया। फिर, यदि नाटक का अभिनय देखा जाय तो पैसा चाहिए, समय चाहिए, धैर्य चाहिए। मतलब यह कि नाटक का महत्त्व अपनी जगह पूर्ण सुरक्षित है, पर कहानी का स्थान तो वह भी नहीं लेता।

उपन्यास प्राय: मोटा पोथा होता है। अवकाश हो, आराम के साथ बैठने को मिले, बहुत देर तक या बहुत दिनों तक पढ़ते जाने का धैर्य हो तो उपन्यास पढ़ा जाय। छोटी कहानी का स्थान वे उपन्यास कैसे लें जिनके साथ ये बातें लगी हैं। हाँ, उपन्यास का सारांश उतार लो भले ही, पर वह कहानी नहीं है, यह न भुला बैठना।

एक और महत्त्वपूर्ण विधा है 'निबन्ध'। पर उसमें मानवीय घटना-व्यापारों की विवृत्ति नहीं होती। हाँ, भावात्मक या कल्पना-प्रधान निबन्धों में अवश्य मन को सहलाने-पलुहाने का सामान होता है, पर निबन्ध तो चीज़ ही जरा गरिष्ठ होती है। लिखने और समझने में—दोनों में बुद्धि लगती है। और निबन्धों की एक जाति होती है—विचारात्मक निबन्ध। बस, उससे तो राम बचावें। लोहे के चने हैं। कहाँ तो रसीली, प्रवाही, झट-से गले उतरने वाली, हँसमुखी-सी कहानी और कहाँ निबन्ध !

तो इस समय अपने मतलब की बात यह है कि कहानी का अपना एक निजी और स्वतन्त्र अस्तित्व है और यही उसका महत्त्व है। साहित्य में इसीलिए आज कहानी को इतना ऊंचा स्थान मिल गया है। चारों तरफ काम लगे हुए हैं। थोड़ा-सा समय है, बस एक कहानी पढ़ जाइए। मनोरंजन हो जायगा। ज्ञान भी तो शायद बढ़ेगा। न जाने कितने तरह के आदमी मिलेंगे इसमें—कितने व्यवसाय

वाले, ग्रायु वाले, स्वभाव वाले (सिड़ी, चिड़चिड़े, लोभी, कंजूस, मक्खीचूस, दानी, उदार ग्रादि), पद वाले, ग्रार्थिक व बौद्धिक स्तर वाले। ग्रौर हाँ, समाज, दर्शन, धर्म, कला, ज्योतिष, राजनीति, मनोविज्ञान, कृषि, विज्ञान ग्रादि की बातें भी तो बातों ही बातों ग्रापको मालूम हो जाएँगी। समाज की, व्यक्ति की, बालकों की, देश की, शिक्षा की क्या समस्याएँ हैं, क्या गुत्थियाँ हैं, क्या गाँठें हैं, क्या पेचीदगियाँ हैं—सभी कुछ तो ग्रापको जानने को मिलेगा। भाँति-भाँति के ग्रादमी मिलेंगे—जादूगर, मदारी, सँपेरे, झाड़-फूंक वाले, मछियारे, बुढ़िया के बाल बेचने वाले, बनजारे, मोटी तोंद वाले, ज्योतिषीजी, भगतजी, जासूस, थानेदार, गुंडे, फूल से सुकुमार बच्चे, मीठी माँ, राखी हाथ में लिये बहन, ताऊ, ताई, मास्टरजी, खालसाजी, बंगाली बाबू, सेठजी, लम्बे हाथ फेंक-फेंककर ग्रगली-पिछली सुनाने वाली देवरानियाँ-जेठानियाँ, दया के समुद्र दाने बुजुर्ग, बुड्ढे खुर्राट, ग्रौर क्या नहीं !

कितना परिचय, कितनी ज्ञान-वृद्धि, कितना मनोरंजन, ग्रपने को ग्रौर दुनिया को समझकर बुद्धिमान ग्रौर विवेकी बनने का कितना मसाला—इत्ता सारा, ढेर का ढेर, सब कुछ इस छोटी-सी, हल्की-फुल्की कहानी में, जिसमें छोटे-बड़े सम्वादों की कैसी लहरें-सी उठ रही हैं! कैसी सहज-प्रसन्न धारा है—ग्राज की यह छोटी कहानी !

कहानी के तत्त्व

कथा-वस्तु

रोचक रीति से कहानी कही जाय पर कही जाएगी कुछ बात ही तो। नहीं तो बिना बात की बात हो जाएगी। यह बात ही वस्तु है। यही कहानी के भवन-निर्माण का प्राथमिक उपादान—ईंट, गारा, कंकड़ी, चूना है। कहानी कितनी ही कोमल कला क्यों न हो, पर 'वस्तु' तो चाहिए। एक कहानी के लिए यह वस्तु परिमाण में कितनी चाहिए—इसका नियम-निर्धारण करना बहुत कठिन है। 'उसने कहा

था' का चित्र-फलक बहुत विशाल है और 'ग्राम-गीत' (प्रसाद), 'पूस की रात' व 'बूढ़ी काकी' (प्रेमचन्द) का बहुत संक्षिप्त। पर, ये सभी कहानियाँ एकान्विति व गठन के कारण अपने ढंग से बहुत सफल व सुन्दर हैं। इसलिए कहानी के सफल कथानक के सम्बन्ध में बार-बार यही बात कही जाती है कि जो भी कथ्य, वस्तु या सामग्री हो वह सुसम्बद्ध, सुदृढ़ सुगुंफित व सुगठित हो। कदाचित् इसीलिए उपन्यास और कहानी के पृथक्करण का आधार आकार नहीं समझा जाता। रचना छोटी होकर भी उपन्यास कहला सकती है और उससे बड़ी होकर भी कहानी। वस्तु बड़ी हो पर यदि वह 'एक' (एक अनुभूति, एक संवेदना, एक प्रसंग, चरित्र का एक पक्ष आदि) हो तो कहानी के ही उपयुक्त होगी। इसी प्रकार वस्तु छोटे आकार की रचना में हो पर वह जीवन व व्यक्ति के बहुत-से पक्षों को घेरकर संक्षेप में ही कही गई हो तो भी वह उपन्यास कहला सकती है। कहानी का मूल द्रव भले ही बहुत कम हो पर वह कौशलपूर्वक विन्यस्त किये जाने पर मकड़ी के सुन्दर सुनहरी रेशमी जाले-सा तन जाता है।

कहानी के उपयुक्त कथानक के स्रोत क्या हो सकते हैं? कविवर पंत ने कहा है—'कहाँ नहीं है स्नेह? साँस सा सब के उर में!' (पल्लव) क्या हम कह सकते हैं—'कहाँ नहीं है कथा! सृष्टि के कण-कण में वह!' इस प्रकार वर्तमान जीवन, अतीत समाज, परिवार, मानव-मन, चारों ओर के वस्तु-व्यापार—सभी कुछ, कहानी की श्रेष्ठतम 'वस्तु' बनने की संभावनाओं से परिपूर्ण हैं। व्यवस्था के लिए इस विस्तार को ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक आदि वर्गों में विभाजित कर दिया जाता है।

कहानी में वस्तु का व्यवस्थापन चरमोत्कर्ष को ध्यान में रखकर ही किया जाता है। आधिकारिक कथा-वस्तु को, अनावश्यक प्रासंगिक वृत्त खड़े किये बिना, मुख्य संवेदना उपजाने की दिशा में सीधे ले जाना ही वांछित है। विकास में क्रमिकता, शृंखला व सुसम्बद्धता हो। घटना व पात्र की क्रिया-प्रतिक्रिया से तर्क-सम्मत ढंग से कहानी विकसित हो। प्रत्येक बात का विस्तृत वर्णन न करके, पाठकों की कल्पना को भी थोड़ा-सा व्यायाम देने की गुंजायश रखकर, सांकेतिक शैली में ही सब कुछ कहा जाना अच्छा समझा जाता है।

चरित्र-चित्रण

कहानी की वस्तु पात्रों के द्वारा ही अग्रसर होती है अतः वस्तु की प्रकृति कैसी भी हो, कहानी का स्वरूप या ढाँचा कैसा भी हो, पात्र की किसी न किसी रूप में आवश्यकता रहेगी ही। बिना पात्र के कहानी की कल्पना नहीं की जा सकती। हाँ, इतना अवश्य है कि कहानी में पात्रों की संख्या बहुत सीमित होती है। कहानी आकृति से प्रायः एक लघु और प्रकृति से एक कोमल रचना होती है, अतः वह उपन्यास में सुलभ घटनाओं व पात्रों का-सा भार वहन नहीं कर सकती। घटना-प्रधान, चरित्र-प्रधान, वातावरण-प्रधान—सभी प्रकार की कहानियों में पात्रों के क्रिया-कलाप आवश्यकतानुसार नियोजित होते हैं, पर चरित्र-प्रधान कहानी में पात्रों का महत्त्व सर्वाधिक होता है। घटना प्रधान व वातावरण-प्रधान कहानी में पात्र गौण, निमित्त या साधन मात्र होते हैं, पर चरित्र-प्रधान कहानी की रचना मुख्यतः पात्रों के चरित्र के उद्घाटन के लिए ही होती है। मानव के लिए मानव से बढ़कर अधिक रुचिकर, आकर्षक या आश्चर्यपूर्ण विषय और क्या हो सकता है? जब हम जीवन के विराट् धरातल पर मानव-मन के विशाल वैविध्य और सूक्ष्म वैचित्र्य को देखते हैं ता जान पड़ता है कि उसकी गहराई और बारीकी का पार कभी पा ही नहीं सकेंगे। हम सबके पास एक ही सामान्य मन है, फिर भी प्रत्येक का मन एक-दूसरे से आश्चर्यजनक रूप से विचित्र भिन्न है। कहानीकार और उपन्यासकार इस वैविध्य और वैचित्र्य का उद्घाटन करने में विशेष रस-रुचि रखता है। उनका मुख्य उद्देश्य वास्तव में सामान्य मन की खोज है। पर उस खोज के लिए यह कार्य भी बहुत आवश्यक है। जब हम कहानी-उपन्यास के माध्यम से मानव-मन की इस विचित्रता से परिचित होते चलते हैं तो धीरे-धीरे हम उदार और सहिष्णु होते चलते हैं; अपने मन की बात को हम अन्तिम और प्रामाणिक न मानकर औरों की दृष्टि और विचार को भी मानने-सराहने लगते हैं। इस प्रकार हृदय की व्यापकता बढ़ती है जो मानव-मानव को अन्ततः अधिक निकट लाती है। आज की कहानो-कला में मानव-चरित्र के विश्लेषण-उद्घाटन का महत्त्व इसलिए बहुत बढ़ गया है। पर, प्रत्येक बात में अति उचित नहीं। प्रौढ़ सजग समीक्षक कहने लगे हैं कि साहित्यकार को मानव-मन का यह उद्घाटन-विश्लेषण

एक सहृदय व भावनाशील साहित्यकार के नाते ही करना चाहिए न कि केवल मन के स्थूल व निर्जीव तथ्यों को उघाड़-उघाड़कर रखने वाले वैज्ञानिक या मनोवैज्ञानिक के नाते। एक सफल व सजग कहानीकार अपने साहित्यिक दायित्व को ध्यान में रखकर ही सूक्ष्म स्पष्ट व पुष्ट रेखाओं में बड़े सधाव के साथ अपने पात्रों के चरित्र का अंकन करता है। उपन्यासकार के पास अधिक अवकाश होता है अतः वह पात्रों के चरित्र के अनेक पक्षों या सभी पक्षों को एक साथ उठाकर उनका विशद निरूपण कर सकता है, पर कहानीकार अपने पात्रों के चरित्र के प्रायः एक पक्ष या विशेषता को ही संकेत या व्यंजना की शैली से प्रस्तुत करता है।

पात्रों के चरित्र के निरूपण की तीन प्रतिष्ठित शैलियाँ या पद्धतियाँ हैं— १. तथ्य-कथनात्मक या वर्णनात्मक, २. संवादात्मक या अभिनयात्मक, और ३. संकेतात्मक या व्यंजनात्मक। चारित्रिक विशेषताओं का लेखक द्वारा सीधा कथन या वर्णन कलात्मक नहीं समझा जाता; यदा-कदा इसका प्रयोग हो सकता है, पर सर्वत्र यही पद्धति लेखक की चरित्र-चित्रण कला की असमर्थता की द्योतक है। संवादात्मक पद्धति अपेक्षाकृत उत्तम है, पर उसकी अपनी मर्यादा है; संवादात्मकता का आद्यन्त निर्वाह तो नाटक की अपनी पद्धति है, कहानी की नहीं। वास्तव में चरित्र-निरूपण की कलात्मक पद्धति संकेतात्मक या व्यंजनात्मक ही समझी जा सकती है। घटना-क्रम अथवा कार्य-व्यापार द्वारा पात्रों का मूल चरित्र स्वतः ही प्रकट होता चले। न लेखक अपनी ओर से 'कनवैसिंग' करे और न पात्रों के मुख से ही किसी के गुणावगुण का अनुचित या अमर्यादित बखान हो। साहित्य मूलतः कल्पनात्मक आनन्द या अनुरंजन की कला है। इस दृष्टि से हम इस तथ्य तक पहुँचे-से लगते हैं कि चरित्रांकन में ध्वनि-पद्धति का उपयोग ही कला की दृष्टि से सर्वोत्तम है। पर आज के बहुत-से लेखक संभवतः रस-निष्पत्ति को कहानी का उद्देश्य या दायित्व मानना पसन्द न करेंगे, क्योंकि आधुनिक कहानी ने यथार्थ की भूमि पर जीवन के अध्ययन, विश्लेषण व व्याख्या को ही अपना विशेष दायित्व मानकर अपने व्यक्तित्व का स्वतन्त्र ढंग पर विकास कर लिया है। अतः कथन, संवाद व व्यंजना—चरित्र-चित्रण में तीनों ही पद्धतियों का, लेखक के रुचि वैचित्र्य के अनुसार, प्रयोग दिखाई पड़ता है।

पात्रों की रचना तभी गतिशील मानी जाती है जब कि पात्र लेखक के निजी आदर्शों की पूर्ति के लिए नियोजित न होकर—यन्त्र-चालित पुतलियों से पराधीन न रहकर—अपना स्वतन्त्र अस्तित्व लिए कहानी की धारा में कार्य-कारण नियम के अनुसार अथवा निजी प्रवृत्तियों व संस्कारों से प्रेरित होकर विकासशील (नैतिक-अनैतिक दृष्टि से नहीं, कला की दृष्टि से) बने रहें।

पात्र दो प्रकार के होते हैं—वर्ग-पात्र और व्यक्ति-पात्र। वर्ग-पात्र एक व्यापक वर्ग के प्रतिनिधि होते हैं जो अपनी निजी या एकान्त नवीन विशेषताएँ नहीं रखते। इसी कारण वे तुरन्त समझ में आ जाते हैं—मन में इस प्रकार जल्दी उतर जाते हैं मानो छन्ने में से पानी। ऐसे पात्रों से सामान्यतः शीघ्र ही हमारा तादात्म्य हो जाता है। दूसरे पात्र व्यक्ति-पात्र कहलाते हैं जिनकी रुचि-प्रकृति में एक वैचित्र्य, असाधारणता या निरालापन होता है। मनोवैज्ञानिक बारीकी का इज़हार करने वाले लेखक व्यक्ति-पात्रों के निर्माण में अधिक उत्साह से प्रवृत्त होते हैं। पर, समीक्षकों का विचार है कि वर्ग-पात्र बनाना भी कोई आसान काम नहीं। मानव मन की व्यापक और गहरी पहचान रखने वाले ही इस क्षेत्र में सफल हो पाते हैं। फिर भी, साधारणतः, व्यक्ति पात्रों का सफल निर्माण ही आज की चरित्र-चित्रण कला का मानदण्ड है।

संवाद

'संवाद' कहानी का तीसरा तत्त्व है। लेखक सब कुछ पात्र और पाठक के बीच में आकर, स्वयं कहता चले—यह बात पाठकों को बहुत रुचिकर नहीं लगती। पाठक रचना में निबद्ध पात्रों के साथ घनिष्ठता स्थापित करना चाहते हैं, उनके कार्य-कलापों को प्रत्यक्ष देखना चाहते हैं, उनकी बात अपने ही कान से सुनना चाहते हैं। इस दृष्टि से कहानी में पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप या संवाद का विधान कहानी की रोचकता व प्रभावशालिता के लिए बहुत आवश्यक है (पर आदि से अन्त तक संवाद से ही काम नहीं चल पाता। पात्रों को कार्य-व्यापारों की धारा में बहाना भी आवश्यक होता है)। अच्छे संवादों की कुछ विशेषताएँ होती हैं : संवाद छोटे, चुस्त, सरल, सार्थक, स्वाभाविक—पात्रों की आयु, पद, ज्ञान-

स्तर, व्यवसाय आदि के अनुरूप हों; कथा की धारा को विकसित करने वाले हों व पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालने वाले हों। इन गुणों या विशेषताओं से युक्त संवाद ही रोचक होते हैं और कहानी के प्रभाव को अभिवृद्ध करते हैं। संवादों में लम्बी सैद्धान्तिक भाषणबाजी या तत्त्व चिन्ता की बातें शैथिल्य उत्पन्न कर देती हैं। हाँ, जहाँ भावोत्कर्ष या विचारोत्कर्ष हो वहाँ प्रसंग व परिस्थिति के अनुसार संवादों के स्वरूप में वांछित विशेषता उत्पन्न की जा सकती है।

देश-काल का चित्रण

प्रत्येक कहानी किसी देश या काल से सम्बन्धित रहती है। कहानी को सत्यता या यथार्थता का रंग देने के लिए यह आवश्यक है कि देश और काल सम्बन्धी तथ्य या विवरण यथासंभव सही हों। वर्तमान जीवन, देश व काल से तो लेखक प्रायः सुपरिचित रहते ही हैं। पर ऐतिहासिक कहानियों में, निरूपित युगों में इस प्रकार का विचार बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। विशेष ऐतिहासिक युगों के जीवन, वेश-भूषा, आचार-विचार, रीति-नीति आदि का सम्यक् व निभ्रांत ज्ञान हुए बिना उन युगों से सम्बन्धित कहानियाँ लिखना अनधिकार चेष्टा है। जहाँ इतिहास स्वयं मौन हो वहाँ शृंखला जोड़ने की दृष्टि से तर्क-सम्मत कल्पना की जा सकती है। गृहीत ऐतिहासिक वृत्त में कलात्मक चमत्कार या प्रभाव-वृद्धि के लिए प्रसंगों या घटनाओं का थोड़ा-बहुत व्यतिक्रम या स्थानान्तरण भी विहित समझा जाता है या समझा जा सकता है—यदि सत्य की हानि न हो और अर्थ का अनर्थ न हो। ऐतिहासिक सत्य को साहित्य में व्यापक सत्य बनाया जाता है, इस दृष्टि से एक सीमा तक ऐसा किया जाना कदाचित् साहित्यकार का लाइसेंस भी हो।

शैली

'शैली' कहानी का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अन्तरंग तत्त्व है। वस्तुतः शैली ही एक ऐसा तत्त्व है जो किसी भी रचना को उसका एक स्वतन्त्र साहित्यिक व्यक्तित्व

(Character) प्रदान करता है। प्रत्येक लेखक की शैली अपनी निजी होती है; उस पर उसके व्यक्तित्व की गहरी छाप होती है। शैली लेखक के व्यक्तित्व से सहज सम्भूत होती है, वह बनाई नहीं जाती, उधार नहीं ली जाती और उसका सफलता-पूर्वक अनुकरण नहीं हो पाता। एक ही विषय पर दस लेखक कहानियाँ लिखेंगे पर विषय की समानता होते हुए भी व्यक्तित्व-भेद से शैली में भो भेद होगा। सामान्यतः शब्द, पद-प्रयोग, वाक्य-रचना, लोकोक्तियों व मुहावरों का प्रयोग, शब्द-शक्ति अलंकार-विधान आदि बातों का विचार 'शैली' के अन्तर्गत होता है। 'प्रसाद', प्रेमचन्द, अज्ञेय, भगवतीचरण वर्मा आदि लेखकों की शैलियों में उनकी निजी विशेषताएँ देखी जा सकती हैं।

'शैली' को थोड़ा और व्यापक बनाकर भी हम उसे देख सकते हैं। जैसा कि ऊपर कहा चुका है, शैली के अन्तर्गत सामान्यतः भाषा-शैली, वर्णन, रस-व्यंजना, अलंकार आदि तो आते ही हैं पर उसमें हम वस्तु-निवेदन की पद्धति तथा कहानी के ढाँचे या रूप (form) (कथा, आत्म-कथा, पत्र, डायरी आदि) को भी सम्मिलित करके शैली को व्यापक रूप भी प्रदान कर सकते हैं। इस प्रकार कहानी के आरम्भ, अन्त और ढाँचे का विचार भी यहाँ प्रसंग-प्राप्त समझा जा सकता है।

कहानी का आरम्भ एक महत्त्वपूर्ण शैली तत्त्व है। शैली तत्त्व लेखक के व्यक्तिगत रुचि-वैचित्र्य से सम्बन्धित है अतः 'आरम्भ', जिसका विधान लेखक अपनी रुचि के अनुसार ही करता है, का समावेश 'शैली तत्त्व' में सहज ही किया जा सकता है। कहानो का आरम्भ कई प्रकार से किया जा सकता है—किसी शाश्वत कथन या दार्शनिक कथन से, प्रकृति के किसी दृश्य खण्ड के रसात्मक वर्णन की पृष्ठभूमि से, कहानी की प्रकृतधारा के बीच की कड़ी से सम्बन्धित किसी विषय पर संवाद से अथवा ऐतिहासिक वर्णनात्मक पद्धति को अपनाकर व्यक्ति, स्थान आदि के परिचय से।

इसी प्रकार कहानी का अन्त भी लेखक किसी चिर लालित-पालित उद्देश्य या आदर्श की पूर्ति के रूप में ही प्रायः करते हैं। लेखक जहाँ किसी प्रश्न या जिज्ञासा में हमें गहरा छोड़ देता है, या कोई रहस्य का भेदन या उद्‌घाटन हो जाता है, घंटे के ठोके के समान एक गहरा ठोका मन पर मारकर हमें झनझना देता है या घंटों

चुपचाप, कोई भीतरी गूँज (अनुरणन) सुनते रहने को असहाय-सा छोड़ देता है, या संकेत से जीवन का कोई गहरा सत्य झंकृत-ध्वनित कर देता है वही 'अन्त' सबसे अधिक कलात्मक समझा जाता है। जहाँ जिज्ञासा की सकारण शान्ति हो जाती है या कोई नैतिक उपदेश दिया जाता है, निष्कर्ष-कथन किया जाता है या समस्या का स्पष्ट समाधान दे दिया जाता है, वहाँ 'अन्त' इतना रोचक नहीं समझा जाता। हमारी कल्पना को उत्तेजित करने वाला, हमारी बुद्धि को झँझोड़ने वाला, हमारे मर्म को सहलाने-पपोलने वाला 'अन्त' हमें कहता चला जाता है—देखो, मुझे भूलना मत !

सुन्दर व कुतूहलवर्द्धक शीर्षक देना भी उत्तम लेखकीय गुण है।

उद्देश्य

यों तो किसी भी कला-कृति का सर्वोच्च उद्देश्य शुद्ध आनन्द ही होता है, पर आज की कहानी के सामने अपना एक स्पष्ट उद्देश्य है। शिक्षा मनोरंजन व उत्प्रेरण तो कथा-साहित्य का सामान्य उद्देश्य है। घटनाओं से जड़ी हुई रसात्मक इतिवृत्त-धारा अब कहानी का रूप नहीं रहा। कहानी अब सिमट गई है। कहानी के बहाव पर दृष्टि डालने पर प्रकट होता है कि अब मनोरहस्यों को खोलने और चरित्रों के गुण-दोषों का उद्घाटन करने के लिए एक छोटी-सी वृत्त-भूमि पर जीवन के चित्र या झलकियाँ देना ही प्रायः पर्याप्त समझा जाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति जितनी ही सुकरता के साथ, संक्षेप में और प्रभावोत्पादक ढंग से कर दी जाती है उतनी ही कहानी सफल समझी जाती है।

कहानी का आदर्श

प्रत्येक वस्तु, भाव, विचार, स्थिति आदि का एक आदर्श कल्पित रूप पहले से ही सदा हमारे मन में रहता है, और उसी को अपने दृष्टि बिन्दु में रखकर हम किसी वस्तु, भाव आदि को पूर्णता की ओर ले जाने का अनवरत प्रयत्न करते रहते हैं। यह कल्पित आदर्श कभी पूर्ण हो सकेगा भी कि नहीं इसमें सन्देह है, पर

हमारे प्रयत्नों को वह अवश्य नियंत्रित करता है। कहानी के सम्बन्ध में भी यही बात ठीक है। कहानी के कितने तत्त्व या उपकरण होते हैं, इतने के ज्ञान मात्र से ही कहानी नहीं बन जाती। सामान्यत: कहानी लिखना एक सरल-सा कार्य जान पड़ता है पर वास्तव में यह अत्यन्त श्रमसाध्य है व हमारे उच्चकोटि के रचना-कौशल की अपेक्षा रखता है। कहानी की उपादान वस्तु, उसके उपकरण, रचना का लक्ष्य, रचना-पद्धति या प्रक्रिया, कहानी का पूर्व-कल्पित ढाँचा और उसकी निरूपण योजना—जब तक इन बातों का स्पष्ट ज्ञान न हो तब तक एक सफल व कलात्मक कहानी का निर्माण नहीं हो सकता। 'कहानी का आदर्श' का अर्थ है—कहानी का वह चरम रूप जिसे हम ध्यान में रखकर अपनी कहानी को पूर्ण निर्दोष, व प्रभावशालिनी बनाते हैं या बना सकते हैं। यह चरम या आदर्श रूप क्या है, इस पर विद्वानों ने अनेक प्रकार से विचार किया है।

आदर्श कहानी वह है जिसका विस्तार ३००० से १२००० शब्दों तक का हो अथवा जो आधा से लेकर दो घण्टे तक के समय में पढ़ी जा सके। कहानी की विषय-वस्तु क्या हो, इस पर कोई विशेष प्रतिबन्ध नहीं है। कहानी हमारे जीवन का कोई भी अनुभव हो सकती है; कोई भी मार्मिक दृश्य, जीवन का प्रसंग, घटना, स्थिति या व्यापार कहानी हो सकता है; किसी व्यक्ति के चरित्र के एक महत्त्वपूर्ण अंग या पक्ष उद्‌घाटन हो सकता है; जीवन की, समाज की, व्यक्ति की कोई समस्या हो सकती है; मन का कोई सूक्ष्म भाव या विचार हो सकता है। बस मुख्य शर्त यही है कि उपर्युक्त मर्यादा में रहकर वह विषय-वस्तु (जिसके विभिन्न रूप ऊपर बताये गए हैं) से सम्बन्धित एक गहरी व मार्मिक संवेदना हम में छोड़ जाय। देश या काल का कितना ही फैलाव हो, उसमें 'एकता' (Unity) का पूर्ण निर्वाह हो। जिस संवेदना की उत्पत्ति कहानी के चरमोत्कर्ष (Climax) पर लेखक को इष्ट हो उस पर टकटकी लगाकर प्रत्येक शब्द, प्रत्येक कथन, प्रत्येक स्थिति-चित्रण, प्रत्येक व्यापार—सब कुछ उसी चरम सिद्धि के लिए नियोजित कर दिया जाय। लेखक की दृष्टि इंजीनियर की आँख की तरह सारे कहानी-भवन पर एक साथ टिकी रहे। आदि से अन्त तक एक गहरी जिज्ञासा या कुतूहल पाठक के मन में बना रहे;—घटना-प्रधान या विवरणात्मक कहानियों में ही जिज्ञासा या

कुतूहल बना रहता है, ऐसा समझना सदा ठीक नहीं। कहानी के गम्भीर पाठकों को मानव-चरित्रों की भीतरी उधेड़-बुन, जो घटनाओं के प्रेमी पाठकों को ऊबाने वाली जान पड़ सकती है, में भी गहरी जिज्ञासा रहती है, क्योंकि वे मानव-चरित्रों के रहस्यों को आँख खोलकर प्रत्यक्ष देखते हैं।

कहानी का सफल चरमोत्कर्ष बहुत-सी बातों पर निर्भर है। कहानी की रूप-रेखा स्पष्ट हो। अनावश्यक व निरर्थक पात्रों व व्यापारों की भद्दी भरती न हो। सब कुछ गड्डमड्ड या गिच-पिच न हो जावे। कंजूस के पैसे की तरह एक शब्द का भी अनावश्यक या अनुचित प्रयोग न हो। लेखक कोरी भावुकता, प्रकृति-प्रेम, वर्णनशक्ति या पाण्डित्य के प्रदर्शन के लिए अनावश्यक वर्णनों के चक्कर में न फँसे। जहाँ वर्णन मूल संवेदना की उत्पत्ति के लिए अनिवार्य हो वहाँ अवश्य उनका समुचित प्रयोग हो सकता है। तत्त्वों के उपयोग में उचित अनुपात का ध्यान रहे; सुन्दर समलंकृत शैली का प्रयोग तो हो रहा है पर संवाद में तनिक भी रोचकता-स्वाभाविकता नहीं, या चरित्र की रेखाएँ उभर ही नहीं रही हैं, अथवा चरित्र-चित्रण में इतने लीन हो गए कि वस्तु का धागा या डाल किधर है, कहीं नहीं दिख रही—ऐसी स्थिति उचित नहीं। ऐसा होने पर अनुपातहीनता के कारण कहानी का प्रभाव शिथिल हो जाएगा। कहानी का प्रत्येक अवयव अन्य अवयवों की तुलना में उचित अनुपात में हो और पूर्ण अंग के साथ उसकी संगति भली-भाँति बैठे। सब प्रकार का संवादित्व (Harmony) हो। कहानी की पूरी डिज़ाइन सुडौल स्पष्ट व साफ रेखाओं से अंकित हो, फिर चाहे उसमें खूब घना बारीक काम किया गया हो। वह जीवन का छोटा ही चित्र हो, पर हो वह अपने-आप में पूर्ण। हम छोटे-से गवाक्ष में से दूर-दूर की क्षितिज व्यापी सुन्दरता का आनन्द ले लें। कहानी ओस बिन्दु के समान हो, जो लघु होकर भी अपनी रचनागत सुडौलता में पूर्ण हो।

इस प्रकार, संक्षेप में कहानी का आदर्श रखा जा सकता है।

कहानी का विकास और हिन्दी कहानी

'कहानी' शब्द संस्कृत की 'कथ्' (कहना) धातु से निकला जान पड़ता है। मानव अपने मन के भावों व विचारों को अभिव्यक्त करने में एक विशेष सन्तोष का अनुभव करता है। अभिव्यक्ति ही कला-साहित्य का मूल है। साहित्यिक अभिव्यक्ति अनेक रूपों में होती है—नाटक, काव्य, उपन्यास, कहानी आदि। कहानी के रूप में मानवीय अभिव्यक्ति अत्यन्त प्राचीन है। अपने कथ्य को पात्र, घटना व न्यूनाधिक कल्पना के सहारे रुचिवर्द्धक ढंग से कहना सदा से मानव को प्रिय रहा है। मानव सदा से अपने सुख-दुःख मूलक अनुभवों को दूसरों को सुनाने का प्रेमी रहा है। इसलिए साहित्य (लोक-साहित्य व नागर साहित्य, दोनों ही) प्रायः कहानी (व्यापक अर्थों में) की पद्धति से ही प्रकट हुआ है। ललित साहित्य के प्रायः सभी रूपों में कोई न कोई आधारभूत कहानी होती है। जीवन ही मानव का सबसे बड़ा विषय है। जीवन की कहानी ही हमारे साहित्य में अभिव्यक्त होती है। इस प्रकार जीवन व साहित्य में कहानी का महत्त्व निर्विवाद है। संसार की सभी प्राचीन व नवीन जातियों के जीवन व साहित्य में कहानी का यह महत्त्व देखा जा सकता है।

इन व्यापक अर्थों में कहानी का प्रयोग भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। ऋग्वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत, बौद्ध जातक आदि ग्रन्थों में कहानियों का समुद्र भरा पड़ा है। पैशाची प्राकृत में गुणाढ्य की 'बृहत्कथा' एक अत्यन्त लोकप्रिय कथा-संग्रह रहा है। सोमदेव का 'कथासरित्सागर' तथा क्षेमेन्द्र की 'बृहत्कथामंजरी' आदि रचनाएँ संस्कृत साहित्य की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। पंचतंत्र और हितोपदेश की कहानियों ने संसार को मुग्ध किया है। रामायण, महाभारत और पुराण की कहानियाँ तो अगणित महाकाव्यों, खण्ड काव्यों, नाटकों व अन्य कृतियों (चम्पू-काव्य, कथा-प्रबन्ध आदि) की उपजीव्य रही हैं। कालिदास, भवभूति, भारवि, माघ आदि कवियों ने अपने कथानक प्राचीन कथाओं से ही लिये हैं। प्राचीन कहानियों का उद्देश्य मनोरंजन, लोक-शिक्षण, व्यवहार-ज्ञान, उपदेश व जीवन-तत्त्व की सरल व रोचक व्याख्या करना रहा है।

अरबी-फारसी की अनेक कहानियाँ भी हमारे देश में प्रचलित रही हैं। अलिफ

लैला, हातिमताई, लैला-मजनूं, शीरीं-फरहाद, किस्सा तोता-मैना, गुलबकावली आदि किस्से-कहानियाँ लोकप्रिय रहे हैं।

हिन्दी के वीरगाथा काल व भक्ति काल के अनेक महत्त्वपूर्ण काव्य-ग्रन्थ कथात्मक ही हैं। प्रेमाश्रयी निर्गुण भक्ति शाखा के कवियों की प्रेमगाथाएँ रसीली कहानियाँ हैं। अन्य छोटी-बड़ी अगणित रचनाएँ किसी न किसी कहानी को आधार बनाकर लिखी गई हैं।

आज की नई हिन्दी कहानी का इतिहास सन् १९०० से आरम्भ हुआ समझा जाता है। यद्यपि इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी', सदल मिश्र का 'नासिकेतोपाख्यान', राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिन्द' का 'राजा भोज का सपना' और भारतेन्दु का 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' आदि रचनाएँ पहले लिखी गई थीं। पर उनमें नई कहानी की विशेषताएँ बहुत कम थीं। प्रथम दो रचनाओं में तो प्राचीनता ही अधिक मुखर थी अन्तिम दो में नवीन का कुछ आभास मात्र था। सन् १९०० से नई रंगत की कहानियों का श्रीगणेश हुआ। किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी, पं० माधवप्रसाद मिश्र, पं० रामचन्द्र शुक्ल, मास्टर भगवान दास, बंग महिला, प्रेमचन्द, वृंदावनलाल वर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, स्वामी सत्यदेव, विश्वम्भरनाथ जिज्जा, गिरजाकुमार घोष आदि लेखक कहानी-क्षेत्र में अवतरित हुए। सन् १९१० तक कुछ अच्छी व मौलिक कहानियाँ लिखी गईं व प्रकाशित हुईं : किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' (सन् १९००, सरस्वती); गोपालराम गहमरी की 'हीरे का मोल' (सन् १९०० के लगभग), माधवप्रसाद मिश्र की 'मन की चंचलता' (सन् १९०१); पं० रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय' (सरस्वती, सितम्बर, १९०३); बंग महिला की 'दुलाईवाली' (सन् १९०७); जम्बुकी न्याय (१९०६); वृन्दावनलाल वर्मा की राखी-बन्द भाई (सन् १९०६, सरस्वती), मैथिलीशरण गुप्त की 'नकली किला' (१९०६, सरस्वती); 'निन्यानवे का फेर' (१९१०, सरस्वती) आदि। 'इन्दुमती', 'ग्यारह वर्ष का समय' और 'दुलाईवाली', 'मन की चंचलता' इस युग की पर्याप्त मौलिक कहानियाँ समझी गई—यद्यपि इस युग में बंगला व अन्य साहित्यों का प्रभाव भी न्यूनाधिक रूप में स्वीकार किया गया।

सन् १९११ से हिन्दी कहानी का एक नवीन उत्थान आरम्भ होता है जो सन् २५-२६ तक चलता है। इसके प्रमुख लेखक थे—'प्रसाद', गंगाप्रसाद श्रीवास्तव, 'गुलेरी', विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', जी० पी० श्रीवास्तव, ज्वालाप्रसाद शर्मा, राजा राधिकारमणप्रसादसिंह, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, प्रेमचन्द, 'सुदर्शन', 'उग्र', विनोदशंकर व्यास आदि। इन लेखकों के हाथों कहानी-लेखन की कला खूब सूक्ष्म, परिष्कृत व समृद्ध हुई। वस्तु-विन्यास, चरित्र-चित्रण, शैली-सौष्ठव—सभी दृष्टियों से कहानी-कला का विकास हुआ।

इन पन्द्रह-सोलह वर्षों में ये सभी लेखक या तो अपनी पहली या प्रतिनिधि कहानी लिख चुके थे या अपना विकास कर रहे थे। इस युग में हिन्दी की कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ लिखी गईं—'प्रसाद' की 'ग्राम' ('इन्दु', सन् १९१७); गंगाप्रसाद श्रीवास्तव की 'पिकनिक' (सन् १९११); 'गुलेरी' की 'सुखमय जीवन' (सन् १९११) व 'उसने कहा था' (सन् १९१५, 'सरस्वती'); 'कौशिक' की 'रक्षा-बन्धन' (सन् १९१३); राजा राधिकारमणप्रसादसिंह की 'कानों में कँगना (सन् १९१३); पं० ज्वालादत्त शर्मा की 'तस्कर', 'विधवा' (सन् १९१४), प्रेमचन्द की 'पंच परमेश्वर' (सन् १९१६); 'सुदर्शन' की 'हार की जीत' (सन् १९२०, 'सरस्वती') इत्यादि।

इस उत्थान के बाद मनोवैज्ञानिक और प्रगतिशील कहानियों के उत्थान आए। कुछ कहानीकारों ने श्रेष्ठ कहानी की मूल आवश्यकताओं का सफल निर्वाह करने के साथ ही साथ पात्रों के मनोगत भावों का बारीक विश्लेषण करने में गहरी रुचि दिखाई। जैनेन्द्रकुमार, 'अज्ञेय', इलाचन्द्र जोशी व भगवतीप्रसाद वाजपेयी आदि लेखक इस दृष्टि से सबसे सफल लेखक समझे जाते हैं। मनोवैज्ञानिक उत्थान के आरम्भ का श्रेय श्री जैनेन्द्रकुमार को दिया जाता है।

सन् १९३५-३६ से हिन्दी काव्य क्षेत्र में 'प्रगतिवाद' का आविर्भाव हुआ। हिन्दी की कहानी भी इस वाद से प्रभावित हुई। कहानी के माध्यम से नवीन प्रगतिशील विचारधारा का प्रकाशन हुआ। 'निराला', 'राहुल', अमृतराय, भगवतशरण उपाध्याय, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर आदि लेखक इस उत्थान के प्रतिनिधि लेखक हैं। इन्होंने मानव की पीड़ा-बेबसी, उसकी आशा-स्पृहा और

स्वप्न-संकल्प का अपनी-अपनी जीवन दृष्टि के आधार पर व्यापक मानवतावादी या वर्गीय साम्यवादी, समाजवादी विचार-भूमि पर चित्रण किया।

कहानी-लेखन का कार्य अधिकाधिक उत्साह से चल रहा है। 'हिन्दुस्तान', 'धर्मयुग', 'सारिका', 'आदर्श', 'कहानी' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से दर्जनों लेखक अपनी प्रतिभा का प्रसार कर रहे हैं। नव लेखन के क्षेत्र में बहुत-से लेखक सक्रिय हैं।

कहानी-लेखन के क्षेत्र में लेखक इतने अधिक हैं और प्रवृत्तियाँ इतनी विविध हैं कि उन्हें किन्हीं वर्गों में बाँटना बहुत कठिन है। लेखकों को किन्हीं वर्गों में या धाराओं में बाँटने के बाद भी धारा-नायक द्वारा प्रदत्त ढाँचे में, अपने रुचि-वैचित्र्य व जीवन-दृष्टि के न्यूनाधिक भेद से, वे भली-भाँति फिट नहीं हो पाते। यह वांछित भी नहीं। दूसरी कठिनाई यह है कि आज के प्रायः सभी लेखक, वैज्ञानिक युग-जीवी होने के नाते, यथार्थवादी ही कहलाना पसन्द करेंगे। पर यथार्थवाद एक बहुत व्यापक वाद है, जिसके दो छोर हैं—आदर्शोन्मुख यथार्थवाद और शुद्ध या नग्न यथार्थवाद। इसके बीच में यथार्थवाद की कई रंगतें या परतें हैं। ऐसी स्थिति में यथार्थवाद-जैसी कोई एक अलग धारा भी सहज ही नहीं बनाई जा सकती। इसी प्रकार मानवतावाद है। कौन आज मानवतावाद का उपासक नहीं? सभी मानवतावादी हैं। कई लेखक प्रवृत्तियों के वैविध्य-वैचित्र्य के कारण एक ही साथ अनेक धाराओं में स्थान पाएँगे। इस प्रकार वर्गीकरण की समस्या बहुत कठिन है फिर भी कामचलाऊ ढंग से कुछ धाराओं की सहज ही कल्पना की जा सकती है—

(१) **प्रेमचन्द-धारा या आदर्शोन्मुख यथार्थवादी धारा**—इसमें प्रेमचन्द, कौशिक, राधाकृष्ण, 'सुदर्शन', जैनेन्द्र, 'अश्क', यशपाल आदि रखे जाते हैं। इस धारा की मुख्य विशेषताएँ हैं—यथार्थ में आदर्श का न्यूनाधिक मेल; जीवन के उच्च मूल्यों की स्थापना या पुनर्स्थापना के लिए सजगता-आकुलता; निम्न वर्ग, मध्य वर्ग और निम्न मध्य वर्ग की आर्थिक सामाजिक व मानसिक समस्याओं के समाधान का प्रयत्न; प्रगल्भ सरस व रोचक वृत्त-कथन; चरित्र-चित्रण का विशेष प्रयत्न और उसमें मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का न्यूनाधिक समावेश; पाठक की कल्पना पर कम भरोसा करके अधिक विवरण व व्याख्या की प्रवृत्ति; मुहावरे-

दार, सरल, प्रवाही व जीवंत जन-भाषा का प्रयोग आदि। प्रेमचन्द-धारा के प्रायः सभी मुख्य लेखक प्रेमचन्द के मूल ढाँचे (पैटर्न) से दूर-पास से सम्बन्धित जान पड़ेंगे।

(२) **'प्रसाद' की काव्यात्मक या आदर्शवादी धारा**—इस धारा में राजा राधिकारमणप्रसादसिंह, रायकृष्णदास, चण्डीप्रसाद 'हृदयेश', विनोदशंकर व्यास आदि लेखक रखे जाते हैं। इस धारा की मुख्य विशेषताएँ हैं—भाव, कल्पना व अनुभूति से सम्पन्न सूक्ष्म कथानक; जड़ाऊ काम वाली अलंकृत गद्य शैली; प्रकृति का, पृष्ठभूमि व वातावरण के निर्माण में विशेष प्रयोग; रोमांटिक जीवन दृष्टि; सहृदय-प्रिय शब्द की व्यंजना-शक्ति का अधिक प्रयोग; आदि।

(३) **शुद्ध यथार्थवादी धारा**—इस धारा में प्रायः पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', ऋषभचरण जैन व चतुरसेन शास्त्री आदि लेखक सम्मिलित किए जाते हैं। ये लेखक राजनीतिक-सामाजिक यथार्थ स्थितियों का चित्रण शब्द की अभिधा शक्ति से किन्तु अत्यधिक शक्ति के साथ करते हैं। समाज की जीर्ण-शीर्ण कन्था की सींवने उधेड़-उधेड़कर खोल दिखाने में ये कोई लिहाज नहीं रखते। कहते हैं—सीलन, बदबू, सडाँद, किलबिलाहट भी तो ज़रा देखते जाओ !

(४) **मनोवैज्ञानिक धारा**—इस धारा का प्रवर्त्तन प्रेमचन्द-धारा से मूल सम्बन्ध रखने वाले जैनेन्द्रकुमार से होता है। इस धारा के अन्य विशिष्ट लेखक हैं—'अज्ञेय', भगवतीप्रसाद वाजपेयी, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', इलाचन्द्र जोशी आदि। एक ओर जैनेन्द्र और दूसरी ओर 'अज्ञेय' व इलाचन्द्र जोशी को रखकर समीक्षक इनके मनोवैज्ञानिक निरूपण के प्रेरणा स्रोत व पद्धतियों का रोचक अन्तर भी प्रस्तुत करते हैं। इस धारा ने छोटी-सी सीमा में पात्रों के मन को बारीकियों का सूक्ष्म विश्लेषण करने का बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य हिन्दी में आरम्भ किया है, ऐसी विद्वानों की धारणा है।

(५) **हास्य-व्यंग्य की धारा**—इस धारा में जी० पी० श्रीवास्तव, राधाकृष्ण, अन्नपूर्णानन्द वर्मा, बेढब 'बनारसी', कान्तानाथ पाण्डेय 'चोंच' आदि लेखक सम्मिलित किये जाते हैं। शुद्ध मनोरंजन, महीन मीठी मार व अच्छे-अच्छों की खबर लेकर, हंटर-चाबुक लेकर व्यक्ति व समाज को ठीक-ठीक पटरी पर चलाने

के लिए इस धारा के लेखकों का महत्त्व बहुत है। इन लेखकों के हास्य-व्यंग्य के गुण (quality) में भी न्यूनाधिक भेद है।

(६) **मानवतावादी धारा**—इस धारा में वे लेखक हैं जो मानवता के शुद्ध रूप को अपने-अपने रुचि-संस्कार, दृष्टिकोण व समाज-रचना के आदर्शों से कल्पित कर मनुष्य की रक्षा व उसके उत्थान में तत्पर हैं। 'निराला', 'राहुल', यशपाल, रांगेय राघव, भगवतीचरण वर्मा, मोहनसिंह सेंगर, भगवतशरण उपाध्याय, कृष्णचन्द्र आदि। इन लेखकों के अतिरिक्त भी हिन्दी में अनेक प्रतिष्ठित लेखक हैं।

मन्मथनाथ गुप्त, प्रभाकर माचवे, धर्मवीर 'भारती', सुभद्राकुमारी चौहान, उषादेवी मित्रा, कमला चौधरी, होमवती, सत्यवती मल्लिक, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा, आनन्दप्रकाश जैन, शिवप्रसादसिंह, भैरवप्रसाद गुप्त, कमलेश्वर, कमल जोशी, मार्कण्डेय आदि लेखक सुविदित हैं।

नव-लेखन के क्षेत्र में राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित', राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती आदि अनेक लेखक उल्लेखनीय हैं।

समीक्षात्मक विशेष अध्ययन-सामग्री

पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र—'वाङ्मय बिमर्श', पृ० ५० से ५८

पं० रामचन्द्र शुक्ल—'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (सं० १९९७), पृ० ६०१ से ६०५, तथा ६५२ से ६५९

डॉ० श्यामसुन्दर दास—'साहित्यालोचन', पाँचवा अध्याय, 'आख्यायिका' प्रकरण

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी—'आधुनिक साहित्य', पृ० २३९ से २५१

डॉ० नगेन्द्र—'विचार और विश्लेषण', दसवाँ लेख, पृ० ७८ से ८६

डॉ० जगन्नाथप्रसाद शर्मा—कहानी का रचना-विधान

डॉ० रामरतन भटनागर—'हिन्दी साहित्य की कहानी', पृ० २०४ से २१५
—'हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास', पृ० ३२७-३३७

श्री शिवदानसिंह चौहान—'हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष', पृ० १७२ से १९२

डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'—'हिन्दी गद्य : विधाएँ और विकास', पृ० ६६ से ७९
—'हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास', पृ० १११ से ११६

श्री जयकिशन 'प्रसाद'—'हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ' पृ० ४७६ से ४८४

श्री शिवनन्दन प्रसाद—'साहित्य के रूप और तत्त्व', प्रकरण ६

डा० ब्रह्मदत्त—'हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन'

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल—'हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि का विकास'

पं० विनोदशंकर व्यास—'कहानी कला'

William Henry Hudson—An Introduction to the Study of Literature, p. 336-343.
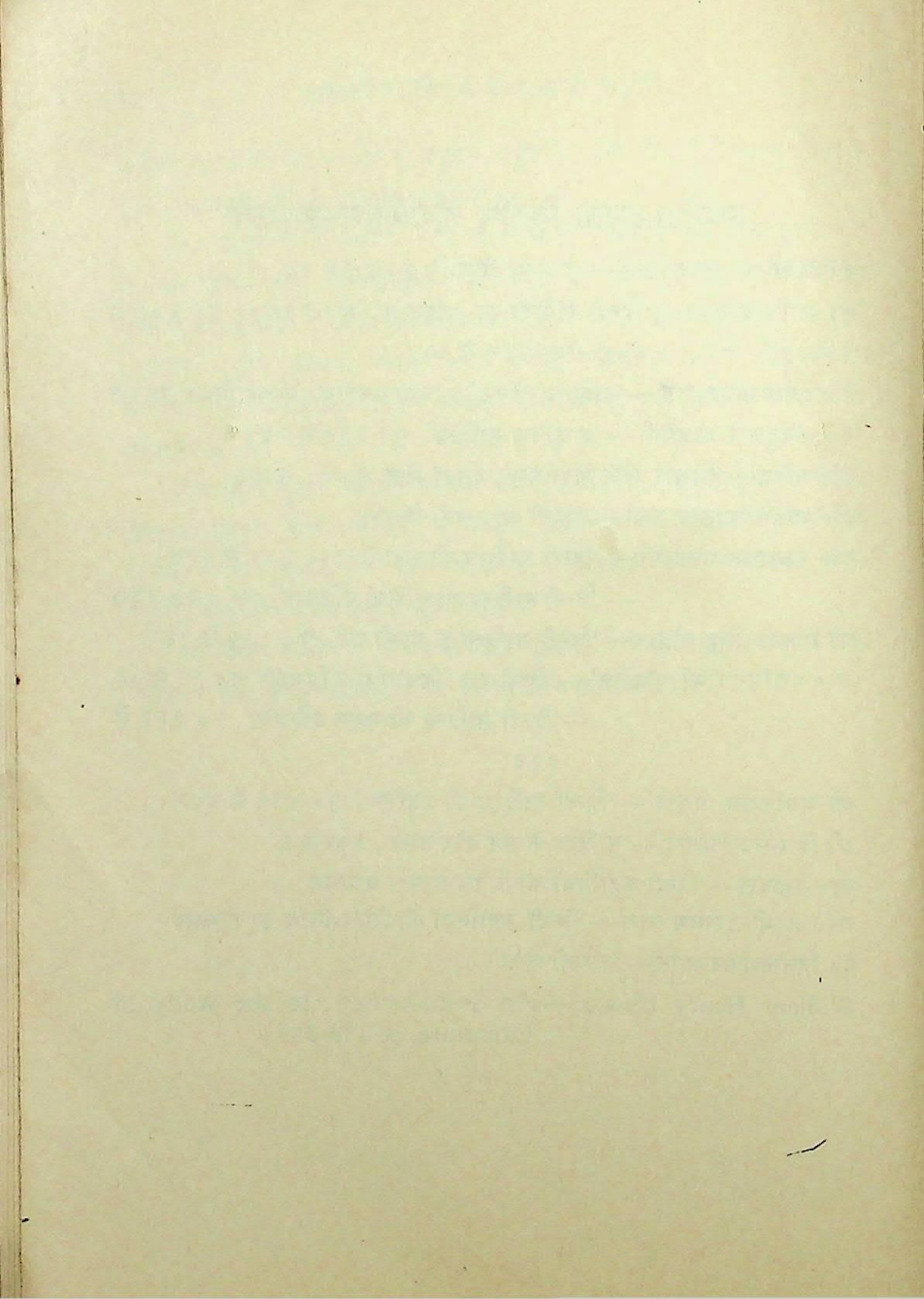
लेखक परिचय

१. वृन्दावनलाल वर्मा

श्री वृन्दावनलाल वर्मा हिन्दी के वरिष्ठ लेखक हैं। ये एडवोकेट हैं और झाँसी में वकालत करते हैं। आपने सन् १९०५ के लगभग ही कहानी-उपन्यास लिखना आरम्भ कर दिया था। सन् १९०७ के लगभग आपकी पहली कहानी 'राखीबन्द भाई' लिखी गई थी, जिसका हिन्दी कहानी के विकास में महत्त्वपूर्ण व ऐतिहासिक स्थान है। आपकी रचनाएँ पचास के लगभग हैं उपन्यासों में 'झाँसी की रानी', 'मृगनयनी', 'कुण्डली चक्र', 'विराटा की पद्मिनी', 'अमरबेल' तथा कहानी संग्रहों में 'दबे पाँव', 'रश्मि समूह', 'शरणागत', 'ऐतिहासिक कहानियाँ', 'मेंढ़कों का ब्याह', 'कलाकार का दण्ड', 'तोषी' आदि रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

इस समय हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों के क्षेत्र के आप एकच्छत्र सम्राट् हैं। अद्भुत ऐतिहासिक कल्पना, सर्जन-शक्ति के अजस्र प्रवाह, दीर्घ ऐतिहासिक-सांस्कृतिक दृष्टि तथा संश्लिष्ट, रसात्मक व चित्रोपम वर्णनों के कारण ये प्रसिद्ध हैं। आप हिन्दी के स्कॉट कहलाते हैं। संगीत, शिकार, व्यायाम, भ्रमण व साहसिक कार्यों में आपकी गहरी दिलचस्पी है। जंगली जीवन व उसके रूखे, उजाड़ व अनगढ़ पक्षों के वर्णन के प्रति आपका आकर्षण भवभूति की याद दिलाता है। आपने बुन्देलखण्ड के जीवन, सभ्यता और संस्कृति को खूब गहरे डूबकर चित्रित किया है। ऐतिहासिक शोध अनुशीलन में आपकी गहरी रुचि रही है। आपकी रचनाएँ प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान करती हैं।

'शरणागत' आपकी एक बहुत प्रसिद्ध व लोकप्रिय कहानी है। शरणागत की रक्षा हमारी संस्कृति का एक विशेष गुण है। बुन्देला ठाकुर दाऊजी रज्जब कसाई को अपने घर एक बार शरण देकर आगे तक के लिए भी मानो कर्त्तव्यबद्ध हो गया है। दाऊजी के इसी गुण का उद्घाटन यह कहानी करती है।

२. जयशंकर 'प्रसाद'

श्री जयशंकर 'प्रसाद' हिन्दी के यशस्वी साहित्यकार हैं। आपका जन्म सन् १८८९ में काशी में और निधन भी वहीं सन् १९३६ में हुआ। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा स्कूल में हुई। तत्पश्चात् काव्य, साहित्य, धर्म, दर्शन, इतिहास आदि गम्भीर विषयों का स्वतंत्र अध्ययन घर पर ही जारी रहा। अपना घराना बहुत प्रतिष्ठित था और समाज में उसका बड़ा सम्मान था।

'प्रसाद' जी का साहित्य बहुत विशाल है। उन्होंने काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि सभी क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा का प्रसार किया। आपकी रचनाओं की संख्या २५ के लगभग है जिसमें 'कामायनी, 'आँसू' व 'लहर' (काव्य); 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'अजातशत्रु' व 'ध्रुवस्वामिनी' (नाटक); 'कंकाल' व 'तितली' (उपन्यास); 'आकाशदीप', 'इन्द्रजाल', व 'आँधी (कहानी); तथा 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' (समीक्षा) आदि रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। 'कामायनी' काव्य आपकी प्रतिष्टा का स्थायी आधार है। आधुनिक नाट्य रचना के क्षेत्र में वे मूर्धन्य ऐतिहासिक नाटककार समझे जाते हैं। वे छायावादी काव्य-शैली के प्रवर्त्तकों व उन्नायकों में से हैं। उपन्यासों में 'कंकाल' उनकी एक बहुत सशक्त सामाजिक रचना है, जो यथार्थवादी जीवन-दृष्टि से प्रसूत है।

कहानी के क्षेत्र में भी 'प्रसादजी' की विशेष देन है। उनके पाँच कहानी-संग्रह हैं, जिनमें लगभग ७० कहानियाँ संगृहीत हैं। 'प्रलय', 'ग्राम', 'आकाशदीप', 'ममता', 'समुद्र सन्तरण', 'आँधी', 'मधुआ', 'ग्रामगीत', 'पुरस्कार', 'इन्द्रजाल', 'गुंडा', 'देवरथ', 'सालवती' आदि कहानियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

'प्रसाद' जी की कहानियों का मुख्य आकर्षण उनकी आदर्शवादी जीवन दृष्टि ललित-कोमल कल्पना, रहस्यमयी भावुकता, वातावरण-निर्माण, सूक्ष्म व सांकेतिक चरित्रांकन, जड़ाऊ या अलंकृत भाषा-शैली, अर्थगर्भत्व और गूढ़ व्यंजना है। भावुक आदर्शों वाली अधिकांश कहानियाँ गद्य-गीत का प्रभाव उत्पन्न करती हैं। बहुत-सी कहानियाँ यथार्थवादी शैली में भी लिखी गई हैं, जिनमें वस्तु-व्यापारों का और चरित्रों का वस्तून्मुख या यथातथ्य निरूपण हुआ है। 'मधुआ', 'घीसू', 'बेड़ी', 'विजया', 'अमिट स्मृति', 'नीरा', 'गुंडा', 'छोटा जादूगर', 'विराम-चिह्न'

आदि कहानियाँ इस दृष्टि से बहुत प्रभावपूर्ण व सफल हैं।

'छोटा जादूगर' कहानी में प्रसाद ने एक ऐसे छोटे बालक का चित्रण किया है जिसका देशभक्त पिता बन्दीगृह में है और माँ अभावग्रस्त-सी होकर अन्तिम दिन बिता रही है। एक बालक कर्त्तव्यपरायण होकर किस प्रकार अपनी वाक्-चातुरी, श्रम, स्फूर्ति तथा विनोदशील प्रकृति से अपनी मरणासन्न माँ की सेवा में निरत है, इसका लेखक ने बहुत ही जीवन्त, यथार्थ व कलात्मक चित्रण किया है। कहानी के चरम-बिन्दु पर हमारा मन भारी और हमारी पलकें भीतरी रस से अनायास ही आर्द्र हो जाती हैं।

हिन्दी कहानी के क्षेत्र में 'प्रसाद' एक धारा विशेष के प्रवर्त्तक समझे जाते हैं।

३. विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

'कौशिक' जी हिन्दी के आरम्भिक कहानी लेखकों में से हैं। इनका जन्म सन् १८९१ में अम्बाला में हुआ था, जहाँ से बचपन में ही गोद लिये जाकर ये कानपुर आ गए थे। इनका निधन सन् १९४६ में हुआ। ये हिन्दी, उर्दू और संस्कृत आदि भाषाओं के प्रेमी थे इन्होंने लगभग ३०० कहानियाँ लिखी हैं। हिन्दी की प्रसिद्ध 'दुबेजी की चिट्ठियाँ' इन्हीं के द्वारा लिखित हैं। पहले ये उर्दू में लिखा करते थे पर सन् १९११ से ही हिन्दी की ओर मुड़े। इनकी पहली कहानी 'रक्षा-बन्धन' सन् १९१३ में लिखी गई। पारिवारिक जीवन का चित्रण इनका मुख्य क्षेत्र था जो प्रेमचन्द व सुदर्शन, जिनके रचना-स्वरूप से ये सम्बन्धित किये जाते हैं, के क्षेत्र को देखते हुए बहुत सीमित है। इनकी मुख्य रचनाएँ हैं—'कल्प मन्दिर', 'मणिमाला', 'पेरिस की नर्तकी', 'कल्लोल', 'चित्रशाला' (दो भागों में)।

'ताई' कौशिकजी की प्रतिनिधि कहानी है जो बहुत समय से बड़ी लोकप्रिय रही है। इसमें बाल-मनोविज्ञान का मार्मिक स्वरूप मिलता है। मध्यवर्गीय परिवार की इसमें एक बड़ी ही घरेलू झाँकी है। वात्सल्य रस की सुन्दर व्यंजना है। संतान के सम्बन्ध में स्त्रियों की एक चिर-निगूढ़ वासना का बड़ा स्वाभाविक उद्घाटन हुआ है। हिन्दुओं या भारतीयों के अन्धविश्वासों पर प्रहार किया गया है। ताई के चरित्र का विकास स्वाभाविक क्रम से हुआ है। कहानी में वर्णन कुछ अधिक

है और कहानी अन्त में अनावश्यक रूप में कुछ अधिक खींच दी गई है, पर संवादों के सौन्दर्य और प्रभाव-बिन्दु की स्पष्टता से यह कहानी अच्छा सामूहिक प्रभाव उत्पन्न करती है। शैली की दृष्टि से हम कौशिकजी को प्रेमचन्द के पथ पर ही चलता हुआ पाते हैं।

४. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

'गुलेरी' जी हिन्दी के मूर्धन्य कहानीकारों में से हैं। इनका जन्म जयपुर में सन् १८८३ में और निधन सन् १९२२ में काशी में हुआ था। ये विद्वान् पिता के विद्वान् पुत्र थे। इनका अध्ययन प्रयाग विश्वविद्यालय में हुआ था। १९०४ में इन्होंने बी०ए० की परीक्षा सर्वप्रथम रहकर उत्तीर्ण की थी। तभी वे मेयो कॉलेज, अजमेर में संस्कृत के प्रधान अध्यापक के रूप में नियुक्त हो गए। अगले १५ वर्षों में इन्होंने अपने भाषा साहित्य व पुरातत्त्व विषयक गहन पाण्डित्य से विद्वानों में खूब अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। इसी के परिणामस्वरूप ये सन् १९२० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के ओरिएण्टल कॉलेज के प्रधानाचार्य के पद पर नियुक्त हुए।

३९ वर्ष यी छोटी आयु में ही इन्होंने हिन्दी-कहानी को बहुमूल्य निधि प्रदान की। इन्होंने केवल तीन ही कहानियाँ लिखीं—'सुखमय जीवन' (सन् १९११), बुद्धू, का काँटा' और 'उसने कहा था' (अक्टूबर, १९१५ की 'सरस्वती' में प्रकाशित)। अन्तिम कहानी इनकी प्रतिभा का चमत्कार है। इस कहानी के कला-सौष्ठव का रहस्य बताते हुए आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं—"इसमें पक्के यथार्थवाद के बीच सुरुचि की चरम मर्यादा के भीतर, भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यन्त निपुणता के साथ संपुटित है।× × × (घटना के) भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है। × × × इसकी घटनाएँ ही बोल रही हैं, पात्रों के बोलने की अपेक्षा नहीं।" इस कहानी की प्रणाली के सम्बन्ध में हमें शुक्लजी से ही एक और संकेत मिलता है—"सादे ढंग से केवल कुछ अत्यन्त व्यंजक घटनाएँ और थोड़ी बातचीत सामने लाकर क्षिप्रगति से किसी एक गम्भीर संवेदना या मनोभाव में पर्य्यवसित होने वाली, जिसका बहुत ही अच्छा नमूना है स्वर्गीय गुलेरीजी की प्रसिद्ध कहानी 'उसने कहा था'। श्री शिवदानसिंह चौहान

इसकी विशेषता बताते हुए लिखते हैं—"···लहनासिंह की यह करुणा-मिश्रित कहानी एक साथ ही कथा-विन्यास, विचार-वस्तु, रचना-तंत्र, भाषा और शैली, सभी दृष्टियों से इतनी प्रौढ़, सन्तुलित और सजीव रचना है कि आश्चर्य होता है कि हिन्दी-कहानी के प्रारम्भ में ही, जब आचार्य द्विवेदी अभी खड़ी बोली का साहित्यिक रूप स्थिर करने के भगीरथ प्रयत्न में संलग्न थे, गुलेरीजी ने कहानी की भाषा का यह प्रौढ़ रूप किस तरह निखार लिया।"

लहनासिंह का चरित्र इस कहानी का प्राण है। अपने बचपन की एक समय प्रेमिका होने के नाते और उसके विवाहिता होने के बाद की उसकी किसी इच्छा (युद्धक्षेत्र में उसके पुत्र की रक्षा) की पूर्ति के हेतु दिये गए वचन के पालने के लिए वह भयंकर शीत व रणक्षेत्र के वातावरण में राजी-खुशी अपने प्राणों की बाज़ी लगा देता है। अमृतसर के बाज़ार का, खन्दक का व युद्धक्षेत्र का चित्रण कितना सजीव व आकर्षक है। कहानी के अंग कुछ घुमाव-फिराव के साथ रखे गए हैं जो सम्बन्ध-स्थापन के लिए सजग पाठक की सक्रिय कल्पना के सहयोग की अपेक्षा रखते हैं। प्रेम और वीरता का रोमांचकारी व अद्‌भुत चित्रण, लहनासिंह के चित्रण का कौशलपूर्ण उद्‌घाटन और आद्यंत गहरी उत्सुकता का निर्वाह—ये इस कहानी को अत्यन्त लोकप्रिय और अपने प्रभाव में अचूक बनाये हुए हैं। हिन्दी की यह कहानी उनकी प्रतिनिधि एक अमर कहानी है और विश्व-साहित्य को भेंट करने योग्य है। इसमें कहानी के सब तत्त्वों का सफल सुनियोजन हुआ है।

५. प्रेमचन्द

मुंशी प्रेमचन्द हिन्दी के कथा-सम्राट् हैं। इनका जन्म सन् १८८० में लमही (बनारस) में और निधन बनारस में सन् १९३६ में हुआ। इनका बचपन का नाम धनपतराय था। इनका आरंभिक जीवन बहुत कष्टों में बीता। अध्यापन कार्य करते हुए इन्होंने बी० ए० प्राइवेट विद्यार्थी के रूप में पास किया। आरम्भ में उर्दू में लिखते थे, फिर हिन्दी में लिखने लगे। नौकरी को गुलामी समझकर इन्होंने स्वतंत्र चिंतन व लेखन के लिए उसे छोड़ दिया। 'माधुरी', 'हंस' और 'जागरण' का इन्होंने सम्पादन किया। कुछ समय फिल्म-जगत् में भी रहे किन्तु

अपनी प्रकृति से मेल न बैठने के कारण वे पुनः काशी लौट आए।

आपका साहित्य बहुत विशाल है। उपन्यासों में 'गोदान', 'रंगभूमि', सेवा-सदन', 'प्रेमाश्रम', 'काया कल्प', 'गबन' तथा कहानी-संग्रहों में 'नवनिधि', 'सप्त-सरोज', 'कफन', 'पाँच फूल', 'प्रेम पूर्णिमा', 'प्रेमतीर्थ', 'प्रेम द्वादशी', 'प्रेम पचीसी' आदि रचनाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। नाटक, जीवनी व निबन्ध आदि भी बहुत हैं।

प्रेमचन्द अपने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, व्यापक मानवीय सहानुभूति, ग्राम-सुधार की उत्कट लगन, जीवन की विशद् व्याख्या, मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण व सशक्त, प्रांजल. प्रवाहमयी, मुहावरेदार व जीवन्त भाषा-शैली के लिए विख्यात हैं। समाज को उन्नत बनाना व मानवता का पाठ पढ़ाना आपकी कला का सबसे बड़ा उद्देश्य है। समाज के दलित वर्ग व निम्न मध्यवर्ग की समस्याओं को चित्रित करने और उसका किसी न किसी रूप में समाधान ढूँढ़ निकालने के लिए आपकी कला समर्पित है। इन्हीं गुणों से समलंकृत होने के कारण प्रेमचन्द का साहित्य देश-विदेश में दूर-दूर तक आकर्षण का विषय हो गया है। विश्व की अनेक भाषाओं में उनकी रचनाओं के अनुवाद हुए हैं। 'गोदान' सवाक् चित्रपट पर भी आ गया है।

प्रेमचन्द का कहानी-लेखन सन् १९१५ से आरम्भ होता है। इनकी पहली कहानी 'सौत' सन् १९१५ में तथा 'पंच परमेश्वर' सन् १९१६ में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। तब से आप निरन्तर लिखते रहे। आपने लगभग ३०० कहानियाँ लिखी हैं जो ८ भागों में 'मानसरोवर' में संकलित हैं। 'पंच परमेश्वर', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'आत्माराम', 'सुजान भगत', 'कफन', 'दो बैलों की कथा', 'रानी सारन्धा', 'पूस की रात', 'बूढ़ी काकी', 'शंखनाद', 'ईदगाह', 'बड़े घर की बेटी', 'सवा सेर गेहूँ', 'मंत्र' आदि कहानियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं और वे प्रेमचन्द की विकसित कहानी-कला का स्वरूप प्रदर्शित करती हैं।

'दो बैलों की कथा' प्रेमचन्द की अत्यन्त मार्मिक कहानियों में से एक है। इसमें प्रेमचन्द जीव-दया व सहानुभूति से सम्पन्न, पशु-मनोविज्ञान के सूक्ष्म ज्ञाता के रूप में उपस्थित होते हैं। इसमें प्रेमचन्द मानो मूक पशुओं (बैलों) के मन में गहरे उतरकर उनकी ही भावमयी वाणी में बोलते हैं। पशुओं के भावों का

वैविध्य व वैचित्र्य देखने ही योग्य है। उन भावों को चित्रण भी बहुत सधे हाथों से हुआ है। कथा-सूत्र नहीं के बराबर है। लघु और झीने से सूत्र के सहारे लेखक ने अपनी सूक्ष्म चित्रण की कला को व्यक्त करते हुए अपनी सहानुभूति का समुद्र उमड़ा दिया है। मित्रता का आदर्श क्या होना चाहिए, समाज के धन इन पशुओं की रक्षा का क्या साधन है और स्नेह के अभाव में पशुओं में भी कितना आक्रोश विद्रोह होता है, ये सभी बातें कला के आवरण में प्रकट हुई हैं। प्रेमचन्द की 'प्रेमचन्दी' भाषा का सजीव स्वरूप भी यहाँ देखने को मिलता है।

६. अन्नपूर्णानन्द वर्मा

हास्य-व्यंग्य के लेखकों में हिन्दी में श्री अन्नपूर्णानन्द वर्मा का बहुत ऊँचा स्थान है। प्रसिद्ध लेखक श्री भगवतीचरण वर्मा इन्हें इस क्षेत्र में हिन्दी में 'अद्वितीय स्थान' देते हैं। वास्तव में हास्य की कला एक बहुत ऊँची कला है। शुद्ध और निर्मल हास्य से आत्मा का कमल खिलता है। फूहड़ बातों से व भद्दे आचरण व्यवहारों से हँसाने या हँसने के लिए कृत्रिम ढंग से उभाड़ना हास्य का सृजन नहीं है। इस दृष्टि से 'अकबरी लोटा' एक ऊँची कलात्मक रचना है। इसमें हास्य कोरा हास्य ही नहीं है, वह उद्देश्य-गर्भित है। बिना ऐतिहासिक विवेक के, एक-दूसरे से होड़ करते हुए इधर-उधर से कुछ न कुछ अजनबी चीज़ें इकट्ठे करते फिरने और अपने को पुरातत्त्व का प्रेमी समझने या घोषित करने वालों को लक्ष्य करके यह बड़ी ही मीठी गुदगुदी उत्पन्न करने वाली कहानी लिखी गई है। कथानक का सरल-स्निग्ध व अकृत्रिम प्रवाह मोहक है। जिन हास्योत्पादक स्थितियों की कल्पना की गई है वे मज़ेदार हैं। संवादों का रस भी कहानी के प्रभाव को बढ़ाने में खूब सहायक हुआ है।

७. जैनेन्द्रकुमार

श्री जैनेन्द्रकुमार हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार हैं। इनका जन्म सन् १९०५ में अलीगढ़ जिले के कौड़ियागंज नामक कस्बे में हुआ था। शिक्षा ७वीं कक्षा तक हस्तिनापुर के जैन गुरुकुल ब्रह्मचर्य्याश्रम में हुई थी। आपकी औपचारिक शिक्षा

इण्टर तक हुई। असहयोग आन्दोलन के कारण पढ़ना-लिखना छूट गया। आप राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने के कारण कारावास में भी रहे।

हिन्दी साहित्य में विद्वानों के द्वारा आपकी महत्ता, कथा साहित्य के निर्माण की दृष्टि से, प्रेमचन्द से दूसरे नम्बर पर आँकी जाती है। कहानी-लेखन में आपकी तुलना बंगला के अमर कलाकार शरच्चन्द्र से की जाती है। आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं—उपन्यास : 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'कल्याणी', 'विवर्त्त', 'सुखदा', 'व्यतीत', 'जयवर्द्धन'; कहानी-संग्रह : 'फाँसी', 'वातायन', 'दो चिड़ियाँ', 'एक रात', 'नीलम देश की राजकन्या', 'जय', 'सन्धि', 'स्पर्धा', 'पंजाब', 'ध्रुव-यात्रा'। 'जैनेन्द्र की कहानियाँ' (७ भाग) में सभी कहानियाँ सँकलित हैं। आपके मौलिक निवन्धों के भा कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं। सन् १६२७ में आपने अपनी पहली कहानी 'हत्या' लिखी व सन् १६२८ में 'खेल' जो 'विशाल भारत' में प्रकाशित हुई। आपने लगभग २०० कहानियाँ लिखी हैं। अनेक विश्व भाषाओं में भी अनुवाद हुए हैं।

जैनेन्द्रजी ने हिन्दी-कहानी के प्रवाह को एक नया मोड़ दिया है। घटना-चमत्कार युक्त वृत्त से हटकर आपने अपना ध्यान पात्रों के मन की साधारण स्थितियों के यथार्थ चित्रण पर ही केन्द्रित कर दिया। कथा-सूत्र नहीं के बराबर या निमित्त मात्र। पात्र भी गिने-चुने दो-अढ़ाई। छोटी-सी सीमा में बारीक काम ही आपको पसन्द है। दार्शनिकता, जीवन की व्याख्या, मनोवैज्ञानिक गहराई, किसी व्यक्तिगत या सामाजिक समस्या की ओर संकेत या उसका निदान-विश्लेषण और अत्यधिक सादी घरेलू गम्भीर व व्यंजक भाषा-शैली आपके सर्जन के व्यापक गुण हैं। समाज का वैषम्य, चरित्र की कोई गहरी गाँठ या गुत्थी को महीन बुद्धि के नाखूनों से खोलने में आपकी विशेष अभिरुचि है। श्री शिवदानसिंह चौहान जैनेन्द्र के साहित्यिक योग-दान को दर्शाते हुए लिखते हैं—"···जैनेन्द्र ने बाह्य और आन्तरिक जीवन के उभय पक्ष को पूरी मनोवैज्ञानिक सचाई के साथ समन्वित करने की कोशिश की है और हिन्दी कहानी को एक नई अन्तर्दृष्टि, संवेदनशीलता और दार्शनिक गहराई प्रदान की है। और इस प्रकार हिन्दी-कहानी

का बौद्धिक स्तर ऊँचा उठाया है। ××× बहुत संक्षेप में मार्मिक तीक्ष्णता से तत्त्व की बात में वे अपना सानी नहीं रखते।" जैनेन्द्र ने सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है पर वे फ्रायड की बनी बनाई रूढ़ मनोवैज्ञानिक विश्लेषण-पद्धति को ज्यों का त्यों न अपना कर अपने निजी निरीक्षणों व संवेदनाओं के बल पर ही पात्रों के अवचेतन मन का चित्रण करते हैं।

'एक गौ' जैनेन्द्र की एक अत्यन्त मार्मिक कहानी है। इसमें लेखक ने पशु मनोविज्ञान का बहुत ही सूक्ष्म परिचय दिया है। गाय की बिथा को लेखक ने महीन चित्रण के द्वारा साकार कर दिया। आदि से अन्त तक कोमल करुणा का झीना कुहरा परिव्याप्त है। गाय के मन के ठेठ पैंदे में उतरकर लेखक ने उसकी विवशता, स्नेह, कृतज्ञता, आक्रोश को बड़ी मीठी व समझ में आने वाली आसान बानी दी है। लेखक की कल्पना-शक्ति सराहनीय है। भाषा की सादगी व निकाई तो इनकी अपनी ही है।

८. भगवतीचरण वर्मा

श्री भगवतीचरण वर्मा हिन्दी के बहुत प्रसिद्ध कथाकार हैं। इनका जन्म सन् १९०३ में हुआ था। पिता कानपुर में वकील थे। बचपन में आर्यसमाज का इन पर गहरा प्रभाव था। १४ वर्ष की आयु से ही ये काव्य-रचना की ओर आकर्षित हुए। काव्यक्षेत्र में इनके प्रेरणा-स्रोत बाबू मैथिलीशरण गुप्त व प्रसिद्ध कवि प० माखनलाल चतुर्वेदी थे। कहानी की प्रेरणा इन्हें श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' से मिली। 'कौशिक' जी के चलाए 'हिन्दी मनोरंजन' नामक पत्र में इन्होंने बहुत-सी कहानियाँ लिखीं जो प्रयोगकालीन थीं। पहली कहानी सन् १९२१ में लिखी गई। प्रयाग विश्वविद्यालय से आपने बी० ए०, एल-एल० बी० किया। कुछ वर्षों तक वकालत की और फिर शेष जीवन साहित्य-सेवा को ही समर्पित कर दिया। आपका जीवन बहुत संघर्षों में व्यतीत हुआ है। संघर्षों के कारण ही आप में व्यंग-विनोद की भावना का जन्म हुआ। आप लिखते हैं—"जिन परिस्थितियों से मैं गुजरा था और इस समय भी गुजर रहा था उन्होंने मुझे निराशा अथवा कटुता प्रदान करने के स्थान पर मेरे अन्दर एक प्रकार का बल भर दिया था और उस

बल के कारण मुझमें एक स्वाभाविक विनोदप्रियता प्राप्त हो गई थी।"

वर्माजी का साहित्य काफी बड़ा है। उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—कविता : 'मधुकण', 'प्रेम-संगीत', 'मानव'; उपन्यास : 'तीन वर्ष', 'चित्रलेखा', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'भूले-बिसरे चित्र', अपने खिलौने', 'वह फिर नहीं आई', 'सामर्थ्य और सीमा'; कहानी-संग्रह : 'दो बाँके', 'इन्स्टालमेंट' आदि। 'चित्रलेखा' आपकी अत्यन्त लोकप्रिय रचना है। जिसकी लगभग डेढ़ लाख प्रतियाँ बिक चुकी हैं, और उस पर फिल्म भी बन चुकी है।

आपने फिल्म-जगत् में भी कई वर्षों तक लेखन-कार्य किया है। 'विचार', 'उत्तरा', दैनिक नवजीवन' आदि पत्रों का सफलतापूर्वक सम्पादन किया है। वर्षों तक 'आकाशवाणी' से सम्बद्ध रहे हैं।

स्पष्टवादिता, स्वाभिमान व स्वच्छन्दता आपकी प्रकृति के विशेष गुण हैं। आप साहित्य को किसी 'वाद' में बाँधने के पक्षपाती नहीं हैं।

'प्रायश्चित्त' आपकी एक अत्यन्त लोकप्रिय व मनोरंजक कहानी है। एक दैनिक घरेलू प्रसंग को लेकर हँसी और व्यंग के चुहल-भरे वातावरण में आपने मोटी तोंद वाले खाऊ पंडितों की मजेदार तसवीर उतारी है और हिन्दू धर्म की एक दुर्बलता पर उँगली उठाई है।

९. उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' हिन्दी के सुप्रसिद्ध कथाकार व नाटककार हैं। इनका जन्म सन् १९१० में हुआ था। इनके निम्नलिखित कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं—'पिंजरा', 'काले साहब', 'जुदाई की शाम का गीत', 'छींटे', 'बैंगन का पौधा' आदि। एकांकी के क्षेत्र में भी इनका बहुत ऊँचा स्थान है। इनके प्रमुख एकांकी संग्रह हैं—'पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ', 'चरवाहे', 'पक्का गाना', 'देवताओं की छाया में', और 'साहब को जुकाम है'। अनेक उपन्यास भी प्रकाशित हो चुके हैं। 'अश्क' जी ने यथार्थवादी दृष्टि से समाज की समस्याओं का सुन्दर चित्र अंकित किया है। मनोवैज्ञानिक स्थितियों का अंकन करने में भी आप कुशल हैं। समाज की

विकृतियों पर आपकी दृष्टि बराबर बनी रहती है। हास्य-व्यंग्य और विनोद की मात्रा भी पर्याप्त रहती है। उर्दू शैली का आपकी रचनाओं पर पर्याप्त प्रभाव है। कहानी में बोझिल कथानक नहीं होता। सामान्य से कथा-सूत्र को लेकर जीवन की साधारण या असाधारण स्थिति का मनोविज्ञान-सम्मत यथार्थ निरूपण करना आपकी कहानियों की विशेषता है।

'मनुष्य यह !' इस दृष्टि से आपकी एक बहुत रोचक कहानी है। कथानायक विधुर पण्डितजी बाहर से आदर्शवादी बनने का स्वांग भरते हैं, पर अपनी सद्यः दिवंगता पत्नी के प्रति भी उनका प्रेम इतना अस्थिर है कि वे उसकी मृत्यु के तुरंत बाद अपनी साली विमला के प्रति आसक्त हो उठे हैं। किन्तु, विमला तो अब हाथ से निकल गई ! उनकी इस हास्यास्पद स्थिति को लेखक ने बड़े ही कुशल हाथों से चित्रण कर कच्चे आदर्शवादियों का कच्चा चिट्ठा खोल दिया है। लेखक ने विधुर-मनोविज्ञान का अच्छा परिचय देते हुए मानव-स्वभाव का चित्र अंकित किया है। कहानी का 'चरमोत्कर्ष' भी बहुत सुन्दर है।

१०. होमवती

सुश्री होमवती कवयित्री और कहानी लेखिका के रूप में सुपरिचित हैं। उनका जन्म सन् १९०२ में और निधन सन् १९५१ में हुआ। प्रतिक्षण की जीवन-धारा और अपने चारों ओर के सहज परिवेश में कितना मार्मिक व रसीला साहित्य बिखरा पड़ा है, इसका उदाहरण होमवतीजी का साहित्य है। उसमें अन्तस्तल की गहन वेदना, निरावरण हार्दिकता और अभिव्यक्ति की सहजता व ताजगी विद्यमान है। होमवतीजी की रचनाएँ हैं: कविता—'उद्गार' (१९३६), 'अर्घ' (१९३९), 'निस्पन्द' (अप्रकाशित) आदि; कहानियाँ—'निसर्ग' (१९३९), 'धरोहर' (१९४६), 'स्वप्न-भंग' (१९४८), 'अपना घर' (१९५०) तथा अन्य प्रकाशित-अप्रकाशित फुटकर रचनाएँ।

'अपना घर' लेखिका की एक अत्यन्त मार्मिक कहानी है। श्री अज्ञेय लिखते हैं—''होमवतीजी की कहानियों के बारे में क्या कहूँ ? उनके स्वभाव के जो गुण निजी व्यवहार में प्रकट होते थे। वही उनकी कहानियों में भी; घरेलू वातावरण,

गहरी आत्मीयता, आर्द्र करुणा, नारी के स्वाभिमान से सहज सहानुभूति, और अन्याय के प्रति सहज मानवीय आक्रोश। × × × कहानी-क्षेत्र में वह अपने ढंग की एक ही लेखिका थीं, और हिन्दी-साहित्य की उनके निधन से बड़ी क्षति हुई।" —इस विश्लेषण में जिन गुणों की ओर संकेत है वे सब स्वस्थ-सुन्दर अनुपात में प्रस्तुत कहानी में भरपूर हैं। असहाय या विपन्न उमा के मातृ हृदय की तथा उसके एकाकी सात वर्षीय पुत्र की गहरी बिथा मन को कचोट देती है। कहानी जीवन का एक सजल-मार्मिक चित्र है।

११. 'सुदर्शन'

'सुदर्शन' जी (जिनका मूल नाम पं० बदरीनाथ भट्ट है) हिन्दी के बहुत पुराने व सुप्रसिद्ध कहानी लेखक हैं। इनका जन्म सन् १८९६ में स्यालकोट में हुआ था। पहले आप उर्दू में लिखा करते थे। आपकी पहली हिन्दी कहानी 'हार की जीत' सन् १९२० में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। उन्हीं दिनों 'कमल की बेटी' कहानी भी लिखी गई। बहुत वर्षों तक आप फिल्म जगत् से सम्बन्धित रहे हैं। आपका दृष्टिकोण आदर्शवादी रहा है। वर्णन-शैली, कथानक-विकास, चरित्रांकन पद्धति व भाषा-प्रवाह में वही सादगी, संश्लेष व अनलंकृत आडम्बरहीनता है जो प्रेमचन्दजी में दिखाई पड़ती है। 'कवि की स्त्री', 'अपराधी' (?), 'संसार की सबसे बड़ी कहानी' आपकी कुछ लोकप्रिय आदर्शवादी कहानियाँ हैं। 'तीर्थ-यात्रा', 'पनघट', 'सुदर्शन सुमन', 'सुदर्शन सुधा' आपके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं।

'राजपूतानी का प्रायश्चित्त' आपकी एक अत्यन्त सुन्दर ऐतिहासिक कहानी है। इसमें वीरता और प्रेम का आदर्श प्रस्तुत किया गया है। राजपूतानी ने जो पश्चात्ताप किया है उसका मनोवैज्ञानिक चित्रण पर्याप्त सूक्ष्म व सुन्दर है। कहानी में आदि से अन्त तक पाठक के मन में एक गहरी जिज्ञासा बनी रहती है। लेखक का आदर्शवादी स्वर बहुत प्रमुख है। कहानी बिना किसी रोक-थाम के इधर-उधर बहे हुए सीधे-सीधे स्निग्ध गम्भीर प्रवाह-सी बढ़ती चलती है। ऐतिहासिक वातावरण का निर्माण भी अच्छा बन पड़ा है।

१२. कमला चौधरी

श्रीमती कमला चौधरी हिन्दी की जानी-मानी कहानी लेखिका हैं। उनका जन्म सन् १९०८ में लखनऊ में हुआ था उनकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं—कहानी-संग्रह : 'यात्रा', 'पिकनिक', 'बेलपत्र', 'प्रसादी कमण्डल', 'उन्माद'; प्रहसन : 'अन्धेरी मजिस्ट्रेटी' ; कविता : 'खैयाम का जाम', 'आपन मरन जगत कै हाँसी' ; उपन्यास : 'पीड़ा की खोज' आदि। वे हिन्दी, उर्दू तथा अवधी में समान अधिकार से लिखती हैं । उपन्यास-सम्राट् श्री प्रेमचन्द ने कमलाजी की कृतियों की सराहना करते हुए लिखा था—"मैंने श्रीमती कमला चौधरी की कई कहानियाँ पढ़ी हैं, और मुग्ध हो गया हूं।...मैं उनकी भाषा की प्रौढ़ता और प्रवाह, उनकी भाव-व्यंजना और मनोरहस्यों की गहराई में उतर जाने की शक्ति पर चकित हो गया हूँ। यद्यपि उनकी रचनाओं का क्षेत्र सीमित है ; पर यह वह क्षेत्र है, जिसके कोने-कोने से वह परिचित हैं। वे जो कुछ लिखती हैं उसमें अनुभूति की झलक होती है ; कही अँधेरे में टटोलती या भटकती नहीं मालूम देतीं, मानो उनके पात्र जाने-माने लोग हैं।"

वे राजनीति तथा कला-साहित्य—दोनों क्षेत्रों में उत्साहपूर्वक भाग लेती आई हैं। व्यापक-जीवनानुभव ने उनकी कहानी-कला को गति और रंग-रूप प्रदान किया है।

'अनाथालय' कमलाजी की एक सरल व प्रेरक कहानी है। अनाथालय समाज की एक समस्या है जिस पर लेखिका ने मनन करके उसका एक सर्जनात्मक समाधान ढूंढ़ने का प्रयत्न किया है। अनाथालय को निर्जीव, यांत्रिक व हीनभावना उत्पन्न करने वाली प्रणाली के विरुद्ध एक क्षोभ व आक्रोश व्यक्त करते हुए लेखिका ने मोहन के चरित्र के माध्यम से रूढ़ि को तोड़कर नव-निर्माण का पथ दिखाया है। कोई भी समस्या किस प्रकार कहानी का एक सुन्दर रूप ग्रहण कर सकती है, यह बात इस कहानी से उदाहृत होती है।

कमला जी मेरठ (उत्तर प्रदेश) की निवासिनी हैं और निरन्तर लिख रही हैं।

१३. राधाकृष्ण

श्री राधाकृष्ण हिन्दी के पुराने लेखक हैं। हिन्दी-कहानी का विकास निरूपित करने वाले लेखक सम्मान के साथ आपका उल्लेख करते हैं। उच्चकोटि के हास्य-व्यंगकारों में भी आपकी गणना होती है।

'मैना' श्री राधाकृष्ण की एक प्रसिद्ध कहानी है। यह कहानी अपने विषय, निरूपण-शैली और समाप्ति की दृष्टि से सहज ही 'कौशिक' जी की 'ताई' कहानी का स्मरण दिलाती है। इस कहानी में भी वात्सल्य भावना अच्छी उभरकर आई है। छोटे भाई और बड़े भाई के पारिवारिक द्वंद्व का स्वरूप अच्छा उद्घाटित हुआ है। दोनों कहानियाँ प्रायः एक-सी संवेदना उत्पन्न करती हैं। बाहरी द्वेष-विग्रह में भी पारिवारिक स्नेह व ममत्व किस प्रकार गहरे दबा छिपा रहता है, यह इस कहानी से स्पष्ट है। सब कुछ मिलाकर, 'मैना' हिन्दू परिवारों का सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा का एक यथार्थ व प्रभावशाली चित्र अंकित करने में पर्याप्त सफल हुई है। इस कहानी की शैली भी प्रेमचन्द व 'कौशिक' की शैली से पर्याप्त साम्य रखती है।

१४. आनन्दप्रकाश जैन

हिन्दी की नई पीढ़ी के कथाकारों में श्री आनन्दप्रकाश जैन एक प्रमुख लेखक हैं। इनका जन्म शाहपुर (उत्तर प्रदेश) में सन् १९२७ में हुआ। इस समय आप 'पराग' नामक प्रसिद्ध पत्र के प्रधान सम्पादक हैं। आपने छोटी आयु में ही कई महत्त्वपूर्ण रचनाएँ प्रस्तुत कर दी हैं। आपकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं :—उपन्यास : 'तीसरा नेत्र', 'आग और फूस', 'कठपुतली के धागे'; कहानी-संग्रह : 'अतीत के कम्पन', 'लाल पन्ने', 'काल के पंख'; अन्य अनेक अनुवादित ग्रन्थ, जासूसी उपन्यास, फुटकर कहानियाँ आदि। 'भैंस', 'आटे के सिपाही', 'पाँच साल बाद' आपकी कुछ प्रसिद्ध कहानियाँ हैं जो प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत हुई हैं। आपका प्रमुख क्षेत्र इतिहास है। आनन्दप्रकाशजी की वर्णन शैली में बड़ा ओज व प्रगल्भ प्रवाह रहता है। वर्णन-शैली व चरित्र-चित्रण पद्धति सामान्यतः प्रेमचन्द व सुदर्शन स्कूल की विशिष्टताओं का ध्यान दिलाती है।

'मूँछ का बाल' आपकी एक सुन्दर कहानी है। कलाकारोचित आविष्कार-बुद्धि से लेखक ने इतिहास के फलक पर एक बहुत ही रोचक प्रसंग को जीवित कर दिया है। भाषा-शैली व कहानी का सजीव वातावरण देशकालोचित है। आदि से अंत तक पाठक के मन में एक सजग औत्सुक्य बना रहता है। वाग्वैचित्र्य से कहानी में जान पड़ गई है। शुद्ध हास्य, व्यंग्य व विनोद से परिपूर्ण यह कहानी खूब मनो-रंजक बन पड़ी है।

१५. जनार्दन झा 'द्विज'

पं० जनार्दन झा 'द्विज' हिन्दी के बहुत पुराने साहित्यसेवी हैं। आचार्य शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में इनका उल्लेख उच्च कोटि के समीक्षकों व कहानीकारों के बीच किया है। शुक्लजी ने इनकी कहानी-पद्धति को 'सादे ढंग से केवल कुछ व्यंजक घटनाएँ और थोड़ी बातचीत सामने लाकर क्षिप्रगति से किसी एक गम्भीर संवेदना या मनोभाव में पर्य्यवसित होने वाली' तथा 'परिस्थितियों के विशद् और मार्मिक—कभी-कभी रमणीय और अलंकृत—वर्णनों और व्याख्याओं के साथ मंद मधुर गति से चलकर किसी एक मार्मिक परिस्थिति में पर्य्यवसित होने वाली'—इन दो पद्धतियों के बीच में स्थान दिया है।

इनका जन्म सन् १९०४ में रामपुर डीह (भागलपुर) में हुआ।

इनकी 'सहपाठी' कहानी एक संक्षिप्त, सरल व रोचक आदर्शवादी कहानी है। सुधार-युग में जिस चरित्र-गठन, आदर्श-प्रेम, सेवा और त्याग के मूल्यों का महत्त्व था वह इस कहानी के द्वारा व्यक्त किया गया है। साधन-हीन छात्र किस प्रकार विद्याध्ययन में रत रहकर स्वावलम्बी आदर्श जीवन व्यतीत कर सकते हैं, यही प्रेरणा प्रदान करना इस कहानी का उद्देश्य है। यह आदर्शवादी कहानी है।

१
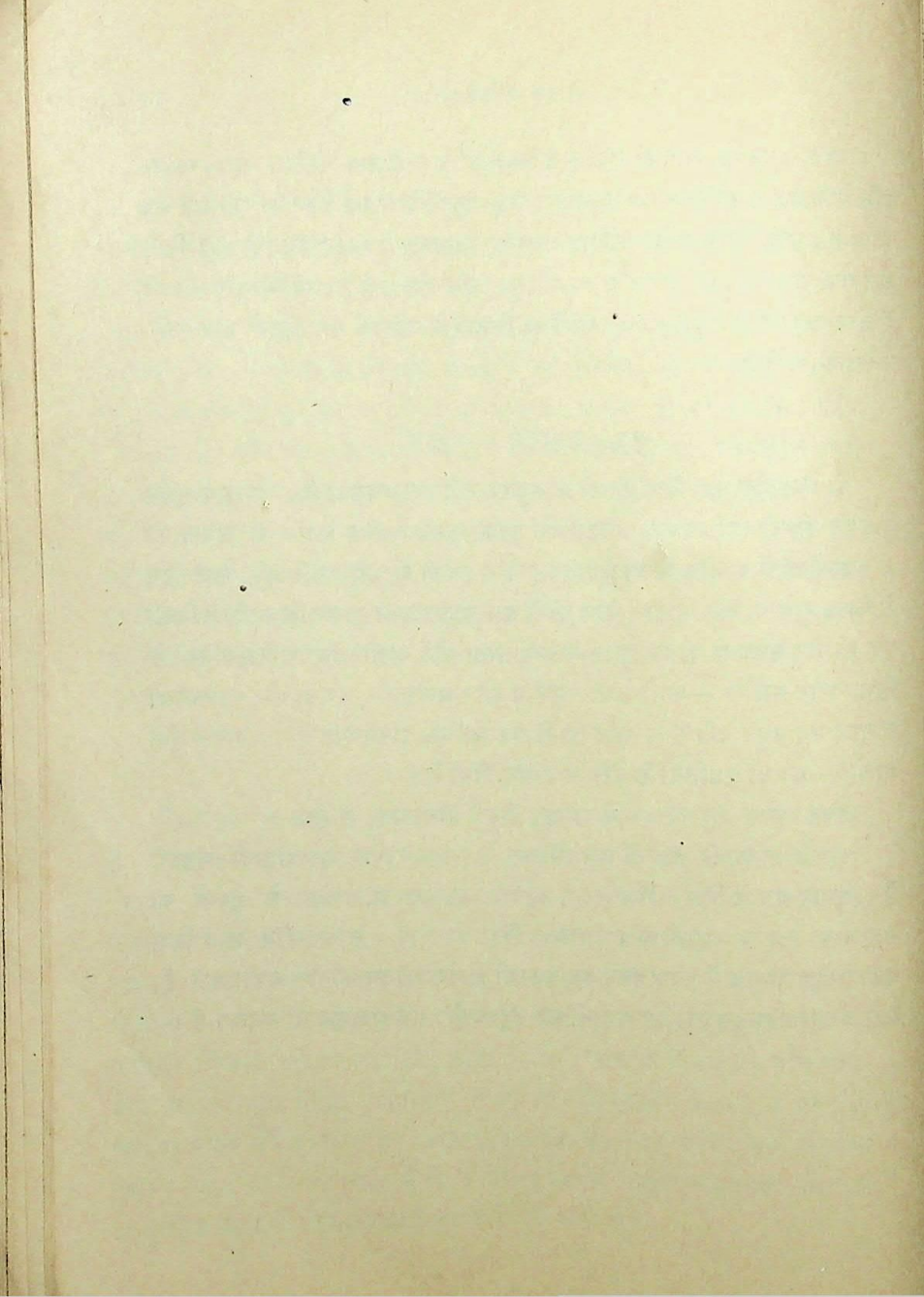
शरणागत

वृन्दावनलाल वर्मा

(१)

रज्जब अपना रोजगार करके ललितपुर लौट रहा था। साथ में स्त्री थी, और गाँठ में दो-तीन सौ की बड़ी रकम। मार्ग बीहड़ था, और सुनसान। ललितपुर काफी दूर था, बसेरा कहीं-न-कहीं लेना ही था, इसलिए उसने मड़पुरा नामक गाँव में जाने का निश्चय किया। उसकी पत्नी को बुखार हो आया था, रकम पास में थी, और बैलगाड़ी किराये पर करने में खर्च ज्यादा पड़ता, इसलिए रज्जब ने उस रात आराम कर लेना ही ठीक समझा।

परन्तु ठहरता कहाँ ! जात छिपाने से काम नहीं चल सकता था। उसकी पत्नी नाक और कानों में चाँदी की बालियाँ डाले थी, और पैजामा पहने थी। इसके सिवाय गाँव के बहुत-से लोग उसको पहचानते भी थे। वह उस गाँव के बहुत-से कर्मण्य और अकर्मण्य ढोर खरीदकर ले जा चुका था।

अपने व्यवहारियों से उसने रात-भर के बसेरे के लायक स्थान की याचना की, किन्तु किसी ने भी मंजूर न किया ! उन लोगों ने अपने ढोर रज्जब को अलग-अलग और लुके-छिपे बेचे थे। ठहरने में तुरन्त ही तरह-तरह की खबरें फैलतीं इसलिए सबने इनकार कर दिया।

गाँव में एक गरीब ठाकुर रहता था। थोड़ी-सी ज़मीन थी, जिसको किसान जोतते थे। निज का हल-बैल कुछ भी न था। लेकिन अपने किसानों से दो-तीन साल का पेशगी लगान वसूल कर लेने में ठाकुर को विशेष बाधा का सामना नहीं करना पड़ता था। छोटा-सा मकान था, परन्तु गाँव वाले उसको गढ़ी के आदर-व्यंजक शब्द से पुकारा करते थे और ठाकुर को डर के मारे 'राजा' शब्द से सम्बोधित करते थे।

शामत का मारा रज्जब इसी ठाकुर के दरवाज़े पर अपनी ज्वर-ग्रस्त पत्नी

को लेकर पहुँचा।

ठाकुर पौर में बैठा हुक्का पी रहा था। रज्जब ने बाहर से ही सलाम करके कहा—"दाऊजी, एक विनती है।"

ठाकुर ने बिना एक रत्ती-भर इधर-उधर हिले-डुले पूछा—"क्या ?"

रज्जब बोला—"मैं दूर से आ रहा हूँ। बहुत थका हुआ हूँ। मेरी औरत को ज़ोर से बुखार आ रहा है। जाड़े में बाहर रहने से न जाने इसकी क्या हालत हो जायगी, इसलिए रात-भर के लिए कहीं दो हाथ जगह दे दी जाय।"

"कौन लोग हो?" ठाकुर ने प्रश्न किया।

"हूँ तो कसाई।" रज्जब ने सीधा उत्तर दिया। चेहरे पर उसके बहुत गिड़गिड़ाहट थी।

ठाकुर की बड़ी-बड़ी आँखों में कठोरता छा गई। बोला—"जानता है, यह किसका घर है ? यहाँ तक आने की हिम्मत कैसे की तूने ?"

रज्जब ने आशा-भरे स्वर में कहा—"यह राजा का घर है। इसीलिए शरण में आया हूँ।"

तुरन्त ठाकुर की आँखों की कठोरता गायब हो गई। जरा नरम स्वर में बोला—"किसी ने तुमको बसेरा नहीं दिया ?"

"नहीं महाराज !" रज्जब ने उत्तर दिया—"बहुत कोशिश की, परन्तु मेरे खोटे पेशे के कारण कोई सीधा नहीं हुआ।" और वह दरवाजे के बाहर ही, एक कोने से चिपटकर बैठ गया, पीछे उसकी पत्नी कराहती-काँपती हुई गठरी-सी बनकर सिमट गई।

ठाकुर ने कहा—"तुम अपनी चिलम लिए हो ?"

"हाँ, सरकार !" रज्जब ने उत्तर दिया।

ठाकुर बोला—"तब भीतर आ जाओ; और तमाखू अपनी चिलम से पी लो। अपनी औरत को भी भीतर कर लो। हमारी पौर के एक कोने में पड़े रहना।"

जब वे दोनों भीतर आ गए, ठाकुर ने पूछा—"तुम कब यहां से उठकर जाओगे ?" जवाब मिला—"अँधेरे में ही महाराज ! खाने के लिए रोटियाँ बाँधे हूँ, इसलिए पकाने की ज़रूरत न पड़ेगी।"

"तुम्हारा नाम ?"

"रज्जब।"

(२)

थोड़ी देर बाद ठाकुर ने रज्जब से पूछा—"कहाँ से आ रहे हो ?" रज्जब ने स्थान का नाम बतलाया।

"वहाँ किसलिए गए थे ?"

"अपने रोजगार के लिए।"

"काम तो तुम्हारा बहुत बुरा है।"

"क्या करूँ पेट के लिए करना पड़ता है। परमात्मा ने जिसके लिए जो रोजगार मुकर्रर किया है, वही उसको करना पड़ता है।"

"क्या नफा हुआ ?" प्रश्न करने में ठाकुर को ज़रा संकोच हुआ, और प्रश्न का उत्तर देने में रज्जब को उससे बढ़कर !

रज्जब ने जवाब दिया—"महाराज, पेट के लायक कुछ मिल गया है, यों ही।" ठाकुर ने इस पर कोई ज़िद नहीं की।

रज्जब एक क्षण बाद बोला—"बड़े भोर उठकर चला जाऊँगा। तब तक घर के लोगों की तबियत भी अच्छी हो जाएगी।"

इसके बाद दिन-भर के थके हुए पति-पत्नी सो गए। काफी रात गए कुछ लोगों ने बँधे इशारे से ठाकुर को बाहर बुलाया। एक फटी रज़ाई ओढ़े ठाकुर बाहर निकल आया।

आगन्तुकों में से एक ने धीरे से कहा—"दाऊजी ! आज तो खाली हाथ लौटे हैं। कल संध्या का सगुन बैठा है।"

ठाकुर ने कहा—"आज ज़रूरत थी। खैर, कल देखा जाएगा। क्या कोई उपाय किया था ?"

"हाँ"— आगन्तुक बोला—"एक कसाई रुपये की मोट बाँधे इसी ओर आया है। परन्तु हम लोग ज़रा देर में पहुँचे। वह खिसक गया। कल देखेंगे। ज़रा जल्दी।"

ठाकुर ने घृणा-सूचक स्वर में कहा—"कसाई का पैसा न छुएँगे।"

"क्यों ?"

"बुरी कमाई है।"

"उसके रुपयों पर कसाई थोड़े ही लिखा है।"

"रुपया तो दूसरों का ही है। कसाई के हाथ में आने से रुपया कसाई का नहीं हुआ।"

"मेरा मन नहीं मानता, वह अशुद्ध है।"

"हम अपनी तलवार से उसको शुद्ध कर लेंगे।"

ज़्यादा बहस नहीं हुई। ठाकुर ने कुछ सोचकर अपने साथियों को बाहर का बाहर ही टाल दिया।

भीतर देखा, कसाई सो रहा था, और उसकी पत्नी भी। ठाकुर भी सो गया।

(३)

सवेरा हो गया, परन्तु रज्जब न जा सका। उसकी पत्नी का बुखार तो हल्का हो गया था, परन्तु शरीर-भर में पीड़ा थी और वह एक कदम भी नहीं चल सकती थी।

ठाकुर उसे वहीं ठहरा हुआ देखकर कुपित हो गया। रज्जब से बोला—"मैंने खूब मेहमान इकट्ठे किए हैं। गाँव-भर थोड़ी देर में तुम लोगों को मेरी पौर में टिका हुआ देखकर तरह-तरह की बकवास करेगा। तुम बाहर जाओ और इसी समय।"

रज्जब ने बहुत विनती की, किन्तु ठाकुर न माना। यद्यपि गाँव उसके दबदबे को मानता था, परन्तु अव्यक्त लोक-मत का दबदबा उसके मन पर भी था। इसलिए रज्जब गाँव के बाहर सपत्नीक एक पेड़ के नीचे जा बैठा, और हिन्दू-मात्र को मन ही मन कोसने लगा।

उसे आशा थी कि पहर-आध पहर में उसकी पत्नी की तबीयत इतनी स्वस्थ हो जाएगी कि वह पैदल यात्रा कर सकेगी। परन्तु ऐसा न हुआ, तब उसने एक गाड़ी किराये पर लेने का निर्णय किया।

मुश्किल से एक चमार काफी किराया लेकर ललितपुर गाड़ी ले जाने के लिए राजी हुआ। इतने में दोपहर हो गई। उसकी पत्नी को ज़ोर का बुखार आया और वह जाड़े के मारे थर-थर काँप रही थी, इतनी कि रज्जब की हिम्मत उसी

समय ले जाने की न पड़ी। गाड़ी में अधिक हवा लगने के भय से रज्जब ने उस समय तक के लिए यात्रा को स्थगित कर दिया, जब तक कि उस बेचारी की कम से कम कँपकँपी बन्द न हो जाय।

घंटे-डेढ़ घंटे बाद उसकी कँपकँपी बन्द हो गई, परन्तु ज्वर बहुत तेज हो गया। रज्जब ने अपनी पत्नी को गाड़ी में डाल दिया, और गाड़ीवान से जल्दी चलने को कहा।

गाड़ीवान बोला—"दिन-भर तो यहीं लगा दिया। अब जल्दी चलने को कहते हो।"

रज्जब ने मिठास के स्वर में उससे फिर जल्दी करने के लिए कहा।

वह बोला—"इतने किराये में काम नहीं चल सकेगा। अपना रुपया वापस लो। मैं घर जाता हूँ।"

रज्जब ने दाँत पीसे। कुछ क्षण चुप रहा। सचेत होकर कहने लगा—"भाई, आफत सबके ऊपर आती है। मनुष्य मनुष्य को सहारा देता है, जानवर तो देते नहीं। तुम्हारे भी बाल-बच्चे हैं। कुछ दया के साथ काम लो।"

कसाई को दया पर व्याख्यान देते सुनकर गाड़ीवान को हँसी आ गई।

उसको टस से मस न होता देखकर रज्जब ने और पैसे दिए तब उसने गाड़ी हाँकी।

(४)

पाँच-छः मील चलने के बाद संध्या हो गई। गाँव कोई पास में न था। रज्जब की गाड़ी धीरे-धीरे चली जा रही थी। उसकी पत्नी बुखार में बेहोश-सी थी। रज्जब ने अपनी कमर टटोली। रकम सुरक्षित बँधी पड़ी थी।

रज्जब को स्मरण हो आया कि पत्नी के बुखार के कारण अंटी का कुछ बोझ कम कर देना पड़ा है—और स्मरण हो आया गाड़ीवान का वह हठ जिसके कारण ही उसको कुछ पैसे और दे देने पड़े थे। उसे गाड़ीवान पर क्रोध था, परन्तु उसको प्रकट करने की उस समय उसके मन में इच्छा न थी।

बातचीत करके रास्ता काटने की कामना से उसने वार्तालाप आरम्भ किया—

"गाँव तो यहाँ से दूर है।"

"बहुत दूर, वहीं ठहरेंगे।"

"किसके यहाँ ?"

"किसी के यहाँ भी नहीं। पेड़ के नीचे। कल सवेरे ललितपुर चलेंगे।"

"कल का फिर पैसा माँग उठना।"

"कैसे माँग उठूँगा ? किराया ले चुका हूँ। अब फिर कैसे माँगूँगा ?"

"जैसे आज गाँव से हठ करके माँगा था। बेटा ! ललितपुर होता तो बता देता।"

"क्या बतला देते ? क्या सेंतमेंत में गाड़ी में बैठना चाहते थे ?"

"क्यों बे, क्या रुपया देकर भी सेंतमेंत का बैठना कहाता है ? जानता है मेरा नाम रज्जब है। अगर बीच में गड़बड़ करेगा, तो साले को यहाँ छुरी से काटकर कहीं फेंक दूँगा, और गाड़ी लेकर ललितपुर चल दूँगा।"

रज्जब क्रोध को प्रकट नहीं करना चाहता था, परन्तु शायद अकारण ही वह भली भाँति प्रकट हो गया।

गाड़ीवान ने इधर-उधर देखा। अँधेरा हो गया था। चारों ओर सुनसान था। आस-पास झाड़ी खड़ी थी, ऐसा जान पड़ता था, कहीं से कोई अब निकला और अब निकला। रज्जब की बात सुनकर उसकी हड्डी-हड्डी काँप गई। ऐसा जान पड़ा, मानो पसलियों को उसकी ठंडी छुरी छू रही हो।

गाड़ीवान चुपचाप बैलों को हाँकने लगा, उसने सोचा—गाँव के आते ही गाड़ी छोड़कर नीचे खड़ा हो जाऊँगा, और हल्ला-गुल्ला करके गाँववालों की मदद से अपना पीछा रज्जब से छुड़ाऊँगा, रुपये-पैसे भले ही वापस कर दूँगा, परन्तु और आगे न जाऊँगा कहीं सचमुच मार्ग में मार डाले !

(५)

गाड़ी थोड़ी दूर और चली होगी कि बैल ठिठककर खड़े हो गए। रज्जब सामने देख रहा था, इसलिए ज़रा कड़ककर गाड़ीवान से बोला—"क्यों बे बदमाश ! सो गया क्या ?"

अधिक कड़क के साथ सामने रास्ते पर खड़ी हुई एक टुकड़ी में से किसी कठोर

कंठ से निकला—"खबरदार, जो आगे बढ़ा।"

रज्जब ने सामने देखा कि चार-पाँच आदमी बड़े-बड़े लट्ठ बाँधकर न जाने कहाँ से आ गए हैं। उनमें से तुरन्त ही एक ने बैलों की जुआरों पर एक लट्ठ पटका और दो दाएँ-बाएँ आकर रज्जब पर आक्रमण करने को तैयार हो गए।

गाड़ीवान गाड़ी छोड़कर नीचे जा खड़ा हुआ। बोला—"मालिक! मैं तो गाड़ीवान हूँ। मुझसे कोई सरोकार नहीं।"

"यह कौन है?" एक ने गरजकर पूछा—

गाड़ीवान की घिग्घी बँध गई। कोई उत्तर न दे सका।

रज्जब ने कमर की गाँठ को एक हाथ से सँभालते हुए बहुत ही विनम्र स्वर में कहा—"मैं बहुत गरीब आदमी हूँ। मेरे पास कुछ नहीं है। मेरी औरत गाड़ी में बीमार पड़ी है। मुझे जाने दीजिये।"

उन लोगों में से एक ने रज्जब के सिर पर लाठी उबारी।

गाड़ीवान खिसकना चाहता था कि दूसरे ने उसको पकड़ लिया।

अब उसका मुँह खुला। बोला—"महाराज, मुझको छोड़ दो। मैं तो किराये पर गाड़ी लिये जा रहा हूँ। गाँठ में खाने के लिए तीन-चार आने पैसे हैं।"

"और यह कौन है? बतला।" उन लोगों में से एक ने पूछा।

गाड़ीवान ने तुरन्त उत्तर दिया—"ललितपुर का एक कसाई।"

रज्जब के सिर जो लाठी उबारी गई थी, वह वहीं रह गई, लाठी वाले के मुँह से निकला—'तुम कसाई हो? सच बताओ।"

"हां, महाराज!" रज्जब ने सहसा उत्तर दिया—"मैं बहुत गरीब हूँ; हाथ जोड़ता हूँ, मुझको मत सताओ। मेरी औरत बहुत बीमार है।"

औरत ज़ोर से कराही।

लाठी वाले उस आदमी ने अपने एक साथी से कान में कहा—"इसका नाम रज्जब है। छोड़ो। चलें यहाँ से।"

उसने न माना। बोला—"इसका खोपड़ा चकनाचूर करो दाऊजी! यदि वैसे न माने तो। असाई-कसाई हम कुछ नहीं मानते।"

"छोड़ना ही पड़ेगा," उसने कहा—"इस पर हाथ न पसारेंगे और न इसका

पैसा छुएँगे।''

दूसरा बोला—''क्या कसाई होने के डर से? दाऊजी! आज तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गए हैं; मैं देखता हूँ।'' और, वह तुरन्त लाठी लेकर गाड़ी पर चढ़ गया। लाठी का एक सिरा रज्जब की छाती में अड़ाकर उसने तुरन्त रुपया-पैसा निकालकर देने का हुक्म दिया। नीचे खड़े हुए उस व्यक्ति ने जरा तीव्र स्वर में कहा—''नीचे उतर आओ, उससे मत बोलो। उसकी औरत बीमार है।''

''हो, मेरी बला से'' गाड़ी में चढ़े हुए लठैत ने उत्तर दिया—''मैं कसाइयों की दवा हूँ!'' और उसने रज्जब को फिर धमकी दी।

नीचे खड़े हुए उस व्यक्ति ने कहा—''खबरदार, जो उसे छुआ। नीचे उतरो, नहीं तो तुम्हारा सिर चूर किये देता हूँ। वह मेरी शरण आया था।''

लठैत झख-सी मारकर नीचे उतर आया।

नीचे वाले व्यक्ति ने कहा—''सब लोग अपने-अपने घर जाओ। राहगीरों को तंग मत करो।'' फिर गाड़ीवान से बोला—''जा रे, हाँक ले जा गाड़ी। ठिकाने तक पहुँचा आना, तब लौटना। नहीं तो अपनी खैर मत समझियो। और तुम दोनों में से किसी ने भी कभी इस बात की चर्चा की तो भूसी की आग में जलाकर खाक कर दूँगा।''

गाड़ीवान गाड़ी लेकर बढ़ गया। उन लोगों में से जिस आदमी ने गाड़ी पर चढ़कर रज्जब के सिर पर लाठी तानी थी उसने क्षुब्ध स्वर में कहा—

''दाऊजी! आगे से कभी आपके साथ न आऊँगा।''

दाऊजी ने कहा—''न आना। मैं अकेले ही बहुत कर गुजरता हूँ। परन्तु बुंदेला शरणागत के साथ घात नहीं करता, इस बात को गाँठ बाँध लेना।''

२

छोटा जादूगर

जयशंकर प्रसाद

(१)

कार्निवल के मैदान में बिजली जगमगा रही थी। हँसी और विनोद का कलनाद गूँज रहा था। मैं खड़ा था छोटे फुहारे के पास, जहाँ एक लड़का चुप-चाप शरबत पीनेवालों को देख रहा था। उसके गले में फटे कुरते के ऊपर से एक मोटी-सी सूत की रस्सी पड़ी थी और जेब में कुछ ताश के पत्ते थे। उसके मुँह पर गम्भीर विषाद के साथ धैर्य की रेखा थी। मैं उसकी ओर न जाने क्यों आकर्षित हुआ। उसके अभाव में भी सम्पूर्णता थी। मैंने पूछा—'क्यों जी, तुमने इसमें क्या देखा ?'

'मैंने सब देखा है। यहाँ चूड़ी फेंकते हैं। खिलौनों पर निशाना लगाते हैं। तीर से नम्बर छेदते हैं। मुझे तो खिलौनों पर निशाना लगाना अच्छा मालूम हुआ। जादूगर तो बिलकुल निकम्मा है। उससे अच्छा तो ताश का खेल मैं ही दिखा सकता हूँ।—उसने बड़े जोश से कहा। उसकी वाणी में कहीं रुकावट न थी।

मैंने पूछा— और उस परदे में क्या है ? वहाँ तुम गये थे ?'

'नहीं, वहाँ मैं नही जा सका। टिकट लगता है।'

मैंने कहा—'तो चलो मैं वहाँ पर तुमको लिवा चलूं।' मैंने मन-ही-मन कहा—भाई ! आज के तुम्हीं मित्र रहे।

उसने कहा—'वहाँ जाकर क्या कीजियेगा ? चलिये निशाना लगाया जाय।'

मैंने उससे सहमत होकर कहा—'तो फिर चलो पहले शरबत पी लिया जाय।' उसने हाँ के बहाने सिर हिला दिया।

मनुष्यों की भीड़ से जाड़े की संध्या भी वहाँ गर्म हो रही थी। हम दोनों शरबत पीकर निशाना लगाने चले। राह में ही उससे पूछा—'तुम्हारे और कौन है ?'

'माँ श्रौर बाबूजी।'

'उन्होंने तुमको यहाँ श्राने के लिए मना नहीं किया ?'

'बाबूजी जेल में हैं।'

'क्यों ?'

'देश के लिए।'—वह गर्व से बोला।

'श्रौर तुम्हारी माँ ?'

'वह बीमार हैं।'

'श्रौर तुम तमाशा देख रहे हो ?'

उसके मुँह पर तिरस्कार की हँसी फूट पड़ी। उसने कहा—'तमाशा देखने नहीं, दिखाने निकला हूँ। कुछ पैसे ले जाऊँगा, तो माँ को पथ्य दूँगा। मुझे शरबत न पिलाकर श्रापने मेरा खेल देखकर मुझे कुछ दे दिया होता, तो मुझे श्रधिक प्रसन्नता होती !'

मैं श्राश्चर्य से उस तेरह-चौदह वर्ष के लड़के को देखने लगा।

'हाँ, मैं सच कहता हूँ बाबूजी ! माँजी बीमार हैं; इसलिए मैं नहीं गया।

'कहाँ ?'

'जेल में ! जब कुछ लोग खेल-तमाशा देखते ही हैं, तो मैं क्यों न दिखाकर माँ की दवा करूँ श्रौर श्रपना भी पेट भरूँ।'

मैंने दीर्घ निःश्वास लिया। चारों श्रोर बिजली के लट्टू नाच रहे थे। मन व्यग्र हो उठा। मैंने उससे कहा—'श्रच्छा चलो, निशाना लगाया जाये।'

हम दोनों उस जगह पर पहुँचे, जहाँ खिलौनों को गेंद से गिराया जाता था। मैंने बारह टिकट खरीदकर उस लड़के को दिये।

वह निकला पक्का निशानेबाज। उसका गेंद कोई खाली नहीं गया। देखने वाले दंग रह गए। उसने बारह खिलौनों को बटोर लिया; लेकिन उठाता कैसे ? कुछ मेरे रूमाल में बँधे, कुछ जेब में रख लिये गए।

लड़के ने कहा—'बाबूजी, श्रापको तमाशा दिखाऊँगा। बाहर श्राइये। मैं चलता हूँ।' वह नौ-दो ग्यारह हो गया। मैंने मन-ही-मन कहा—'इतनी जल्द श्राँख बदल गई।'

मैं घूमकर पान की दूकान पर आ गया। पान खाकर बड़ी देर तक इधर-उधर टहलता देखता रहा। झूले के पास लोगों का ऊपर-नीचे आना देखने लगा। अकस्मात् किसी ने ऊपर के हिंडोले से पुकारा—'बाबूजी !'

मैंने पूछा—'कौन ?'

'मैं हूँ छोटा जादूगर।'

(२)

कलकत्ता के सुन्दर बोटानिकल-उद्यान में लाल कमलिनी से भरी हुई एक छोटी-सी झील के किनारे घने वृक्षों की छाया में अपनी मंडली के साथ बैठा हुआ मैं जलपान कर रहा था। बातें हो रही थीं। इतने में वही छोटा जादूगर दिखाई पड़ा। हाथ में चारखाने का खादी का झोला, साफ़ जाँघिया और आधी बाँहों का कुरता। सिर पर मेरा रूमाल सूत की रस्सी से बँधा हुआ था। मस्तानी चाल से झूमता हुआ आकर कहने लगा—

'बाबूजी नमस्ते ! आज कहिये तो खेल दिखाऊँ।'

'नहीं जी, अभी हम लोग जलपान कर रहे हैं।'

'फिर इसके बाद क्या गाना-बजाना होगा, बाबूजी ?'

'नहीं जी—तुमको···' मैं क्रोध से कुछ और कहने जा रहा था। श्रीमती ने कहा—'दिखलाओ जी, तुम तो अच्छे आए। भला कुछ मन तो बहले।' मैं चुप हो गया ; क्योंकि श्रीमती की बोली में वह माँ की-सी मिठास थी, जिसके सामने किसी भी लड़के को रोका नहीं जा सकता। उसने खेल आरम्भ किया।

उस दिन कार्निवल के सब खिलौने उसके खेलने में अपना अभिनय करने लगे। भालू मनाने लगा। बिल्ली रूठने लगी। बन्दर घुड़कने लगा।

गुड़िया का ब्याह हुआ। गुड्डा-वर काना निकला। लड़के की बातों से ही खेल हो रहा था। सब हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए।

मैं सोच रहा था। बालक को ज़रूरतों ने कितना शीघ्र चतुर बना दिया। यही तो संसार है।

ताश के सब पत्ते लाल हो गए। फिर सब काले हो गए। गले की सूत की डोरी टुकड़े-टुकड़े होकर जुट गई। लट्टू अपने से नाच रहे थे। मैंने कहा—'अब

हो चुका। अपना खेल बटोर लो, हम लोग भी अब जाएँगे।'

श्रीमतीजी ने धीरे से उसे एक रुपया दे दिया। वह उछल उठा।

मैंने कहा—'लड़के !'

'छोटा जादूगर कहिए। यही मेरा नाम है। इसी से मेरी जीविका है।'

मैं कुछ बोलना ही चाहता था कि श्रीमतीजी ने कहा—'अच्छा तुम इस रुपये से क्या करोगे ?

'पहले भर-पेट पकौड़ी खाऊँगा। फिर एक सूती कम्बल लूँगा।' मेरा क्रोध अब लौट आया। मैं अपने पर बहुत क्रुद्ध होकर सोचने लगा—ओह ! कितना स्वार्थी हूँ मैं। उसके एक रुपये पाने पर मैं ईर्ष्या करने लगा था न।

वह नमस्कार करके चला गया। हम लोग लता-कुञ्ज देखने के लिए चले।

उस छोटे से बनावटी जंगल में संध्या साँय-साँय करने लगी थी। डूबते हुए सूर्य की अन्तिम किरण पेड़ों की पत्तियों से विदाई ले रही थी। चारों ओर सुनसान था। हम लोग धीरे-धीरे मोटर से हावड़ा की ओर आ रहे थे।

रह-रहकर छोटा जादूगर स्मरण हो आता था। सचमुच वह एक झोंपड़ी के पास कम्बल कन्धे पर डाले खड़ा था। मैंने मोटर रोककर उससे पूछा—'तुम यहाँ कहाँ ?'

'मेरी माँ यहीं है न। अब उसे अस्पताल वालों ने निकाल दिया है।' मैं उतर गया। उस झोंपड़ी में देखा, तो एक स्त्री चिथड़ों से लदी हुई काँप रही थी।

छोटे जादूगर ने कम्बल ऊपर से डालकर उसके शरीरसे चिमटते हुए कहा—'माँ।'

मेरी आँखों से आँसू निकल पड़े।

(३)

बड़े दिन की छुट्टी बीत चली थी। मुझे अपने आफिस में समय से पहुँचना था। कलकत्ता से मन ऊब गया था। फिर भी चलते-चलते एक बार उस बाग को देखने की इच्छा हुई। साथ-ही-साथ जादूगर भी दिखाई पड़ जाता, तो और भी··· मैं उस दिन अकेले ही चल पड़ा। जल्द लौट आना था।

दस बज चुके थे। मैंने देखा कि उस साफ धूप में सड़क के किनारे एक कपड़े

पर छोटे जादूगर का रंगमंच सजा था। मोटर रोककर उतर पड़ा। वहाँ बिल्ली रूठ रही थी, भालू मनाने चला था, ब्याह की तैयारी थी; पर यह सब होते हुए भी जादूगर की वाणी में वह प्रसन्नता की तरी नहीं थी। जब वह औरों को हँसाने की चेष्टा कर रहा था, तब जैसे स्वयं काँप जाता था। मानो उसके रोएँ रो रहे थे। मैं आश्चर्य से देख रहा था। खेल हो जाने पर पैसा बटोरकर उसने भीड़ में मुझे देखा, वह जैसे क्षण-भर के लिए स्फूर्तिमान हो गया। मैंने उसकी पीठ थपथपाते हुए पूछा—'आज तुम्हारा खेल जमा क्यों नहीं?'

'माँ ने कहा है कि आज तुरन्त चले आना। मेरी घड़ी समीप है।' अविचल भाव से उसने कहा।

'तब भी तुम खेल दिखलाने चले आए।' मैंने क्रोध से कहा। मनुष्य के सुख-दुःख का माप अपना ही साधन तो है। उसी के हिसाब से यह तूलना करता है।

उसने कहा—'न क्यों आता!'

और कुछ अधिक कहने में जैसे वह अपमान का अनुभव कर रहा था।

क्षण-भर में मुझे अपनी भूल मालूम हो गई। उसके झोले को गाड़ी में फेंककर उसे भी बैठाते हुए मैंने कहा—'जल्दी चलो।' मोटर वाला मेरे बताये हुए पथ पर चल पड़ा।

कुछ ही मिनटों में मैं झोंपड़े के पास पहुँचा। जादूगर दौड़कर झोंपड़े में 'माँ-माँ' पुकारते हुए घुसा। मैं भी पीछे था; किन्तु स्त्री के मुँह से, वे…निकलकर रह गया। उसके दुर्बल हाथ उठकर गिर पड़े। जादूगर उससे लिपटा रो रहा था, मैं भौंचक्का खड़ा था। उस साफ धूप में सारा संसार जैसे जादू-सा मेरे चारों ओर नाच रहा था।

३

ताई

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

(१)

"ताऊजी, हमें लेलगाड़ी ला दोगे ?"—कहता हुआ एक पंचवर्षीय बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा।

बाबू साहब ने दोनों बाँहें फैलाकर कहा—"हाँ बेटा ला देंगे।"

उनके इतना कहते-कहते बालक उनके निकट आ गया। उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया और उसका मुख चूमकर बोले—"क्या करेगा रेलगाड़ी ?"

बालक बोला—"उसमें वैठकर वड़ी दूल जाएँगे। हम भी जाएँगे, चुन्नी को भी ले जाएँगे। बावूजी को नहीं ले जाएँगे। हमें लेलगाड़ी नहीं ला देते ! ताऊजी तुम ला दोगे ; तो तुम्हें ले जाएँगे।"

बाबू०—"और किसे ले जाएगा ?"

बालक दम-भर सोचकर बोला—"वछ, औल किसी को नहीं ले जाएँगे।"

पास ही बाबू रामजीदास की अर्धाङ्गिनी बैठी थीं। बाबू साहब ने उनकी ओर इशारा करके कहा—"और अपनी ताई को नहीं ले जाएगा !"

बालक कुछ देर तक अपनी ताई की ओर देखता रहा। ताईजी इस समय कुछ चिढ़ी हुई-सी बंठो थीं। बालक को उनके मुख का यह भाव अच्छा न लगा। अतएव वह बोला—"ताई को नहीं ले जाएँगे।"

ताईजी सुपारी काटती हुई बोलीं—"अपने ताऊ को ही ले जा ! मेरे ऊपर दया रख !"

ताई ने यह बात बड़ी रुखाई के साथ कही। बालक ताई के शुष्क व्यवहार को तुरन्त ताड़ गया। बाबू साहब ने पूछा—"ताई को क्यों नहीं ले जाएगा ?"

बालक—"ताई हमें प्याल नहीं कलतीं।"

बाबू०—"जो प्यार करें तो ले जाएगा ?"

बालक को इसमें कुछ सन्देह था। ताई का भाव देखकर उसे यह आशा नहीं थी कि वह प्यार करेंगी। इससे बालक मौन रहा।

बाबू साहब ने फिर पूछा—"क्यों रे, बोलता क्यों नहीं? ताई प्यार करें तो, रेल पर बिठाकर ले जाएगा?"

बालक ने ताऊजी को प्रसन्न करने के लिए केवल सिर हिलाकर स्वीकार कर लिया; परन्तु मुख से कुछ नहीं कहा।

बाबू साहब उसे अपनी अर्धाङ्गिनी के पास ले जाकर उनसे बोले—"लो, इसे प्यार कर लो, यह तुम्हें भी ले जाएगा।" परन्तु बच्चे की ताई श्रीमती रामेश्वरी को पति की चुहलबाजी अच्छी न लगी। वह तुनककर बोलीं—"तुम्हीं रेल पर बैठकर जाओ, मुझे नहीं जाना है।"

बाबू साहब ने रामेश्वरी की बात पर ध्यान नहीं दिया। बच्चे को उनकी गोद में बिठाने की चेष्टा करते हुए बोले—"प्यार नहीं करोगी, तो फिर रेल में नही बिठायेगा—क्यों रे मनोहर?"

मनोहर ने ताऊ की बात का उत्तर नहीं दिया। उधर ताई ने मनोहर को अपनी गोद से ढकेल दिया। मनोहर नीचे गिर पड़ा। बाबू साहब ने बालक को गोद में उठा लिया, चुमकार कर चुप किया और तत्पश्चात् उसे कुछ पैसे तथा रेलगाड़ी ला देने का वचन देकर छोड़ दिया। बालक मनोहर भयपूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की ओर ताकता हुआ उस स्थान से चला गया।

मनोहर के चले जाने पर बाबू रामजीदास रामेश्वरी से बोले—"तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है? बच्चे को ढकेल दिया। जो उसके चोट लग जाती तो?"

रामेश्वरी मुँह लटकाकर बोलीं—"लग जाती तो अच्छा होता। क्यों मेरी खोपड़ी पर लादे देते थे। आप ही तो मेरे ऊपर डालते थे और अब आप ही ऐसी बातें करते हैं।"

बाबू साहब कुढ़कर बोले—"इसी को खोपड़ी पर लादना कहते हैं?"

रामेश्वरी—"और नहीं तो किसे कहते हैं? तुम्हें तो अपने आगे और किसी का दुःख-सुख सूझता ही नहीं। न जाने कब किसका जी कैसा होता है। तुम्हें इन बातों की कुछ परवाह ही नहीं, अपनी चुहल से काम है।"

बाबू साहब—"बच्चों की प्यारी-प्यारी बातें सुनकर तो चाहे जैसा जी हो प्रसन्न हो जाता है। मगर तुम्हारा हृदय न जाने किस धातु का बना हुआ है।"

रामेश्वरी—"तुम्हारा हो जाता होगा। और होने को होता भी है; मगर वैसा बच्चा भी तो हो! पराये धन से कहीं घर भरता है?"

बाबू साहब कुछ देर चुप रहकर बोले—"यदि अपना सगा भतीजा भी पराया धन कहा जा सकता है तो फिर मैं नहीं समझता कि अपना धन किसे कहेंगे?"

रामेश्वरी कुछ उत्तेजित होकर बोलीं—"बातें बनाना बहुत आता है। तुम्हारा भतीजा है, तुम चाहे जो समझो; पर मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। हमारे भाग ही फूटे हैं। नहीं तो ये दिन काहे को देखने पड़ते। तुम्हारी चलन तो दुनिया से निराली है। आदमी सन्तान के लिए न जाने क्या-क्या करते हैं—पूजा-पाठ कराते हैं, व्रत रखते हैं, पर तुम्हें इन बातों से क्या काम? रात-दिन भाई-भतीजों में मग्न रहते हो।"

बाबू साहब के मुख पर घृणा का भाव झलक आया। उन्होंने कहा—"पूजा-पाठ, व्रत सब ढकोसला है। जो वस्तु भाग्य में नहीं, पूजा-पाठ से कभी प्राप्त नहीं हो सकती। मेरा यह अटल विश्वास है।

श्रीमती जी कुछ रुँआसे स्वर में बोलीं—"इसी विश्वास ने तो सब चौपट कर रखा है! ऐसे विश्वास पर ही बैठे रहें, आदमी काहे को किसी बात के लिए चेष्टा करे?"

बाबू साहब ने सोचा कि मूर्ख स्त्री के मुँह लगना ठीक नहीं, अतएव वह स्त्री की बात का कुछ उत्तर न देकर वहाँ से टल गए।

(२)

बाबू रामजीदास धनी आदमी हैं। कपड़े की आढ़त का काम करते हैं। लेन-देन भी है। इनके एक छोटा भाई है। उसका नाम है, कृष्णदास। दोनों भाइयों का परिवार एक ही में है। बाबू रामजीदास की आयु पैंतीस वर्ष के लगभग है, और छोटे भाई कृष्णदास इक्कीस के लगभग। रामजीदास निःसन्तान हैं। कृष्ण-दास के दो सन्तानें हैं; एक पुत्र—वही पुत्र, जिससे पाठक परिचित हो चुके हैं—और एक कन्या है। कन्या की आयु दो वर्ष के लगभग है।

रामजीदास अपने छोटे भाई और उसकी सन्तान पर बड़ा स्नेह रखते हैं—ऐसा स्नेह कि उसके प्रभाव से उन्हें अपनी सन्तान समझते हैं। दोनों बच्चे भी रामजीदास से इतने हिले हैं कि उन्हें अपने पिता से भी अधिक समझते हैं।

परन्तु रामजीदास की पत्नी रामेश्वरी को अपनी सन्तानहीनता का बड़ा दुःख है। वह दिन-रात सन्तान ही के सोच में घुला करती हैं। छोटे भाई की सन्तान पर पति का प्रेम उनकी आँख में काँटों की तरह खटकता है।

रात को भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर रामजीदास शय्या पर लेटे हुए शीतल और मन्द वायु का आनन्द ले रहे थे। पास ही दूसरी शय्या पर रामेश्वरी हथेली पर सिर रखे, किसी चिन्ता में डूबी हुई थीं। दोनों बच्चे अभी बाबू साहब के पास से उठकर अपनी माँ के पास गए थे।

बाबू साहब ने अपनी स्त्री की ओर करवट लेकर कहा—"आज तुमने मनोहर को इस बुरी तरह से ढकेला था कि मुझे अब तक उसका दुःख है। कभी-कभी तो तुम्हारा व्यवहार बिलकुल ही अमानुषिक हो उठता है।"

रामेश्वरी बोलीं—"तुम्हीं ने ऐसा बना रखा है। उस दिन पण्डित ने कहा था कि हम दोनों के जन्म-पत्र में सन्तान का जोग है, और उपाय करने से सन्तान भी हो सकती है, उसने उपाय भी बताए थे; पर तुमने उनमें से एक भी उपाय करके न देखा। बस, तुम तो इन्हीं दोनों में मग्न हो, तुम्हारी इस बात से रात-दिन मेरा कलेजा सुलगता रहता है। आदमी उपाय तो करके देखता है। फिर होना न होना तो भगवान् के अधीन है।"

बाबू साहब हँसकर बोले—"तुम्हारी जैसी सीधी स्त्री भी···क्या कहूँ! तुम इन ज्योतिषियों की बातोंपर विश्वास करती हो, जो दुनिया-भर के झूठे और धूर्त हैं! ये झूठ बोलने की रोटियाँ खाते हैं।"

रामेश्वरी तुनककर बोलीं—"तुम्हें तो सारा संसार झूठा ही दिखाई पड़ता है। ये पोथी-पुराण भी सब झूठे हैं? पण्डित कुछ अपनी तरफ से तो बनाकर कहते ही नहीं हैं; शास्त्र में जो लिखा है, वही वे भी कहते हैं। शास्त्र झूठा है, तो वे भी झूठे हैं। अँगरेजी क्या पढ़ी, अपने आगे किसी को गिनते ही नहीं। जो बातें बाप-दादों के ज़माने से चली आई हैं, उन्हें भी झूठा बनाते हैं।"

बाबू साहब—"तुम बात तो समझती ही नहीं, अपनी ही ओटे जाती हो। मैं यह नहीं कहता कि ज्योतिष शास्त्र झूठा है। संभव है, वह सच्चा हो, परन्तु ज्यतिषियों में अधिकांश झूठे होते हैं। उन्हें ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं। दो-एक छोटी-मोटी पुस्तकें पढ़कर ज्योतिषी बन बैठते हैं, और लोगों को ठगते फिरते हैं। ऐसी दशा में उन पर कैसे विश्वास किया जा सकता है?"

रामेश्वरी—"हूँ! सब झूठे ही हैं, तुम्हीं एक सच्चे हो? अच्छा, एक बात पूछती हूँ, भला तुम्हारे जी में सन्तान की इच्छा क्या कभी नहीं होती?"

इस बार रामेश्वरी ने बाबू साहब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा। वह कुछ देर चुप रहे। तत्पश्चात् एक लम्बी साँस लेकर बोले—"भला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जिसके हृदय में सन्तान का मुख देखने की इच्छा न हो? परन्तु किया क्या जाय? जब नहीं हैं, और न होने की आशा ही है, तब उसके लिए व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ? इसके सिवा, जो बात अपनी सन्तान से होती, वही भाई की सन्तान से भी हो रही है। जितना स्नेह अपनी पर होता, उतना ही इन पर भी है। जो आनन्द उनकी बाल-क्रीड़ा से आता, वही इनकी क्रीड़ा से भी आ रहा है। फिर मैं नहीं समझता कि चिन्ता क्यों की जाय!

रामेश्वरी कुछ कुढ़कर बोलीं—"तुम्हारी समझ को मैं क्या कहूँ। इसी से तो रात-दिन जला करती हूँ। भला यह बताओ कि हमारे पीछे क्या इन्हीं से तुम्हारा नाम चलेगा?"

बाबू साहब हँसकर बोले—"अरे, तुम भी कहाँ की पोच बातें लाईं। नाम सन्तान से नहीं चलता, नाम अपनी सुकृति से चलता है। तुलसीदास को देश का बच्चा-बच्चा जानता है। सूरदास को मरे कितने दिन हो चुके? इसी प्रकार कितने महात्मा हो गए हैं, उन सबका नाम क्या उनकी सन्तान ही की बदौलत चल रहा है? सच पूछो, तो सन्तान से जितनी नाम चलने की आशा रहती है, उतनी नाम डूब जाने की भी संभावना रहती है। परन्तु सुकृति एक ऐसी वस्तु है जिससे नाम बढ़ने के सिवा घटने की कभी आशंका रहती ही नहीं। हमारे शहर में राय गिरधारीलाल कितने नामी आदमी थे? उनके सन्तान कहाँ है? पर उनकी धर्म-

शाला और अनाथालय से उनका नाम अब तक चला जा रहा है और न जाने कितने दिनों तक चला जायगा ?"

रामेश्वरी—"शास्त्र में लिखा है कि जिसके पुत्र नहीं होता उसको मुक्ति नहीं होती है।"

बाबू०—"मुक्ति पर मुझे विश्वास ही नहीं। मुक्ति है किस चिड़िया का नाम ? यदि मुक्ति होना नाम भी लिया जाय, तो यह कैसे माना जा सकता है कि सब पुत्रवानों की मुक्ति हो ही जाती है ? मुक्ति का भी सहज उपाय है। ये जितने पुत्र वाले हैं; सभी की तो मुक्ति हो जाती होगी ?"

रामेश्वरी निरुत्तर होकर बोलीं—"अब तुमसे कौन बकवास करे, तुम तो अपने सामने किसी की मानते ही नहीं।"

(३)

मनुष्य का हृदय बड़ा ममत्वप्रेमी है। कैसी ही उपयोगी और कितनी ही सुन्दर वस्तु क्यों न हो, जब तक मनुष्य उसको पराई समझता है, तब तक उससे प्रेम नहीं करता। किन्तु भद्दी-से-भद्दी और काम में न आनेवाली वस्तु को भी यदि मनुष्य अपनी समझता है, तो उससे प्रेम करता है। पराई वस्तु कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो, कितनी ही उपयोगी क्यों न हो, कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, उनके नष्ट होने पर मनुष्य कुछ भी दुःख का अनुभव नहीं करता, इसलिए कि वह वस्तु उसकी नहीं, पराई है। अपनी वस्तु कितनी ही भद्दी हो, काम में न आने वाली हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य को दुःख होता है; इसलिए कि वह अपनी चीज़ है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य पराई चीज़ से प्रेम करने लगता है। ऐसी दशा में भी जब तक मनुष्य उस वस्तु को अपनी बनाकर नहीं छोड़ता अथवा अपने हृदय में यह विचार नहीं दृढ़ कर लेता कि वह वस्तु मेरी है, तब तक उसे संतोष नहीं होता। ममत्व से प्रेम उत्पन्न होता है;-प्रेम से ममत्व। इन दोनों का साथ चोली-दामन का-सा है। ये कभी पृथक् नहीं किये जा सकते।

यद्यपि रामेश्वरी को माता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, तथापि उनका हृदय एक माता का हृदय बनने की पूरी योग्यता रखता था। उनके हृदय में वे सभी गुण विद्यमान तथा अंतर्निहित थे, जो एक माता के हृदय में होते हैं,

परन्तु उनका विकास नहीं हुआ था। उनका हृदय उस भूमि की तरह था, जिसमें बीज तो पड़ा हुआ है; पर उसको सींचकर और इस प्रकार बीज को प्रस्फुटित करके भूमि के ऊपर लानेवाला कोई नहीं। इसलिए उनका हृदय उन बच्चों की ओर खिंचता तो था, परन्तु जब उन्हें ध्यान आता था कि ये बच्चे मेरे नहीं, दूसरे के हैं, तब उनके हृदय में उनके प्रति द्वेष उत्पन्न होता था, घृणा पैदा होती थी। विशेषकर उस समय उस द्वेष की मात्रा और भी बढ़ जाती थी, जब वह देखती थी कि उनके पतिदेव उन बच्चों पर प्राण देते हैं, जो उनके (रामेश्वरी के) नहीं है।

शाम का समय था। रामेश्वरी खुली छत पर बैठी हवा खा रही थीं। उनके पास ही देवरानी भी बैठी थी। दोनों बच्चे छत पर दौड़कर खेल रहे थे, रामेश्वरी उनके खेलों को देख रही थीं। इस समय रामेश्वरी को उन बच्चों का खेलना-कूदना बड़ा भला मालूम हो रहा था। हवा में उड़ते हुए उनके बाल, कमल की तरह खिले हुए उनके नन्हे-नन्हे मुख, उनकी प्यारी-प्यारी तोतली बातें, उनका चिल्लाना, भागना, लौट जाना इत्यादि क्रीड़ाएँ उनके हृदय को शीतल कर रही थीं। सहसा मनोहर अपनी बहन को मारने दौड़ा। वह खिलखिलाती हुई दौड़कर रामेश्वरी की गोद में जा गिरी। उसके पीछे-पीछे मनोहर भी दौड़ा हुआ आया, और वह भी उन्हीं की गोद में जा गिरा। रामेश्वरी उस समय सारा द्वेष भूल गई। उन्होंने दोनों बच्चों को उसी प्रकार हृदय से लगा लिया, जिस प्रकार वह मनुष्य लगाता है, जो कि बच्चों के लिए तरस रहा हो। उन्होंने बड़ी सहिष्णुता से दोनों को प्यार किया। उस समय यदि कोई अपरिचित मनुष्य उन्हें देखता; तो उसे यही विश्वास होता कि रामेश्वरी ही उन बच्चों की माता हैं।

दोनों बच्चे बड़ी देर तक उनकी गोद में खेलते रहे। सहसा उसी समय किसी के आने की आहट पाकर बच्चों की माता वहाँ से उठकर चली गई।

"मनोहर, ले रेलगाड़ी!"—कहते हुए बाबू रामजीदास छत पर आये। उनका स्वर सुनते ही दोनों ही बच्चे रामेश्वरी की गोद से तड़पकर निकल भागे। रामजीदास ने पहले दोनों को खूब प्यार किया, फिर बैठकर रेलगाड़ी दिखाने लगे।

इधर रामेश्वरी की नींद-सी टूटी। पति को बच्चों में मगन होते देखकर उनकी भँवें तन गईं। बच्चों के प्रति फिर वही घृणा और द्वेष का भाव जाग उठा।

बच्चों को रेलगाड़ी देकर बाबू साहब रामेश्वरी के पास आये, और मुस्कराकर बोले—"आज तो तुम बच्चों को बड़ा प्यार कर रही थीं! इससे मालूम होता है कि तुम्हारे हृदय में भी इनके प्रति कुछ प्रेम अवश्य है।"

रामेश्वरी को पति की यह बात बहुत बुरी लगी। उन्हें अपनी कमज़ोरी पर बड़ा दुःख हुआ। केवल दुःख ही नहीं, अपने ऊपर क्रोध भी आया। वह दुःख और क्रोध पति के उक्त वाक्य से और भी बढ़ गया। उनकी कमजोरी पति पर प्रकट हो गई, यह बात उनके लिए असह्य हो उठी।

रामजीदास बोले—"इसलिए मैं कहता हूँ कि अपनी संतान के लिए सोच करना वृथा है। यदि तुम इनसे प्रेम करने लगो तो तुम्हें ये ही अपनी सन्तान प्रतीत होने लगेंगे! मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि तुम इनसे स्नेह करना सीख रही हो।"

यह बात बाबू साहब ने नितान्त शुद्ध हृदय से कही थी; परन्तु रामेश्वरी को इसमें व्यंग की तीक्ष्ण गन्ध मालूम हुई। उन्होंने कुढ़कर मन में कहा—इन्हें मौत भी नहीं आती। मर जायें, पाप कटे! आठों पहर आँखों के सामने रहने से प्यार करने को जी ललचा ही उठता है। इनके मारे कलेजा और भी जला करता है।

बाबू साहब ने पत्नी को मौन देखकर कहा—"अब झेंपने से क्या लाभ? अपने प्रेम को छिपाना व्यर्थ है। छिपाने की आवश्यकता भी नहीं।"

रामेश्वरी जल-भुनकर बोलीं—"मुझे क्या पड़ी है, जो मैं प्रेम करूँगी? तुम्हीं को मुबारक रहे। निगोड़े आप ही आ-आकर घुसते हैं। एक घर में रहने से कभी-कभी हँसना-बोलना ही पड़ता है। अभी परसों ज़रा यों ही ढकेल दिया उस पर तुमने सैकड़ों बातें सुनाईं। संकट में प्राण हैं; न यों चैन, न यों चैन।"

बाबू साहब को पत्नी के वाक्य सुनकर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा—"न जाने कैसे हृदय की स्त्री है। अभी अच्छी-खासी बैठी बच्चों को प्यार कर रही थी। मेरे आते ही गिरगिट की तरह रंग बदलने लगी। अपनी

इच्छा से चाहे जो करे, पर कहने से बल्लियों उछलती है। न जाने मेरी बातों में कौन-सा विष घुला रहता है। यदि मेरा कहना ही बुरा मालूम होता है तो न कहा करूँगा। इतना याद रखो कि अब जो कभी इनके विषय में निगोड़े-सिगोड़े अप-शब्द निकाले, तो अच्छा न होगा! तुमसे मुझे बच्चे कहीं अधिक प्यारे हैं।"

रामेश्वरी ने इसका कोई उत्तर न दिया। अपने क्षोभ तथा क्रोध को वह आँखों द्वारा निकालने लगीं।

जैसे-ही-जैसे बाबू रामजीदास का स्नेह दोनों बच्चों पर बढ़ता जाता था, वैसे-ही-वैसे रामेश्वरी के द्वेष और घृणा की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। प्रायः बच्चों के पीछे पति-पत्नी में कहा-सुनी हो जाती थी और रामेश्वरी को पति के कटुवचन सुनने पड़ते थे। जब रामेश्वरी ने यह देखा कि बच्चों के कारण वह पति की नजरों से गिरती जा रही है, तब उनके हृदय में बड़ा तूफान उठा। उन्होंने सोचा—पराये बच्चों के पीछे यह मुझसे प्रेम कम करते जाते हैं, मुझे हर समय बुरा-भला कहा करते हैं। इनके लिए बच्चे ही सब कुछ हैं। मैं कुछ भी नहीं! दुनिया मरती जाती है, पर इन दोनों को मौत नहीं। ये पैदा होते ही क्यों न मर गए। न होते, न मुझे ये दिन देखने पड़ते। जिस दिन ये मरेंगे, उस दिन घी के चिराग जलाऊँगी। इन्होंने ही मेरा घर सत्यानाश कर रखा है।

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। एक दिन नियमानुसार रामेश्वरी छत पर अकेली बैठी हुई थीं। उनके हृदय में अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे। विचार और कुछ नहीं, वही अपनी निज की सन्तान का अभाव, पति का भाई की सन्तान के प्रति अनुराग—इत्यादि। कुछ देर बाद उनके विचार स्वयं कष्टदायक प्रतीत होने लगे। तब वह अपना ध्यान दूसरी ओर लगाने के लिए उठकर टहलने लगीं।

वह टहल रही थीं कि मनोहर दौड़ता हुआ आया। मनोहर को देखकर उनकी भृकुटी चढ़ गई, और वे छत की चहारदीवारी पर हाथ रखकर खड़ी हो गईं।

संध्या का समय था आकाश में रंग-बिरंगी पतंगें उड़ रही थीं। मनोहर कुछ देर तक खड़ा पतंगों को देखता और सोचता रहा कि कोई पतंग कटकर उसकी छत पर गिरे, तो क्या ही आनन्द आवे। देर तक पतंग गिरने की आशा करने के

बाद वह दौड़कर रामेश्वरी के पास आया, और उनकी टाँगों में लिपटकर बोला—"ताई, हमें पतंग मँगा दो।"

रामेश्वरी ने झिड़ककर कहा—"चल हट, अपने ताऊ से माँग जाकर।"

मनोहर कुछ अप्रतिभ होकर फिर आकाश की ओर ताकने लगा। थोड़ी देर बाद उससे फिर न रहा गया। इस बार उसने बड़े लाड़ से आकर अत्यन्त करुण स्वर में कहा—"ताई, पतंग मँगा दो; हम भी उड़ाएँगे।"

इस बार उसकी भोली प्रार्थना से रामेश्वरी का कलेजा कुछ पसीज गया। वह कुछ देर तक उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखती रहीं। फिर उन्होंने एक लम्बी साँस लेकर मन-ही-मन कहा—यदि यह मेरा पुत्र होता, तो आज मुझ-सी भाग्यवान स्त्री संसार में दूसरी न होती। निगोड़-मारा कितना सुन्दर है, और कैसी प्यारी-प्यारी बातें करता है। यही जी चाहता है कि उठाकर छाती से लगा लें।

यह सोचकर वह उसके सिर पर हाथ फेरने वाली ही थीं, इतने में मनोहर उन्हें मौन देखकर बोला—"तुम हमें पतंग नहीं मँगवा दोगी तो ताऊजी से कहकर तुम्हें पिटवायेंगे।"

यद्यपि बच्चे की इस भोली बात से भी बड़ी मधुरता थी, तथापि रामेश्वरी का मुख क्रोध के मारे लाल हो गया। वह उसे झिड़ककर बोलीं—"जा कह दे अपने ताऊ से। देखूँ, वह मेरा क्या कर लेंगे?"

मनोहर भयभीत होकर उनके पास से हट आया, और फिर सतृण नेत्रों से आकाश में उड़ती हुई पतंगों को देखने लगा।

इधर रामेश्वरी ने सोचा—यह सब ताऊजी के दुलार का फल है कि बालिश्त-भर का लड़का मुझे धमकाता है। ईश्वर करे; इस दुलार पर बिजली टूटे।

उसी समय आकाश से एक पतंग कटकर उसी छत की ओर आई, और रामेश्वरी के ऊपर से होती हुई छज्जे की ओर गई। छत के चारों ओर चहार-दीवारी थी। जहाँ रामेश्वरी खड़ी हुई थी, केवल वहाँ पर एक द्वार था, जिससे छज्जे पर आ-जा सकते थे। रामेश्वरी इस द्वार से सटी हुई खड़ी थीं। मनोहर

ने पतंग को छज्जे पर जाते देखा। पतंग पकड़ने के लिए वह दौड़कर छज्जे की ओर चला। रामेश्वरी खड़ी देखती रहीं। मनोहर उनके पास होकर छज्जे पर चला गया और उनसे दो फुट की दूरी पर खड़ा होकर पतंग को देखने लगा। पतंग छज्जे पर से होती हुई नीचे, घर के आँगन में, जा गिरी। एक पैर छज्जे की मुँडेर पर रखकर मनोहर ने नीचे आँगन में झाँका और पतंग को आँगन में गिरते देख प्रसन्नता के मारे फूला न समाया। वह नीचे जाने के लिए शीघ्रता से घूमा; परन्तु घूमते समय मुँडेर पर से उसका पैर फिसल गया। वह नीचे की ओर चला। नीचे जाते-जाते उसके दोनों हाथों में मुँडेर आ गई। वह उसे पकड़कर लटक गया और रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया—"ताई !" रामेश्वरी ने धड़कते हुए कलेजे से इस घटना को देखा। उनके मन में आया कि अच्छा है, मरने दो, सदा का पाप कट जायगा। यही सोचकर वह क्षण-भर के लिए रुकीं। उधर मनोहर के हाथ मुँडेर पर से फिसलने लगे। वह अत्यन्त भय तथा करुण नेत्रों से रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया—"अरी ताई !" रामेश्वरी की आँखों से मनोहर की आँखें आ मिलीं। मनोहर की वह करुण दृष्टि देखकर रामेश्वरी का कलेजा मुँह को आ गया। उन्होंने व्याकुल होकर मनोहर को पकड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। उनका हाथ मनोहर के हाथ तक पहुँचा भी नहीं था कि मनोहर के हाथ से मुँडेर छूट गई। वह नीचे आ गिरा। रामेश्वरी चीख मारकर छज्जे पर गिर पड़ीं।

रामेश्वरी एक सप्ताह तक बुखार में बेहोश पड़ी रहीं। कभी-कभी वह ज़ोर से चिल्ला उठतीं और कहतीं—"देखो-देखो, वह गिरा जा रहा है—उसे बचाओ—दौड़ो—मेरे मनोहर को बचा लो।" कभी वह कहतीं—"बेटा मनोहर, मैंने तुझे नहीं बचाया। हाँ, हाँ मैं चाहती तो बचा सकती थी—मैंने देर कर दी।" इसी प्रकार के प्रलाप वह किया करतीं। मनोहर की टाँग उखड़ गई थी। टाँग बिठा दी गई। वह क्रमशः फिर अपनी असली हालत पर आने लगी।

एक सप्ताह बाद रामेश्वरी का ज्वर कम हुआ। अच्छी तरह होश आने पर उन्होंने पूछा—"मनोहर कैसा है ?"

रामजीदास ने उत्तर दिया—"अच्छा है।"

रामेश्वरी—"उसे मेरे पास लाओ।"

मनोहर रामेश्वरी के पास लाया गया। रामेश्वरी ने उसे प्यार से हृदय लगाया। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। हिचकियों से गला रुँध गया।

रामेश्वरी कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ हो गईं। अब वह मनोहर की बहिन चुन्नी से भी द्वेष और घृणा नहीं करतीं और मनोहर तो अब उनका प्राणाधार हो गया है। उसके बिना उन्हें एक क्षण भी कल नहीं पड़ती।

४

उसने कहा था

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

(१)

बड़े-बड़े शहरों के इक्के-गाड़ीवालों की ज़बान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए, इक्केवाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट-सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखों के न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अँगुलियों के पोरों को चीथकर अपने-ही को सताया हुआ बताते हैं, और संसार भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने, नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले, तंग चक्करदार गलियों में, हर एक लड्ढीवाले के लिए ठहरकर, सब्र का समुद्र उमड़ाकर 'बचो खालसाजी!' 'हटो भाईजी!' 'ठहरना भाई!' 'आले दो लालाजी!' 'हटो बाछा[1]!' कहते हुए सफेद फेंटों, खच्चरों और बत्तखों, और गन्ने, खोमचे और भारे वालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि 'जी' और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पसन्द हो। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं है, वह चलती है—मीठी छुरी की तरह, महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चिनौती देने पर भी लीक से नहीं हटती, तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट जा जीर्ण जोगिए; हट जा करमा वालिए; हट जा पुत्तां प्यारिए; बच जा लम्बी वालिए। समष्टि में इनके अर्थ हैं, कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यों वाली है, पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहिये के नीचे आना चाहती है?—बच जा।

ऐसे बम्बूकार्टवालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की

---

१. बादशाह

एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिक्ख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दूकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को गिने बिना हटता न था।

'तेरे घर कहाँ हैं?'

'मगरे में;—और तेरे?'

'माँझे में; —यहाँ कहाँ रहती है?'

'अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा हैं।'

'मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरु बाज़ार में है।'

इतने में दूकानदार निबटा और इनको सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्कराकर पूछा—'तेरी कुड़माई[1] हो गई?'

इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई, लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जी वाले के यहाँ, दूध वाले के यहाँ अकस्मात दोनों मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा—'तेरी कुड़-माई हो गई?' और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिढ़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की सम्भावना के विरुद्ध बोली—'हाँ हो गई।'

'कब?'

'कल; देखते नहीं, यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू[2]।'

लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छावड़ीवाले की दिन भर की कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उँड़ेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अंधे की उपाधि पाई, तब कहीं घर पहुँचा।

---

१. मँगनी २. ओढ़नी

(२)

'राम-राम, यह भी कोई लड़ाई है! दिन-रात खन्दकों में बैठे हड्डियाँ अकड़ गईं। लुधियाना से दस गुना जाड़ा और मेह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं, ग़नीम कहीं दीखता नहीं; घंटे-दो घंटे में कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस गैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का जलजला सुना था, यहाँ दिन में पचीस जलजले होते हैं। जो कहीं खन्दक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई तो चटाक से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए हैं या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।'

'लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खन्दक में बिता ही दिये। परसों 'रिलीफ' आ जायगी, और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका[1] करेंगे और पेट-भर खाकर सो रहेंगे। उसी फ़िरंगी[2] मेम के बाग में—मखमल की-सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है, तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।'

'चार दिन तक पलक नहीं झँपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मारकर न लौटूं, तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं, और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अँधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो—'

'नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते। क्यों?'—सूबेदार हजारासिंह ने मुस्करा-कर कहा—'लड़ाई के मामले में जमादार या नायक के चलाये नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गए तो क्या होगा?'

'सूबेदार जी सच है'—लहनासिंह बोला—पर करें क्या? हड्डियों-हड्डियों

---

१. बकरा मारना २. प्रेमी

में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं, और खाई में दोनों तरफ से चम्बे की बावलियों के-से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय, तो गरमी आ जाय।'

'उदमी उठ, सिगड़ी में कोयले डाल; वजीरा, तुम चार जने बालटियाँ लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह, शाम हो गई है, खाई के दरवाजे का पहरा बदला दे।'—यह कहते हुए सूबेदार सारी खन्दक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भरकर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—'मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!'—इस पर सब खिलखिला पड़े, और उदासी के बादल फट गए।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भर उसके हाथ में देकर कहा—'अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।'

'हाँ देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमा[1] जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे[2] लगाऊँगा।'

'लाड़ीहोरां[3] को भी यहाँ बुला लोगे? या वही दूध पिलाने वाली फिरंगी मेम—'

'चुप कर, यहाँ वालों को शरम नहीं।'

'देश-देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिक्ख तम्बाखू नहीं पीते। वह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है और पीछे हटता हूँ, तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुलक के लिए लड़ेगा नहीं।'

'अच्छा, अब बोधासिंह कैसा है?'

'अच्छा है।'

'जैसे मैं जानता ही न होऊँ! रात-भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुज़र करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम न माँदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है मौत है, और 'निमोनिया' में मरने वालों को मुरब्बे[4] नहीं मिला करते।

---

१. जमीन की नाप २. पेड़ ३. स्त्री का आदरसूचक शब्द ४. नई नहरों के पास वर्गभूमि

'मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आँगन के पेड़ की छाया होगी।'

वजीरासिंह ने त्योरी चढ़ाकर कहा—'क्या मरने-मारने की बात लगाई है ? मरे जर्मनी और तुरक ! हाँ भाइयो, कैसे—'

और फिर मस्त होकर सबने एक गीत गाया।

कौन जानता था कि दाढ़ियोंवाले, घरबारी सिक्ख ऐसा लुच्चों का गीत गायेंगे, पर सारी खन्दक इस गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गए मानो चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

(३)

दो पहर रात गई है। अँधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिसकुटों के तीन टिनों पर, अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंह के दो कम्बल और बरानकोट[1] ओढ़कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुँह पर है और एक बोधासिंह के दुबले शरीर पर। बोधासिंह कराहा।

'क्यों बोधा भाई, क्या है ?'

'पानी पिला दो।'

लहनासिंह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा—'कहो कैसे हो ?' पानी पीकर बोधा बोला—'कँपनी छुट रही है। रोम-रोम में तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।'

'अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।'

'और तुम ?'

'मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है। पसीना आ रहा है।'

'ना, मैं नहीं पहनता; चार दिन से तुम मेरे लिए—'

'हाँ याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सवेरे ही आई है। विलायत से मेमें बुन-बुनकर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करे।' यों कहकर

---

१. ओवरकोट

लहना अपना कोट उतारकर जरसी उतारने लगा।

'सच कहते हो?'

'और नहीं झूठ?'—यों कहकर नाहीं करते बोधा को उसनै जबरदस्ती जरसी पहना दी और खाकी कोट और जीन का कुरता-भर पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज़ आई—'सूबेदार हजारा-सिंह!'

'कौन लपटन साहब? हुकुम हुजूर'—कहकर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

'देखो, इसी समय धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से जियादह जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक छीनकर वहीं, जब तक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।'

'जो हुक्म।'

चुपचाप सब तैयार हो गए। बोधा भी कम्बल उतारकर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधा के बाप सूबेदार ने अंगुली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझकर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुंह फेरकर खड़े हो गए और जेब से सिगरेट निकालकर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—'लो तुम भी पियो।'

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुंह का भाव छिपाकर बोला—'लाओ साहब।'—हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुंह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले

बाल एक दिन में कहाँ उड़ गए और उनकी जगह कैदियों-से कटे हुए बाल कहाँ से आ गए ?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हें बल कटवाने का मौका मिल गया है ? लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उसकी रेजिमेंट में थे।

'क्यों साहब हम लोग हिन्दुस्तान कब जाएँगे ?'

'लड़ाई खत्म होने पर। क्यों क्या यह देश पसन्द नहीं ?'

'नहीं साहब, शिकार के मजे यहाँ कहाँ ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई के पीछे हम हम आप जगाधरी ज़िले में शिकार करने गए थे—'हाँ हाँ'—वही जब आप खोते[1] पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था। 'बेशक पाजी कहीं का'—सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी और आपकी एक गोली कन्धे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रेजिमेंट की मेस में लगाएँगे।'—'हो, पर मैंने वह विलायत भेज दिया। 'ऐसे बड़े-बड़े सींग ! दो-दो फुट के तो होंगे !'

'हाँ लहनासिह, दो फुट चार इंच के थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया ?'

'पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ—कहकर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अँधेरे में किसी सोनेवाले से वह टकराया।

'कौन ? वजीरासिंह ?'

'हाँ, क्यों लहनासिह ? क्या कयामत आ गई ?' ज़रा तो आँख लगने दी होती ?'

(४)

'होश में आओ। कयामत आई और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आई है।'

---

१. गधा

'क्या ?'

'लपटन साहब या तो मारे गए हैं या कैद हो गए हैं। उनकी वर्दी पहनकर यह कोई जर्मन ग्राया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा। मैंने देखा ग्रौर बातें की हैं। सौहरा[1] साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू; ग्रौर मुझे पीने को सिगरेट दिया।'

'तो ग्रब ?'

'ग्रब मारे गए। धोखा है। सूबेदार होराँ कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे ग्रौर यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाग्रो। ग्रभी बहुत दूर न गए होंगे। सूबेदार से कहो कि एकदम लौट ग्राएँ। खन्दक की बात झूठ है। चले जाग्रो खन्दक के पीछे से निकल जाग्रो। पत्ता तक न खुड़के। देर मत करो।'

'हुकुम तो यह है कि यहीं—'

'ऐसी-तैसी हुकुम की ! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह, जो इस वक्त वहाँ सबसे बड़ा ग्रफसर है उसका हुकुम हैं। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ।'

'पर यहाँ तो तुम ग्राठ ही हो।'

'ग्राठ नहीं, दस लाख। एक-एक ग्रकालिया सिक्ख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाग्रो।'

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले, तीनों को जगह-जगह खन्दक की दीवारों में घुसेड़ दिया ग्रौर तीनों में एक तार-सा बाँध दिया। तार के ग्रागे सूत की एक गुंत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ कर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने···

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तानकर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुन्दा साहब की गर्दन पर मारा ग्रौर साहब 'ग्राँख ! मीन गौट्ट' कहते हुए चित्त हो गए। लहनासिंह ने तीनों गोले बीनकर खन्दक के

---

१. ससुरा (गाली)

बाहर फेंके और साहब को घसीटकर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन-चार लिफाफे और एक डायरी निकालकर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला—'क्यों लपटन साहब! मिजाज़ कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि जगाधरी के ज़िले में नीलगाएँ होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ उर्दू कहाँ से सीख आए! हमारे लपटन साहब तो बिना 'डैम' के पाँच लफ्ज भी नहीं बोला करते।'

लहना ने पतलून के जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने मानो जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेब में डाले।

लहनासिंह कहता गया—'चालाक तो बड़े हो, पर माँझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए। तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गाँव में आया था। औरतों को बच्चे होने की तावीज बाँटता था। और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजी बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था जर्मन वाले बड़े पण्डित हैं। वेद पढ़-पढ़कर उसमें से विमान चलाने की विद्या जान गए हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आएँगे तो हत्या बन्द कर देंगे। मंडी के बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपया निकाल लो; सरकार का राज्य जाने वाला है। डाक बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजी की दाढ़ी मूंड़ दी थी। और गाँव से बाहर निकालकर कहा था कि मेरे गाँव में अब पैर रखा तो—'

साहब की जेब में से पिस्तौल चली और लहना की जाँघ में गोली लगी; इधर लहना की हैनरीमार्टिनी के दो फायरों ने साहब को कपाल-क्रिया कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड़ आए।

बोधा चिल्लाया—'क्या है?'

लहनासिंह ने उसे यह कहकर सुला दिया कि 'एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया' और औरों से सब हाल कह दिया। सब बन्दूकें लेकर तैयार हो

गए। लहना ने साफा फाड़कर घाव के दोनों तरफ पट्टियाँ कसकर बाँधी। घाव मांस में ही था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिखों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। दूसरे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तक कर मार रहा था—वह खड़ा था, और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़े-से मिनटों में वे…

अचानक आवाज़ आई 'वाह गुरुजी दी फतह ! वाह गुरुजी दा खालसा !!' और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों के ऊपर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गए। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—अकाल सिक्खां दी फौज आई ! वाह गुरुजी दी फतह ! वाह गुरुजी दा खालसा !! सत श्री अकाल पुरुख !!'—और लड़ाई खतम हो गई। तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पंद्रह के प्राण गए। सूबेदार के दाहिने कन्धे में से गोली आर-पार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खन्दक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी साफा कसकर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना को दूसरा घाव—भारी घाव—लगा है।

लड़ाई के समय चाँद निकल आया था, ऐसा चाँद, जिसके प्रकाश के संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी जैसी बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंह से सारा हाल सुना और कागज़ात पाकर वे उसकी तुरन्त बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज़ तीन मील दाहिनी ओर की खाई वालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो बीमार ढोने की

गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घंटे के अन्दर-अन्दर आ पहुंचीं। फील्ड अस्पताल नज़दीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जाएँगे, इसीलिए मामूली पट्टी बाँधकर एक गाड़ी में घायल लिटाये गए और दूसरी में लाशें रखी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही। पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है सवेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर में, बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—'तुम्हें बोधा की कसम है, और सूबेदारनी जी की सौगन्ध है जो इस गाड़ी में न चले जाओ।'

'और तुम ?'

'मेरे लिए वहाँ पहुँचकर गाड़ी भेज देना और जर्मन मुरदों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ ? वजीरासिंह मेरे पास है ही।'

'अच्छा, पर—'

'बोधा गाड़ी पर लेट गया ? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिये तो, सूबेदारनी हीराँ को चिट्ठी लिखी तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था वह मैंने कर दिया।'

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़कर कहा—'तैंने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था।'

'अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना, और कह भी देना।'

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया।—'वजीरा, पानी पिला दे, और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।'

(५)

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म-भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं; समय की धुन्ध बिलकुल उन पर से हट जाती है।

× × ×

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दहीवाले के यहाँ, सब्ज़ीवाले के यहाँ, हर कहीं उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है 'तेरी कुड़माई हो गई है?' तब 'धत्' कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा, तो उसने कहा—'हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलोंवाला सालू?'—सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?

'वजीरासिंह, पानी पिला दे।'

× × ×

पच्चीस वर्ष बीत गए। अब लहनासिंह नं० ७७ रैफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर ज़मीन के मुकदमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। वहाँ रेजिमेंट के अफसर की चिट्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है, फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ ही चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था, और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेड़े[1] में से निकलकर आया। बोला—लहना सूबेदारनी तुझको जानती हैं, बुलाती हैं। जा मिल आ—लहनासिंह भीतर पहुँचा। सूबेदारनी मुझे जानती हैं? कब से? रेजिमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाज़े पर जाकर 'मत्था टेकना!' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

'मुझे पहचाना?'

'नहीं।'

'तेरी कुड़माई हो गई—धत्—कल हो गई—देखते नहीं रेशमी बूटों वाला सालू—अमृतसर में—'

---

१. जनाने

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

'वजीरा, पानी पिला'—उसने कहा था।

× × ×

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है—'मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गए। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में ज़मीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों[1] की एक घघरिया पलटन क्यों न बना दी, जो मैं भी सूबेदार के साथ चली जाती? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं।'—सूबेदारनी रोने लगी।—'अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन टाँगेवाले का घोड़ा दहीवाले की दूकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गए थे, और मुझे उठाकर दूकानदार के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।'

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी में चली गई। लहना भी आँसू पोंछता बाहर आया।

× × ×

लहना का सिर अपनी गोद में रखे वजीरासिंह बैठा है। जब माँगता है तब पानी पिला देता है। आधे घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—'कौन! कीरतसिंह?'

वजीरा ने कुछ समझकर कहा—'हाँ।'

'भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्टे पर मेरा सिर रख ले।' वजीरा ने वैसा ही किया।

'हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अब के हाड़[2] में यह आम खूब फलेगा। चाचा-भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है, उतना

---

१. स्त्रियों २. आषाढ़

ही यह श्राम है। जिस महीने उसका जन्म हुश्रा था, उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।'

वजीरासिंह के श्राँसू टप-टप टपक रहे थे।

कुछ दिन पीछे लोगों ने श्रखबारों में पढ़ा—फ्रांस श्रौर बेलजियम—६८ वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिक्ख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

५

दो बैलों की कथा

प्रेमचन्द

(१)

जानवरों में गधा सबसे बुद्धिहीन समझा जाता है। हम किसी आदमी को पल्ले दरजे का बेवकूफ कहना चाहते हैं, तो उसे गधा कहते हैं, गधा सचमुच बेवकूफ है या उसके सीधेपन, उसकी निरापद सहिष्णुता ने उसे यह पदवी दे दी है, इसका निश्चय नही किया जा सकता। गाएँ सींग मारती हैं, ब्याई हुई गाय तो अनायास ही सिंहनी का रूप धारण कर लेती है। कुत्ता भी बहुत गरीब जानवर है, लेकिन कभी-कभी उसे भी क्रोध आ ही जाता है, लेकिन गधे को कभी क्रोध करते नहीं सुना, न देखा। जितना चाहो गरीब को मारो, चाहे जैसी खराब सड़ी हुई घास सामने डाल दो, उसके चेहरे पर कभी असन्तोष की छाया भी न दिखाई देगी। बैशाख में चाहे एकाध बार कुलेल कर लेता हो, पर हमने तो उसे कभी खुश होते नहीं देखा। उसके चेहरे पर एक स्थायी विषाद स्थायी रूप से छाया रहता है। सुख-दुःख, हानि-लाभ, किसी दशा में भी उसे बदलते नहीं देखा। ऋषियों-मुनियों के जितने गुण हैं, वह सभी उसमें पराकाष्ठा को पहुँच गए हैं, पर आदमी उसे बेवकूफ कहता है। सद्‌गुणों का इतना अनादर कभी नहीं देखा। कदाचित् सीधापन संसार के लिए उपयुक्त नहीं है। देखिए न भारतवासियों की अफ्रीका में क्यों दुर्दशा हो रही है? बेचारे शराब नहीं पीते, चार पैसे कुसमय के लिए बचाकर रखते हैं, जी-तोड़कर काम करते हैं, किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं करते, चार बातें सुनकर गम खा जाते हैं। फिर भी बदनाम हैं। कहा जाता है, वे जीवन के आदर्श को नीचा करते हैं। अगर वे भी ईंट का जवाब पत्थर से देना सीख जाते, शायद सभ्य कहलाने लगते। जापान की मिसाल सामने है। एक ही विजय ने उसे संसार की सभ्य जातियों में गण्य बना दिया।

लेकिन गधे का एक छोटा भाई और है, जो उससे कुछ ही कम गधा है, और वह है 'बैल'। जिस अर्थ में हम 'गधा' शब्द का प्रयोग करते हैं, कुछ उसी से मिलते-जुलते अर्थ में 'बछिया के ताऊ' का प्रयोग भी करते हैं। कुछ लोग बैल को शायद बेवकूफी में सर्वश्रेष्ठ कहेंगे; हमारा विचार ऐसा नहीं। बैल कभी-कभी मारता भी है, कभी-कभी अड़ियल बैल भी देखने में आ जाता है, और भी कई रीतियों से वह अपना असंतोष प्रकट कर देता है। अतएव उसका स्थान गधे से नीचा है।

झूरी काछी के दोनों बैलों के नाम थे हीरा और मोती। दोनों पछाईं जाति के थे। देखने में सुन्दर, काम में चौकस, डील ऊँचे। बहुत दिनों साथ रहते-रहते दोनों में भाई-चारा हो गया था। दोनों आमने-सामने या आस-पास बैठे हुए एक-दूसरे से मूक भाषा में विचार-विनिमय करते थे। एक-दूसरे की मन की बात कैसे समझ जाता था, हम नहीं कह सकते। अवश्य ही उनमें कोई ऐसी गुप्त शक्ति थी, जिससे जीवों में श्रेष्ठता का दावा करने वाला मनुष्य वंचित है। दोनों एक-दूसरे को चाटकर और सूंघकर अपना प्रेम प्रकट करते। कभी कभी दोनों सींग भी मिला लिया करते थे। विग्रह के भाव से नहीं केवल विनोद के भाव से जैसे दोस्तों में घनिष्ठता होते ही धौल-धप्पा होने लगता है। इसके बिना दोस्ती कुछ फुसफुसी, कुछ हलकी-सी रहती है, जिस पर ज़्यादा विश्वास नहीं किया जा सकता। जिस वक्त ये दोनों बैल हल या गाड़ी में जोत दिये जाते और गरदनें हिला-हिलाकर चलते तो हरेक की यही चेष्टा होती थी कि ज़्यादा-से-ज़्यादा बोझ मेरी ही गरदन पर रहे। दिन-भर के बाद दोपहर या संध्या को दोनों खुलते तो एक-दूसरे को चाट-चूटकर अपनी थकान मिटा लिया करते। नाँद में खली-भूसा पड़ जाने के बाद दोनों साथ उठते, साथ नाँद में मुँह डालते और साथ ही बैठते थे। एक मुंह हटा लेता तो दूसरा भी हटा लेता था।

संयोग की बात, झूरी ने एक बार गोईं को ससुराल भेज दिया। बैलों को क्या मालूम, वे क्यों भेजे जाते हैं। समझे मालिक ने हमें बेच दिया। अपना यों बेचा जाना उन्हें अच्छा लगा या बुरा, कौन जाने, पर झूरी के साले गया को, घर तक गोईं ले जाने में दाँतों पसीना आ गया। पीछे से हाँकता तो दोनों दाएँ-बाएँ भागते, पगहिया पकड़कर आगे से खींचता, तो दोनों पीछे को जोर लगाते। मारता तो

दोनों सींग नीचे करके हुंकारते। अगर ईश्वर ने उन्हें वाणी दी होती, तो भूरी से पूछते—तुम हम गरीबों को क्यों निकाल रहे हो? हमने तो तुम्हारी सेवा करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। अगर इतनी मेहनत से काम नहीं चलता था तो और काम लेते। हमें तो तुम्हारी चाकरी में मर जाना कबूल था। हमने कभी दाने-चारे की शिकायत नहीं की। तुमने जो कुछ खिलाया, वह सिर झुकाकर खा लिया। फिर तुमने हमें इस जालिम के हाथ क्यों बेच दिया?

सन्ध्या समय दोनों बैल अपने नये स्थान पर पहुँचे। दिन-भर के भूखे थे, लेकिन जब नांद में लगाये गए, तो एक ने भी उसमें मुँह न डाला। दिल भारी हो रहा था। जिसे उन्होंने अपना घर समझ रखा था, वह आज उनसे छूट यया था। यह नया घर, नया गाँव, नये आदमी, सब उन्हें बेगानों से लगते थे।

दोनों ने अपनी मूक भाषा में सलाह की, एक-दूसरे को कनखियों से देखा और लेट गए। जब गाँव में सोता पड़ गया, तो दोनों ने जोर मारकर पगहे तुड़ा डाले और घर की तरफ चल पड़ें। पगहे बहुत मजबूत थे। अनुमान न हो सकता था कि कोई बैल उन्हें तोड़ सकेगा, पर इन दोनों में इस समय दूनी शक्ति आ गई थी। एक-एक झटके में रस्सियाँ टूट गईं।

झूरी प्रातःकाल सोकर उठा, तो देखो बैल चरनी पर खड़े हैं। दोनों की गरदनों में आधा-आधा गराँव लटक रहा है। घुटनों तक पाँव कीचड़ में भरे हैं, और दोनों की आँखों में विद्रोहमय स्नेह झलक रहा है।

झूरी बैलों को देखकर स्नेह से गद्‌गद हो गया। दौड़कर उन्हें गले लगा लिया। प्रेमालिंगन और चुम्बन का वह दृश्य बड़ा ही मनोहर था।

घर और गाँव के लड़के ज़मा हो गए और तालियाँ बजा-बजाकर उनका स्वागत करने लगे। गाँव के इतिहास में यह घटना अभूतपूर्व न होने पर भी महत्त्व-पूर्ण थी। बाल-सभा ने निश्चय किया, दोनों पशु वीरों को अभिनन्दन-पत्र देना चाहिए। कोई अपने घर से रोटियाँ लाया, कोई गुड़, कोई चोकर, कोई भूसी।

एक बालक ने कहा—"ऐसे बैल किसी के पास न होंगे।"

दूसरे ने समर्थन किया—"इतनी दूर से दोनों अकेले चले आए।"

तीसरा बोला—"बैल नहीं हैं ये, उस जन्म के आदमी हैं।"

इसका प्रतिवाद करने का किसी को साहस न हुआ।

झूरी की स्त्री ने बैलों को द्वार पर देखा, तो जल उठी। बोली—"कैसे नमक-हराम बैल हैं कि एक दिन भी वहाँ काम न किया; भाग खड़े हुए।"

झूरी अपने बैलों पर यह आक्षेप न सुन सका। बोला—"नमकहराम क्यों हैं? चारा-दाना कुछ न दिया होगा, तो क्या करते!"

स्त्री ने रोब के साथ कहा—"बस तुम्हीं तो बैलों को खिलाना जानते हो, और तो सभी पानी पिला-पिलाकर रखते हैं।"

झूरी ने चिढ़ाया—"चारा मिलता तो क्यों भागते?"

स्त्री चिढ़ी—"भागे इसलिए कि वे लोग तुम जैसे बुद्धुओं की तरह बैलों को सहलाते नहीं। खिलाते हैं, तो रगड़कर जोतते भी हैं। ये दोनों ठहरे काम-चोर, भाग निकले। अब देखूँ कहाँ से खली और चोकर मिलता है। सूखे भूसे के सिवा कुछ न दूँगी, खाएँ चाहे मरें।"

वही हुआ। मजूर को कड़ी ताकीद कर दी गई कि बैलों को खाली सूखा भूसा दिया जाय।

बैलों ने नाँद में मुँह डाला तो फीका-फीका! न कोई चिकनाहट, न कोई रस। क्या खाएँ, आशा-भरी आँखों से द्वार की ओर ताकने लगे।

झूरी ने मजूर से कहा—"थोड़ी-सी खली क्यों नहीं डाल देता बे?"

"मालकिन मुझे मार ही डालेंगी।"

"चुराकर डाल आ।"

"ना दादा, पीछे से तुम भी उन्हीं की-सी कहोगे।"

दूसरे दिन झूरी का साला फिर आया और बैलों को ले चला। अबकी उसने दोनों को गाड़ी में जोता।

दो-चार बार मोती ने गाड़ी को खाई में गिराना चाहा, पर हीरा ने सँभाल लिया। वह ज़्यादा सहनशील था।

संध्या समय घर पहुँचकर उसने दोनों को मोटी रस्सियों में बाँधा और कल की शरारत का मज़ा चखाया। फिर वही सूखा भूसा डाल दिया। अपने दोनों बैलों को खली, चूनी सब कुछ दी।

दोनों बैलों का ऐसा अपमान कभी नहीं हुआ था। झूरी इन्हें फूल की छड़ी से भी न छूता था। उसकी टिटकार पर दोनों उड़ने लगते थे। यहाँ मार पड़ी। आहत सम्मान की व्यथा तो थी ही, उस पर मिला सूखा भूसा। नाँद की तरफ आँखें भी न उठाईं।

(२)

दूसरे दिन गया ने बैलों को हल में जोता; पर इन दोनों ने जैसे पाँव उठाने की कसम खा ली थी। वह मारते-मारते थक गया, पर दोनों ने पाँव नहीं उठाया। एक बार जब उस निर्दयी ने हीरा की नाक में खूब डंडे जमाए, तो मोती का गुस्सा काबू के बाहर हो गया। हल लेकर भागा। हल, रस्सी, जुआ, जोत सब टूट-टाट कर बराबर हो गया। गले में बड़ी-बड़ी रस्सियाँ न होतीं, तो दोनों पकड़ाई में न आते।

हीरा ने मूक भाषा में कहा—"भागना व्यर्थ है।"

मोती ने उसी भाषा में उत्तर दिया—"तुम्हारी तो इसने जान ही ले ली थी। अबकी बड़ी मार पड़ेगी।"

"पड़ने दो, बैल का जन्म लिया है, तो मार से कहाँ तक बचेंगे।"

"गया दो आदमियों के साथ दौड़ा आ रहा है दोनों के हाथों में लाठियाँ हैं।"

मोती बोला—"कहो तो दिखा दूँ कुछ मज़ा मैं भी। लाठी लेकर आ रहा है!"

हीरा ने समझाया—"नहीं भाई! खड़े हो जाओ।"

"मुझे मारेगा। तो मैं भी एक-दो को गिरा दूँगा।"

"नहीं, हमारी जाति का यह धर्म नहीं है।"

मोती दिल में ऐंठकर रह गया। गया आ पहुँचा, और दोनों को पकड़कर ले चला। कुशल हुई कि उसने इस वक्त मारपीट न की, नहीं मोती भी पलट पड़ता। उसके तेवर देखकर गया और उसके सहायक समझ गए, इस वक़्त टाल जाना ही मसलहत है।

आज दोनों के सामने फिर वही सूखा भूसा लाया गया। दोनों चुपचाप खड़े रहे। घर के लोग भोजन करने लगे। उसी वक्त एक छोटी-सी लड़की दो रोटियाँ लिए निकली, और दोनों के मुँह में देकर चली गई। उस एक रोटी से इनकी भूख तो क्या

शांत होती, पर दोनों के हृदय को मानो भोजन मिल गया। यहाँ भी किसी सज्जन का वास है। लड़की गया की थी। उसकी माँ मर चुकी थी। सौतेली माँ उसे मारती रहती थी, इसलिए इन बैलों से उसे एक प्रकार की आत्मीयता हो गई थी।

दोनों दिन-भर जोते जाते, डण्डे खाते, अड़ते। शाम को थान पर बाँध दिये जाते और रात को वही बालिका उन्हें दो रोटियाँ खिला जाती। प्रेम के इस प्रसाद की वह बरकत थी कि दो-दो गाल सूखा भूसा खाकर भी दोनों दुर्बल न होते थे, मगर दोनों की आँखों में, रोम-रोम में विद्रोह भरा हुआ था।

एक दिन मोती ने मूक भाषा में कहा—"अब तो नहीं सहा जाता हीरा।"

"क्या करना चाहते हो?"

"एकाध को सींगों पर उठाकर फेंक दूंगा।"

"लेकिन जानते हो, वह प्यारी लड़की जो हमें रोटियाँ खिलाती है, उसीकी लड़की है, जो इस घर का मालिक है। वह बेचारी अनाथ न हो जायगी?"

"तो मालकिन को फेंक दूं? वही तो उस लड़की को मारती है।"

"लेकिन औरत जात पर सींग चलाना मना है, यह भूले जाते हो।"

"तुम तो किसी तरह निकलने ही नहीं देते। तो आओ, आज तुड़ाकर भाग चलें।"

"हाँ, यह मैं स्वीकार करता हूँ; लेकिन इतनी मोटी रस्सी टूटेगी कैसे?"

"इसका उपाय है। पहले रस्सी को थोड़ा-सा चबा लो। फिर एक झटके में जाती है।"

रात को जब बालिका रोटियाँ खिलाकर चली गई, तो दोनों रस्सियाँ चबाने लगे, पर मोटी रस्सी मुँह में न आती थी। बेचारे बार-बार जोर लगाकर रह जाते थे।

सहसा घर का द्वार खुला और वही लड़की निकली। दोनों सिर झुकाकर उसका हाथ चाटने लगे। दोनों की पूछें खड़ी हो गईं। उसने उनके माथे सहलाये और बोली—"खोले देती हूँ। चुपके से भाग जाओ, नहीं यहाँ लोग तुम्हें मार डालेंगे। आज घर में सलाह हो रही है कि इनकी नाकों में नकेल डाल दी जाय।"

उसने गराँव खोल दिया; पर दोनों चुपचाप खड़े रहे।

मोती ने अपनी भाषा में पूछा—"अब चलते क्यों नहीं?"

हीरा ने कहा—"चलें तो, लेकिन कल इस अनाथ पर आफत आयेगी। सब इसीपर सन्देह करेंगे।" सहसा बालिका चिल्लाई—"दोनों फूफावाले बैल भागे जा रहे हैं। ओ दादा! दादा! दोनों बैल भागे जा रहे हैं! जल्दी दौड़ो।"

गया हड़बड़ाकर भीतर से निकला और बैलों को पकड़ने चला वे दोनों भागे। गया ने पीछा किया। वे और भी तेज़ हुए। गया ने शोर मचाया। फिर गाँव के कुछ आदमियों को साथ लेने के लिए लौटा। दोनों मित्रों को भागने का मौका मिल गया। सीधे दौड़ते चले गए। यहाँ तक कि मार्ग का ध्यान न रहा। जिस परिचित मार्ग से आये थे उसका यहाँ पता न था। नये-नये गाँव मिलने लगे। तब दोनों एक खेत के किनारे खड़े होकर सोचने लगे—अब क्या करना चाहिए?

हीरा ने कहा—"मालूम होता है, राह भूल गए।"

"तुम भी तो बेतहाशा भागे। वहीं उसे मार गिराना था।"

"उसे मार गिराते तो दुनिया क्या कहती? वह अपना धर्म छोड़ दें लेकिन हम अपना धर्म क्यों छोड़ें।"

दोनों भूख से व्याकुल हो रहे थे। खेत में मटर खड़ी थी, चरने लगे। रह-रहकर आहट ले लेते थे, कोई आता तो नहीं है।

जब पेट भर गया और दोनों ने आज़ादी का अनुभव किया, तो मस्त होकर उछलने-कूदने लगे। पहले दोनों ने डकार ली। फिर सींग मिलाये और एक-दूसरे को ठेलने लगे। मोती ने हीरा को कई कदम पीछे हटा दिया, यहाँ तक कि वह खाई में गिर गया। तब उसे भी क्रोध आया। सँभलकर उठा और फिर मोती से भिड़ गया। मोती ने देखा खेल-खेल में झगड़ा हुआ चाहता है, तो किनारे हट गया।

(३)

अरे! यह क्या! कोई सांड डौंकता चला आ रहा है। हाँ, साँड ही है। वह सामने आ पहुँचा। दोनों मित्र बगलें झाँक रहे हैं। साँड पूरा हाथी है। उससे भिड़ना जान से हाथ धोना है, लेकिन न भिड़ने पर भी तो जान बचती नहीं नज़र आती। इसी तरफ आ भी रहा है। कितनी भयंकर सूरत है।

मोती ने मूक भाषा में कहा—"बुरे फँसे । जान कैसे बचेगी ? कोई उपाय सोचो ।"

हीरा ने चिंतित स्वर में कहा—"अपने घमंड में भूला हुआ है । आरज़ू-विनती न सुनेगा ।"

'भाग क्यों न चलें ?'

"भागना कायरता है ।"

"तो फिर यहीं मरो । बंदा तो नौ दो ग्यारह होता है ।"

"और जो दौड़ाए ?"

"तो फिर कोई उपाय सोचो जल्द ।"

"उपाय यही है कि उसपर दोनों जनें एक साथ चोट करें । मैं आगे से रगेदता हूँ तुम पीछे से रगेदो ; दोहरी मार पड़ेगी तो भाग खड़ा होगा । ज्योंही मेरी ओर झपटे तुम बगल से उसके पेट में सींग घुसेड़ देना । जान का जोखिम है, पर दूसरा उपाय नहीं है ।"

दोनों मित्र जान हथेलियों पर लेकर लपके । साँड को कभी संगठित शत्रुओं से लड़ने का तजुरबा न था । वह तो एक शत्रु से मल्लयुद्ध करने का आदी था । ज्योंही हीरा पर झपटा त्योंही मोती ने पीछे से दौड़ाया । साँड उसकी तरफ मुड़ा तो हीरा ने रगेदा । साँड चाहता था कि एक-एक करके दोनों को गिरा ले, पर ये दोनों भी उस्ताद थे । उसे ऐसा अवसर न देते थे । एक वार साँड झल्लाकर हीरा का अन्त कर देने के लिए चला कि मोती ने बगल से आकर उसके पेट में सींग भोंक दिये । साँड क्रोध में आकर पीछे फिरा तो हीरा ने दूसरे पहलू में सींग चुभा दिया । आखिर बेचारा ज़ख्मी होकर भागा और दोनों मित्रों ने दूर तक पीछा किया । यहाँ तक कि साँड बेदम होकर गिर पड़ा । तब दोनों ने उसे छोड़ दिया ।

दोनों मित्र विजय के नशे में झूमते चले जाते थे ।

मोती ने अपनी सांकेतिक भाषा में कहा—"मेरा जी तो चाहता था कि बच्चा को मार ही डालूँ ।"

हीरा ने तिरस्कार किया—"गिरे हुए बैरी पर सींग नहीं लगाना चाहिए ।"

यह सब ढोंग है । बैरी को ऐसा मारना चाहिए कि फिर न उठे ।"

"अब घर कैसे पहुँचेंगे, यह सोचो।"

"पहले कुछ खा लें तो सोचें।"

सामने मटर का खेत था ही। मोती उसमें घुस गया। हीरा मना करता रहा, पर उसने एक न सुनी। अभी दो ही चार ग्रास खाये थे कि दो आदमी लाठियाँ लिये दौड़ पड़े, और दोनों मित्रों को घेर लिया। हीरा तो मेड़ पर था, निकल गया। मोती सींचे हुए खेत में था। उसके खुर कीचड़ में धँसने लगे। भाग न सका। पकड़ लिया गया। हीरा ने देखा संगी संकट में है तो लौट पड़ा। फँसेंगे तो दोनों साथ फँसेंगे। रखवालों ने उसे भी पकड़ लिया।

प्रात:काल दोनों मित्र काँजीहौस में बन्द कर दिये गए।

(४)

दोनों मित्रों के जीवन में पहली बार ऐसा साबिका पड़ा कि सारा दिन बीत गया और खाने को एक तिनका भी न मिला। समझ ही में न आता था कि यह कैसा स्वामी है। इससे तो गया फिर भी अच्छा था। वहाँ कई भैंसें थीं, कई बकरियाँ, कई घोड़े, कई गधे, पर किसी के सामने चारा न था। सब ज़मीन पर मुर्दों की तरह पड़े थे। कई तो इतने कमज़ोर हो गए थे कि खड़े भी न हो सकते थे। सारा दिन दोनों मित्र फाटक की ओर टकटकी लगाए रहे, पर कोई चारा लेकर आता न दिखाई दिया। तब दोनों ने दीवार की नमकीन मिट्टी चाटनी शुरू की; पर उससे क्या तृप्ति होती।

रात को भी जब भोजन न मिला तो हीरा के दिल में विद्रोह की ज्वाला दहक उठी। मोती से बोला—"अब तो नहीं रहा जाता मोती!"

मोती ने सिर लटकाये हुए जवाब दिया—"मुझे तो मालूम होता है कि प्राण निकल रहे हैं।"

"इतनी जल्द हिम्मत न हारो भाई! यहाँ से भागने का कोई उपाय निकालना चाहिए।"

"आओ, दीवार तोड़ डालें।"

"मुझसे तो अब कुछ न होगा।"

"बस, इसी बूते पर अकड़ते थे?"

"सारी अकड़ निकल गई।"

बाड़े की दीवार कच्ची थी। हीरा मजबूत तो था ही, अपने नुकीले सींग दीवार में गड़ा दिये और जोर मारा तो मिट्टी का एक चिप्पड़ निकल आया। फिर तो उसका साहस बढ़ा। उसने दौड़-दौड़कर दीवार पर चोटें कीं और हर चोट में थोड़ी-थोड़ी मिट्टी गिराने लगा।

उसी समय काँजीहौस का चौकीदार लालटेन लेकर जानवरों की हाजिरी लेने आ निकला। हीरा का यह उजड्डपन देखकर उसने उसे कई डंडे रसीद किये और मोटी-सी रस्सी से बाँध दिया।

मोती ने पड़े-पड़े कहा—"आखिर मार खाई, क्या मिला?"

"अपने बूते-भर जोर तो मार लिया।"

"ऐसा जोर मारना किस काम का कि और बन्धन में पड़ गए।"

"जोर तो मारता ही जाऊँगा, चाहे कितने ही बन्धन बढ़ते जाएँ।"

"जान से हाथ धोना पड़ेगा।"

"कुछ परवाह नहीं। यों भी तो मरना ही है। सोचो, दीवार खुद जाती तो कितनी जानें बच जातीं। इतने भाई यहाँ बन्द हैं। किसी की देह में जान नहीं है। दो-चार दिन और यही हाल रहा, तो सब मर जाएँगे।"

"हाँ, यह बात तो है। अच्छा तो लो, फिर मैं भी जोर लगाता हूँ।"

मोती ने भी दीवार में उसी जगह सींग मारा। थोड़ी-सी मिट्टी गिरी और हिम्मत बढ़ी। फिर तो वह दीवार में सींग लगाकर इस तरह जोर करने लगा, मानो किसी प्रतिद्वन्द्वी से लड़ रहा है। आखिर कोई दो घंटे की जोर-आजमाई के बाद दीवार ऊपर से लगभग एक हाथ गिर गई। उसने दूनी शक्ति से दूसरा धक्का मारा, तो आधी दीवार गिर पड़ी।

दीवार का गिरना था कि अधमरे से पड़े हुए सभी जानवर चेत उठे। तीन घोड़ियाँ सरपट भाग निकलीं। फिर बकरियाँ निकलीं। इसके बाद भैंसें भी खिसक गईं। पर गधे अभी तक ज्यों-के-त्यों खड़े थे।

हीरा ने पूछा—"तुम दोनों क्यों नहीं भाग जाते?"

एक गधे ने कहा—"जो कहीं फिर पकड़ लिये जाएँ?"

"तो क्या हर्ज है ? अभी तो भागने का अवसर है।"

"हमें तो डर लगता है। हम यहीं पड़े रहेंगे।"

आधी रात से ऊपर जा चुकी थी। दोनों गधे अभी तक खड़े सोच रहे थे, भागें या न भागें। और मोती अपने मित्र की रस्सी तोड़ने में लगा हुआ था। जब वह हार गया तो हीरा ने कहा—तुम जाओ, मुझे यहीं पड़ा रहने दो। शायद कभी भेंट हो जाय।

मोती ने आँखों में आँसू लाकर कहा—"तुम मुझे इतना स्वार्थी समझते हो हीरा ! हम और तुम इतने दिनों एक साथ रहे। आज तुम विपत्ति में पड़ गए तो मैं तुम्हें छोड़कर अलग हो जाऊँ ?"

हीरा ने कहा—"बहुत मार पड़ेगी। लोग समझ जाएँगे कि यह तुम्हारी शरारत है।"

मोती गर्व से बोला—जिस अपराध के लिए तुम्हारे गले में बन्धन पड़ा उसके लिए अगर मुझ पर मार पड़े तो क्या चिन्ता। इतना तो हो ही गया कि नौ-दस प्राणियों की जान बच गई। वे सब तो असीस देंगे।"

यह कहते हुए मोती ने दोनों गधों को सींग से मार-मारकर बाड़े के बाहर निकाला और तब अपने बन्धु के पास आकर सो रहा।

भोर होते ही मुंशी, चौकीदार और अन्य कर्मचारियों में कैसी खलबली मची, इसको लिखने की ज़रूरत नहीं। बस इतना ही काफ़ी है कि मोती की खूब मरम्मत हुई और उसे भी मोटी रस्सी से बाँध दिया गया।

(५)

एक सप्ताह तक दोनों मित्र वहाँ बँधे पड़े रहे। किसी ने चारे का एक तृण भी न डाला। हाँ, एक बार पानी दिखा दिया जाता था। यही उनका आधार था। दोनों इतने दुर्बल हो गए थे कि उठा तक न जाता था। ठठरियाँ निकल आई थीं।

एक दिन बाड़े के सामने डुग्गी बजने लगी और दोपहर होते-होते वहाँ पचास-साठ आदमी जमा हो गए। तब दोनों मित्र निकाले गए और उनकी देखभाल होने लगी। लोग आ-आकर उनकी सूरत देखते और मन फीका करके चले जाते। ऐसे मृतक बैलों का कौन खरीदार होता !

सहसा एक दढ़ियल आदमी जिसकी आँखें लाल थीं, मुद्रा अत्यन्त कठोर, आया और दोनों मित्रों के कूल्हों में उँगली गोदकर मुंशीजी से बातें करने लगा। उसका चेहरा देखकर अन्तर्ज्ञान से दोनों मित्रों के दिल काँप उठे। वह कौन है और उन्हें क्यों टटोल रहा है, इस विषय में उन्हें कोई सन्देह न हुआ। दोनों ने एक-दूसरे को भीत नेत्रों से देखा और सिर झुका लिया।

हीरा ने कहा—"गया के घर से नाहक भागे। अब जान न बचेगी।"

मोती ने अश्रद्धा के भाव से उत्तर दिया—"कहते हैं, भगवान सब के ऊपर दया करते हैं। उन्हें हमारे ऊपर क्यों दया नहीं आती?"

भगवान् के लिए हमारा मरना-जीना दोनों बराबर है। चलो अच्छा ही है, कुछ दिन उनके पास तो रहेंगे। एक बार भगवान् ने उस लड़की के रूप में हमें बचाया था। क्या अब न बचाएँगे?"

"यह आदमी छुरी चलाएगा, देख लेना!"

"तो क्या चिन्ता है! मांस, खाल, सींग, हड्डी सब किसी-न-किसी काम में आ जाएगी।"

नीलाम हो जाने के बाद दोनों मित्र उस दढ़ियल के साथ चले। दोनों की बोटी-बोटी काँप रही थी। बेचारे पाँव तक न उठा सकते थे, पर भय के मारे गिरते-पड़ते भागे जाते थे, क्योंकि वह ज़रा भी चाल धीमी हो जाने पर ज़ोर से डंडा जमा देता था।

राह में गाय-बैलों का एक रेवड़ हरे-हरे हार में चरता नज़र आया। सभी जानवर प्रसन्न थे, चिकने, चपल। कोई उछलता था, कोई आनन्द से बैठा पागुर करता था। कितना सुखी जीवन था इनका, पर कितने स्वार्थी हैं सब! किसी को चिन्ता नहीं कि उनके दो भाई बधिक के हाथ पड़े कैसे दुःखी हैं!

सहसा दोनों को मालूम हुआ कि यह परिचित राह है। हाँ, इसी रास्ते से गया उन्हें ले गया था। वही खेत, वही बाग, वही गाँव मिलने लगे। प्रतिक्षण उनकी चाल तेज़ होने लगी। सारी थकान, सारी दुर्बलता गायब हो गई। आहा! यह लो, अपना ही हार आ गया। इसी कुएँ पर हम पुर चलाने आया करते थे। हाँ, यही कुआँ है।

मोती ने कहा—"हमारा घर नगीच आ गया।"

हीरा बोला—"भगवान् की दया है।"

"मैं तो अब घर भागता हूँ।"

"यह जाने देगा?"

"इसे मैं मार गिराता हूँ।"

"नहीं, नहीं, दौड़कर थान पर चलो। वहाँ से हम आगे न जाएँगे।"

दोनों उन्मत्त होकर बछड़ों की भाँति कुलेलें करते हुए घर की ओर दौड़े। वह हमारा थान है, दोनों दौड़कर अपने थान पर आए और खड़े हो गए। दढ़ियल भी पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था।

झूरी द्वार पर बैठा धूप खा रहा था। बैलों को देखते ही दौड़ा और उन्हें बारी-बारी से गले लगाने लगा। मित्रों की आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे। एक झूरी का हाथ चाट रहा था।

दढ़ियल ने जाकर बैलों की रस्सियाँ पकड़ लीं।

झूरी ने कहा—मेरे बैल हैं।

"तुम्हारे बैल कैसे? मैं मवेशीखाने से नीलाम कराकर लिये जाता हूँ।"

"मैं तो समझता हूँ, चुराए लिये आते हो। चुपके से चले जाओ। बैल मेरे हैं। मैं बेचूँगा तो बिकेंगे। किसी को मेरे बैल नीलाम करने का क्या अख्तियार?"

"जाकर थाने में रपट कर दूँगा।"

"मेरे बैल हैं। इसका सबूत यह है कि मेरे द्वार पर खड़े हैं।"

दढ़ियल झल्लाकर बैलों को जबरदस्ती पकड़ ले जाने के लिए बढ़ा। उसी वक्त मोती ने सींग चलाया। दढ़ियल पीछे हटा। मोती ने पीछा किया। दढ़ियल भागा। मोती पीछे दौड़ा। गाँव के बाहर निकल जाने पर वह रुका; पर खड़ा दढ़ियल का रास्ता देख रहा था। दढ़ियल दूर खड़ा धमकियाँ दे रहा था, गालियाँ निकाल रहा था, पत्थर फेंक रहा था और मोती विजयी शूर की भाँति उसका रास्ता रोके खड़ा था। गाँव के लोग यह तमाशा देखते थे और हँसते थे।

जब दढ़ियल हारकर चला गया तो मोती अकड़ता हुआ लौटा।

हीरा ने कहा—"मैं डर रहा था कि कहीं तुम गुस्से में आकर मार न बैठो।"

"अगर वह मुझे पकड़ता तो मैं बे-मारे न छोड़ता।"

"अब न आएगा।"

"आएगा तो दूर ही से खबर लूँगा। देखूँ कैसे ले जाता है।"

"जो गोली मरवा दे ?"

"मर जाऊँगा ; पर उसके काम तो न आऊँगा।"

"हमारी जान को कोई जान ही नहीं समझता।"

"इसीलिए कि हम इतने सीधे होते हैं।"

जरा देर में नाँदों में खली, भूसा, चोकर, दाना भर दिया गया और मित्र खाने लगे। झूरी खड़ा दोनों को सलहा रहा था और बीसों लड़के तमाशा देख रहे थे। सारे गाँव में उछाह-सा मालूम होता था।

उसी समय मालकिन ने आकर दोनों के माथे चूम लिये।

६

अकबरी लोटा

अन्नपूर्णानन्द वर्मा

लाला झाऊलाल को खाने-पीने की कमी नहीं थी। काशी के ठठेरी बाज़ार में मकान था, नीचे की दूकानों से एक सौ रुपये मासिक के करीब किराया उतर आता था। कच्चे-बच्चे अभी थे नहीं, सिर्फ दो प्राणी का खर्च था। अच्छा खाते थे, अच्छा पहनते थे। पर ढाई सौ रुपये तो एक साथ आँख सेकने के लिए भी न मिलते थे।

इसलिए जब उनकी पत्नी ने एक दिन एकाएक ढाई सौ रुपये की माँग पेश की तब उनका जी एक बार ज़ोर से सनसनाया और फिर बैठ गया। जान पड़ा कि कोई बुल्ला है जो बिलाने जा रहा है। उनकी यह दशा देखकर उनकी पत्नी ने कहा—"डरिये मत, आप देने में असमर्थ हों तो मैं अपने भाई से माँग लूँ।"

लाला झाऊलाल इस मीठी मार से तिलमिला उठे। उन्होंने किंचित् रोब के साथ कहा—"अजी हटो ढाई सौ रुपये के लिए भाई से भीख माँगोगी? मुझसे ले लेना।"

"लेकिन मुझे इसी जिन्दगी में चाहिए।"

"अजी इसी सप्ताह में ले लेना।"

"सप्ताह से आपका तात्पर्य सात दिन से है या सात वर्ष से?" लाला झाऊलाल ने रोब के साथ खड़े होते हुए कहा—"आज से सातवें दिन मुझसे ढाई सौ रुपये ले लेना।"

"मर्द की एक बात!"

"हाँ जी, हाँ! मर्द की एक बात।"

लेकिन जब चार दिन ज्यों-त्यों में यों ही बीत गए और रुपयों का कोई प्रबन्ध न हो सका, तब उन्हें चिन्ता होने लगी। प्रश्न अपनी प्रतिष्ठा का था, अपने ही घर

में अपनी साख का था। देने का पक्का वादा करके अगर अब न दे सके तो अपने मन में वह क्या सोचेगी ? उसकी नज़रों में उनका क्या मूल्य रह जाएगा ? अपनी वाह-वाही की सैकड़ों गाथाएँ उसे सुना चुके थे। अब जो एक काम पड़ा तो चारों खाने चित्त हो रहे। यह पहली बार उसने मुँह खोलकर कुछ रुपयों का सवाल किया था। इस समय अगर वे दुम दबाकर निकल भागते हैं तो फिर उसे क्या मुँह दिखाएँगे ? 'मर्द की एक बात' यह उसका फिकरा उनके कानों में गूँज-गूँज कर फिर गूँज उठता था।

खैर, एक दिन और बीता। पाँचवें दिन घबराकर उन्होंने पं० बिलवासी मिश्र को अपनी विपदा सुनाई। संयोग कुछ ऐसा बिगड़ा था कि बिलवासीजी भी उस समय बिलकुल खुक्ख थे। उन्होंने कहा मेरे पास है तो नहीं पर कहीं से माँग-जाँच कर लाने कोशिश की करूँगा और अगर मिल गया तो कल शाम को तुमसे मकान पर मिलूँगा।

यही शाम आज थी। हफ्ते का अन्तिम दिन। कल ढाई सौ रुपया या तो गिन देना है या सारी हेकड़ी से हाथ धोना है। यह सच है कि रुपया न पाने पर उसकी स्त्री उन्हें डामल-फाँसी न कर देगी—केवल ज़रा-सा हँस देगी। पर कैसी हँसी होगी, इस हँसी की कल्पना मात्र से लाला झाऊलाल की अन्तरात्मा में मरोड़ पैदा हो जाता था।

अभी पं० बिलवासी मिश्र भी नहीं आए। आज शाम को उनके आने की बात थी, उन्हीं का भरोसा था। यदि न आए तो ? या कहीं रुपये का प्रबन्ध वे न कर सके ?

इसी उधेड़-बुन में पड़े हुए लाला झाऊलाल छत पर टहल रहे थे; कुछ प्यास मालूम पड़ी। उन्होंने नौकर को आवाज़ दी। नौकर नहीं था, खुद उनकी पत्नी पानी लेकर आईं। आप जानते ही हैं कि हिन्दू-समाज में स्त्रियों की कैसी शोचनीय अवस्था है। पति नालायक को प्यास लगती है तो स्त्री बेचारी को पानी लेकर हाज़िर होना पड़ता है !

वे पानी तो ज़रूर लाई पर गिलास लाना भूल गई थीं। केवल लोटे में पानी लिए हुए वे प्रकट हुईं। फिर लोटा भी संयोग से वह अपनी बेढंगी सूरत के

कारण लाला झाऊलाल को सदा से नापसन्द था। था तो नया, साल ही दो साल का बना, पर कुछ ऐसी गढ़न उस लोटे की थी कि उसका बाप डमरू माँ चिलमची रही हो।

लाला झाऊलाल ने लोटा ले लिया। वे बोले कुछ नहीं, अपनी पत्नी का वे अदब मानते थे। मानना ही चाहिए। इसी को सभ्यता कहते हैं। जो पति अपनी पत्नी की पत्नी न हुआ वह पति कैसा? फिर उन्होंने यह भी सोचा होगा कि लोटे में पानी हो तब भी गनीमत है, अभी अगर चूँ कर देता हूँ तो बाल्टी में जब भोजन मिलेगा तब क्या करना बाकी रह जायगा।

लाला झाऊलाल अपना गुस्सा पीकर पानी पीने लगे। उस समय वे छत की मुँडेर के पास खड़े थे। जिन बुजुर्गों ने पानी पीने के सम्बन्ध में यह नियम बनाए थे कि खड़े-खड़े पानी न पियो, सोते समय पानी न पियो, दौड़ने के बाद पानी न पियो, उन्होंने पता नहीं कभी यह भी नियम बनाया था या नहीं कि छत की मुँडेर के पास खड़े होकर पानी न पियो। जान पड़ता है इस महत्त्वपूर्ण विषय पर उन लोगों ने कुछ नहीं कहा है।

इसलिए लाला झाऊलाल ने कोई बुराई नहीं की अगर वे छत की मुँडेर के पास खड़े होकर पानी पीने लगे। पर मुश्किल से दो-एक घूँट वे पीए होंगे कि न जाने कैसे उनका हाथ हिल उठा और लोटा हाथ से छूट गया।

लोटे ने न दाहिने देखा न बाएँ। वह नीचे गली की ओर चल पड़ा। अपने वेग में उल्का को लजाता हुआ वह आँखों से ओझल हो गया। किसी जमाने में न्यूटन नाम के किसी खुराफाती ने पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति नाम की एक चीज़ ईजाद की थी। कहना न होगा कि यह सारी शक्ति इस समय लोटे के पक्ष में थी।

लाला झाऊलाल को काटो तो बदन में खून नहीं। ठठेरी बाज़ार ऐसी चलती हुई गली में, ऊँचे तिमंजिले से भरे हुए लोटे का गिरना हँसी खेल नहीं है। यह लोटा न जाने किस अनधिकारी के खोपड़े पर काशीवास का सन्देशा लेकर पहुँचेगा।

कुछ हुआ भी ऐसा ही। गली में जोर का हल्ला उठा। लाला झाऊलाल जब तक दौड़कर नीचे उतरें तब तक एक भारी भीड़ उनके आँगन में घुस आई।

लाला झाऊलाल ने देखा कि इस भीड़ में प्रधान पात्र एक अँगरेज है, जो नखशिख से भींगा हुआ है और जो अपने एक पैर को हाथ से सहलाता हुआ दूसरे पैर पर नाच रहा है। उसी के पास उस अपराधी लोटे को भी देखकर लाला झाऊलाल जी ने फौरन दो और दो जोड़कर स्थिति को समझ लिया। पूरा विवरण तो उन्हें पीछे प्राप्त हुआ।

हुआ था यह कि गली में गिरने के पूर्व लोटा एक दूकान के सायबान से टकराया। यहाँ टकराकर उस दूकान पर खड़े उसे अँगरेज को उसने सांगोपांग स्नान कराया और फिर उसी के बूट पर जा गिरा। ध्यान देने की बात है कि हिन्दुस्तानी लोटा भी आखिर वहीं गिरा जहाँ हिन्दुस्तानी आदमी गिरते हैं।

उस अँगरेज को जब मालूम हुआ कि लाला झाऊलाल ही उस लोटे के मालिक हैं तब उसने केवल एक काम किया। अपने मुँह को उसने खोल-खोलकर खुला छोड़ दिया। लाला झाऊलाल को आज ही यह मालूम हुआ कि अँगरेजी भाषा में गालियों का ऐसा प्रकांड कोष है।

इसी समय पं० विलवासी मिश्र भीड़ को चीरते हुए आँगन में आते दिखाई पड़े। उन्होंने आते ही पहला काम यह किया कि उस अँगरेज को छोड़कर और जितने आदमी आँगन में घुस आये थे सबको निकाल बाहर किया। फिर कुर्सी आँगन में रखकर उन्होंने साहब से कहा, "आपके पैर में शायद कुछ चोट आ गई है। अब आराम से कुर्सी पर बैठ जाइये।"

साहब बिलवासीजी को धन्यवाद देते हुए बैठ गए। और लाला झाऊलाल की ओर इशारा करके बोले—"आप इस शख्स को जानते हैं?" "बिलकुल नहीं और मैं ऐसे आदमी को जानना भी नहीं चाहता जो निरीह राह चलतों पर लोटे के वार करे।"

"मेरी समझ में He is a dangerous lunatic!" (यानी यह खतरनाक पागल है।)

"नहीं मेरी समझ में He is a dangerous criminal (नहीं यह खतरनाक मुजरिम है!)

परमात्मा ने लाला झाऊलाल की आँखों को इस समय कहीं देखने के साथ

खाने की भी शक्ति दे दी होती तो यह निश्चित है कि अब तक बिलवासीजी को वे अपनी आंखों से खा चुके होते। वे कुछ समझ नहीं पाते थे कि बिलवासीजी को इस समय हो क्या गया है।

साहब ने बिलवासीजी से पूछा—"तो अब क्या करना चाहिए ?"

"पुलिस में इस मामले की रिपोर्ट कर दीजिए, जिससे यह आदमी फौरन हिरासत में ले लिया जाय।"

"पुलिस-स्टेशन है कहाँ ?"

"पास ही है। चलिए, मैं बताऊँ।"

"चलिए।"

"अभी चलो। आपकी इजाजत हो तो पहले मैं इस लोटे को इस आदमी से खरीद लूँ। क्यों जी, बेचोगे ? मैं पचास रुपये तक इसके दाम दे सकता हूँ।"

लाला झाऊलाल तो चुप रहे पर साहब ने पूछा—"इस रद्दी लोटे का आप पचास रुपये दाम क्यों दे रहे हैं ?"

"आप इस लोटे को रद्दी बताते हैं ? आश्चर्य ! मैं तो आपको एक विज्ञ और सुशिक्षित आदमी समझता था।"

"आखिर बात क्या है, कुछ बतलाइये भी ?"

"यह जनाब ! एक ऐतिहासिक लोटा जान पड़ता है। जान क्या पड़ता है मुझे पूरा विश्वास है। यह वह प्रसिद्ध अकबरी लोटा है, जिसकी तलाश में संसार भर के म्यूजियम परेशान हैं।"

"यह बात ?"

"जी हाँ जनाब ! सोलहवीं शताब्दी की बात है। बादशाह हुमायूँ शेरशाह से हारकर भागा था और सिंध के रेगिस्तान में मारा-मारा फिर रहा था। एक अवसर पर प्यास से उसकी जान निकल रही थी उस समय एक ब्राह्मण ने इसी लोटे से पानी पिलाकर उसकी जान बचाई थी। हुमायूँ के बाद जब अकबर दिल्लीश्वर हुआ तब उसने उस ब्राह्मण का पता लगाकर उससे इस लोटे को ले लिया और इसके बदले में उसे इसी प्रकार के दस सोने के लोटे प्रदान किये। यह लोटा सम्राट् अकबर को बहुत प्यारा था इससे इसका नाम अकबरी

लोटा पड़ा। वह बराबर इसीसे वज़ू करता था। सन् ५७ तक इसके शाही घराने में रहने का पता है। पर इसके बाद लापता हो गया। कलकत्ते के म्यूजियम में इसका प्लास्टर का माडल रखा हुआ है। पता नहीं यह लोटा इस आदमी के पास कैसे आया ! म्यूजियम वालों को पता चले तो फैंसी दाम देकर खरीद ले जाएँ।"

इस विवरण को सुनते-सुनते साहब की आँखों पर लोभ और आश्चर्य का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे कौड़ी के आकार से बढ़कर पकौड़ी के आकार की हो गईं। उसने बिलवासीजी से पूछा—"तो आप इस लोटे को क्या करियेगा ?"

"मुझे पुरानी और ऐतिहासिक चीज़ों के संग्रह करने का शौक है।"

"मुझे भी पुरानी और ऐतिहासिक चीज़ों के संग्रह करने का शौक है। जिस समय यह लोटा मेरे ऊपर गिरा उस समय मैं यही कह रहा था। उस दूकान पर से पीतल की कुछ पुरानी मूर्तियाँ खरीद रहा था।"

"जो कुछ हो लोटा मैं ही खरीदूंगा।"

"वाह आप कैसे खरीदेंगे ? मैं खरीदूंगा। यह मेरा हक है।"

"हक है ?"

"ज़रूर हक है। यह बताइए कि उस लोटे के पानी से आपने स्नान किया या मैंने।"

"आपने।"

"वह आपके पैरों पर गिरा या मेरे ?"

"आपके।"

"अँगूठा उसने आपका भुरता किया या मेरा ?"

"आपका।"

"इसलिए उसे खरीदने का हक मेरा है।"

"यह सब झोल है। दाम लगाइए, जो अधिक दे वह ले जाय।"

"यही सही। आप उसका पचास रुपया लगा रहे थे, मैं सौ देता हूँ।"

"मैं डेढ़ सौ देता हूँ।"

"मैं दो सौ देता हूँ।"

"अजी मैं ढाई सौ देता हूँ।"—यह कह बिलवासी ने ढाई सौ के नोट लाला झाऊलाल के आगे फेंक दिए।

साहब को भी अब ताव आ गया। उसने कहा—"आप ढाई सौ देते हैं तो मैं पाँच सौ देता हूँ। अब चलिए?"

बिलवासीजी अफसोस के साथ अपने रुपये उठाने लगे, मानो अपनी आशाओं की लाश उठा रहे हों। साहब की ओर देखकर उन्होंने कहा—"लोटा आपका हुआ, ले जाइये, मेरे पास ढाई सौ से अधिक हैं नहीं।"

यह सुनना था कि साहब के चेहरे पर प्रसन्नता की कूँची फिर गई। उसने झपटकर लोटा लिया और बोला—"अब मैं हँसता हुआ अपने देश लौटूँगा। मेजर डलगस की डींग सुनते-सुनते मेरे कान पक गए थे।"

"मेजर डलगस कौन हैं?"

"मेजर डगलस मेरे पड़ौसी हैं। पुरानी चीज़ों के संग्रह करने में मेरी उनकी दौड़ रहती है। गत वर्ष वे हिन्दुस्तान आए थे और यहाँ से 'जहाँगीरी अंडा' ले गए थे।"

"जहाँगीरी अंडा?"

"हाँ; जहाँगीरी अंडा। मेजर डगलस ने समझ रखा था कि हिन्दुस्तान से वे ही अच्छी चीज ले जा सकते हैं।"

"पर जहाँगीरी अंडा है क्या?"

"आप जानते होंगे कि एक कबूतर ने नूरजहाँ से जहाँगीर का प्रेम कराया था। जहाँगीर के पूछने पर कि मेरा एक कबूतर तुमने कैसे उड़ जाने दिया, नूरजहाँ ने उसके दूसरे कबूतर को भी उड़ाकर बताया था कि ऐसे। उसके इस भोलेपन पर जहाँगीर सौ जान से निछावर हो गया, उसी क्षण से उसने अपने को नूरजहाँ के हाथ बय कर दिया। कबूतर का एहसान नहीं भूला। उसके एक अंडे को बड़े जतन से रख छोड़ा। एक बिल्लोर की हाँडी में वह उसके सामने सदा टँगा रहता था। बाद में वही अण्डा जहाँगीरी अण्डा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसी को मेजर डगलस ने पारसाल दिल्ली में एक मुसलमान सज्जन से तीन सौ रुपये में ख़रीदा।"

"यह बात!"

"हाँ, पर अब वे मेरे आगे दून की नहीं ले सकते। मेरा अकबरी लोटा उनके

जहाँगीरी अंडे से भी एक पुस्त पुराना है।"

"इस रिश्ते से तो आपका लोटा उस अण्डे का बाप हुआ।"

साहब ने लाला झाऊलाल को पाँच सौ रुपये देकर अपनी राह ली। लाला झाऊलाल का चेहरा इस समय देखते बनता था। जान पड़ता था कि मुँह पर छः दिन की बढ़ी हुई दाड़ी के एक-एक बाल मारे प्रसन्नता के लहरा रहे हैं। उन्होंने पूछा—"बिलवासीजी! आप मेरे लिए ढाई सौ रुपया घर से लेकर चले? पर आपके पास तो था नहीं।"

"इस भेद को मेरे सिवाय मेरा ईश्वर भी जानता है। आप उसी से पूछ लीजिए। मैं नहीं बताऊँगा।"

"पर आप चले कहाँ? अभी मुझे आपसे काम है; दो घण्टे तक।"

"दो घण्टे तक?"

"हाँ और क्या? अभी मैं आपकी पीठ ठोंककर शाबाशी दूँगा; एक घण्टा इसमें लगेगा फिर गले लगाकर धन्यवाद दूँगा; एक घण्टा इसमें भी लग जाएगा।"

"अच्छा पहले अपने पाँच सौ रुपये गिनकर सहेज लीजिए।"

रुपया अगर अपना हो तो उसे सहेजना एक ऐसा सुखद और सम्मोहक कार्य है कि मनुष्य उस समय सहज में ही तन्मयता प्राप्त कर लेता है। लाला झाऊलाल ने अपना कार्य समाप्त करके ऊपर देखा। पर बिलवासीजी इस बीच अन्तर्धान हो गए थे।

वे लम्बे डग मारते हुए गली में चले जा रहे थे।

उस दिन रात्रि में बिलवासीजी को देर तक नींद नहीं आई। वे चादर लपेटे चारपाई पर पड़े रहे। एक बजे वे उठे। धीरे से, बहुत धीरे से, अपनी सोई हुई पत्नी के गले से उन्होंने सोने की वह सिकड़ी निकाली जिसमें एक ताली बँधी हुई थी। फिर उसके कमरे में जाकर उन्होंने उस ताली से सन्दूक खोली। उसमें ढाई सौ के नोट ज्यों के त्यों रखकर उन्होंने उसे बन्द कर दिया। फिर दबे पाँव लौटकर ताली को उन्होंने पूर्ववत् अपनी पत्नी के गले में डाल दिया। इसके बाद उन्होंने हँसकर अँगड़ाई ली, अँगड़ाई लेकर लेट रहे, और लेटकर मर गए।

दूसरे दिन सुबह आठ बजे तक वे मरे रहे।

७

एक गौ

जैनेन्द्रकुमार

हिसार और उसके आस-पास के हिस्से को हरियाना कहते हैं। यहाँ के लोग खूब तगड़े होते हैं, गाय-बैल और भी तन्दुरुस्त और कद्दावर होते हैं। यहाँ की नस्ल मशहूर है।

उसी हरियाने के एक गाँव में एक जमींदार रहता था। दो पुश्त पहले उसके घराने की अच्छी हालत थी। घी-दूध था, बाल-बच्चे थे, मान-प्रतिष्ठा थी। पर धीरे-धीरे अवस्था बिगड़ती गई। आज हीरासिंह को यह समझ नहीं आता है कि अपनी बीवी, दो बच्चे, खुद और अपनी सुन्दरिया गाय की परवरिश कैसे करें?

राज की अमलदारी बदल गई है, और लोगों की निगाहें भी फिर गई हैं। शहर बड़े से और बड़े हो गए हैं और वहाँ ऐसी ऊँची-ऊँची हवेलियाँ खड़ी होती जाती हैं कि उनकी ओर देखा भी नहीं जाता है। कल-कारखाने और पुतलीघर खड़े हो गए हैं। बाईसिकलें और मोटरें आ गई हैं। इनसे ज़िन्दगी तेज़ पड़ गई है और बाजार में म्हँगाई आ गई है। इधर गाँव उजाड़ हो गए हैं और खुशहाली की जगह बेचारगी फैल रही है। हरियाने के बैल खूबसूरत तो अब भी मालूम होते हैं और उन्हें देखकर खुशी भी होती है; लेकिन अब उनकी उतनी माँग नहीं है। चुनांचे हीरासिंह भी अपने बाप-दादों के समान ज़रूरी आदमी अब नहीं रह गया है। हीरासिंह को बहुत-सी बातें बहुत कम समझ में आती हैं। वह आँख फाड़कर देखना चाहता है कि यह क्या बात है कि उसके घराने का महत्त्व इतना कम रह गया है। अन्त में उसने सोचा कि यह भाग्य है, नहीं तो और क्या?

उसकी सुन्दरिया गाय डील-डौल में इतनी बड़ी और इतनी तन्दुरुस्त थी कि लोगों को ईर्ष्या होती थी। उसी सुन्दरिया को अब हीरासिंह ठीक-ठीक खाना

नहीं जुटा पाता था। इस गाय पर उसे गर्व था। बहुत ही मुहब्बत से उसे उसने पाला था। नन्हीं बछिया थी, तब से वह हीरासिंह के यहाँ थी। हीरासिंह को अपनी गरीबी का अपने लिए इतना दुःख नहीं था, जितना उस गाय के लिए। जब उसके भी खाने-पीने में तोड़ आने लगी तो हीरासिंह के मन को बड़ी बिथा हुई। क्या वह उसको बेच दे? इसी गाँव के पटवारी ने दो सौ रुपये उस गाय के लगा दिए थे। दो सौ रुपये थोड़े नहीं होते। लेकिन अव्वल तो सुन्दरिया को बेचे कैसे? इसमें उसकी आत्मा दुखती थी। फिर इसी गाँव में रहकर सुन्दरिया दूसरे के यहाँ बँधी रहे और हीरासिंह अपने बाप-दादों के घर में बैठा टुकुर-टुकुर देखा करे, यह हीरासिंह से कैसे सहा जाएगा!

उसका बड़ा लड़का जवाहरसिंह बड़ा तगड़ा जवान था। उन्नीस वर्ष की उम्र थी, मसें भीगी थीं, पर इस उम्र में वह अपने से ड्योढ़े को कुछ नहीं समझता था। सुन्दरिया गाय को वह मौसी कहा करता था। उसे मानता भी उतना था। हीरासिंह के मन में दुर्दिन देखकर कभी गाय को बेचने की बात उठती थी तो जवाहरसिंह के डर से रह जाता था। ऐसा हुआ तो जवाहर डंडा उठाकर, रार मोल लेकर, उसको फिर वहाँ से खोलकर नहीं ले जाएगा, इतना भरोसा हीरासिंह को नहीं था। जवाहरसिंह उजड्ड ही तो है। सुन्दरिया के मामले में भला वह किसी की सुनने वाला है? ऐसे नाहक रार के बीज बढ़ जाएँगे और क्या?

पर दुर्भाग्य भी सिर पर से टलता न था। पैसे-पैसे की तंगी होने लगी थी। और तो सब भुगत लिया जाय पर अपने आश्रित जनों की भूख कैसे भुगती जाय?

एक दिन जवाहरसिंह को बुलाकर कहा—"मैं दिल्ली जाता हूँ। वहाँ बड़ी-बड़ी कोठियाँ हैं, बड़े-बड़े लोग हैं। हमारे गाँव के कितने आदमी वहाँ हैं। सो कोई नौकरी मिल ही जायगी। नहीं तो तुम्हीं सोचो, ऐसे कैसे काम चलेगा। इतने दिन तुम यहाँ देख-भाल रखना। वहाँ ठीक होने पर तुम सबको भी बुला लूँगा।"

× × ×

दिल्ली जाकर एक सेठ के यहाँ चौकीदार की नौकरी उसे मिल गई। हवेली

के बाहर ड्योढ़ी में एक कोठरी रहने को भी मिल गई।

एक रोज़ सेठ ने हीरासिंह से कहा—"तुम तो हरियाने की तरफ़ के रहने वाले हो ना ? वहाँ की गाएँ बड़ी अच्छी होती हैं। हमें दूध की तकलीफ है। उधर की एक अच्छी गाय का बन्दोबस्त हमारे लिए करके दो।"

हीरासिंह ने पूछा—"कितने दूध की और कितने कीमत की चाहिए ?"

सेठ ने कहा—"कीमत जो मुनासिब हो देंगे; पर दूध थन के नीचे खूब होना चाहिए; गाय खूब सुन्दर तगड़ी होनी चाहिए।"

हीरासिंह सुन्दरिया की बात सोचने लगा। उसने कहा—"एक है तो मेरी निगाह में, पर उसका मालिक बेचे तब है।"

सेठ ने कहा—"कैसी गाय है ?"

हीरासिंह ने कहा—"गौ तो ऐसी है कि माँ के समान है और दूध देने में कामधेनु। पन्द्रह सेर दूध उसके तले उतरता है।"

सेठ ने पूछा—"तो उसका मालिक किसी शर्त पर नहीं बेच सकता ?"

हीरासिंह—"उसके दो सौ रुपये लग गए हैं।"

सेठ—"दो सौ ! चलो, पाँच हम और ज़्यादा देंगे।"

पाँच रुपये और ज़्यादा की बात सुनकर हीरा को दुःख हुआ। वह कुछ शर्म से और कुछ ताने में मुस्कराया भी।

सेठ ने कहा—"ऐसी भी क्या बात है ! दो-चार रुपये और बढ़ती दे दें। बस ?"

हीरासिंह ने कहा—"अच्छी बात है। मैं कहूँगा।"

हीरासिंह को इस घड़ी दुःख बहुत हो रहा था। एक तो इसलिए कि वह जानता था कि गाय बेचने के लिए वह राज़ी होता जा रहा है। दूसरे दुःख इस-लिए भी हुआ कि उसने सेठ से सच्ची बात नहीं कही।

सेठ ने कहा—"देखो, गाय अच्छी है और उसके तले पन्द्रह सेर दूध पक्का है, तो पाँच-दस रुपये के पीछे बात कच्ची मत करना।"

हीरासिंह ने तब लज्जा से कहा—"जी, सच्ची बात यह है कि गाय वह अपनी ही है।"

सेठजी ने खुश होकर कहा—"तब तो फिर ठीक बात है। तुम तो अपने आदमी ठहरे। तुम्हारे लिए जैसे दो सौ वैसे ही पाँच। गाय कब ले आओगे? मेरी राय में आज ही चले जाओ।"

हीरासिंह शर्म के मारे कुछ बोल नहीं सका। उसने सोचा था गौ आखिर बेचनी तो होगी ही। अच्छा है कि वह गाँव से दूर कहीं इसी जगह रहे। रुपये पाँच कम, पाँच ज्यादा—यह कोई ऐसी बात नहीं। पर गाँव के पटवारी के यहाँ तो सुन्दरिया उससे दी न जायगी। उसने सेठ के जवाब में कहा—"जो हुक्म। मैं आज ही चला जाता हूँ लेकिन एक बात है—मेरा लड़का जवाहर राजी हो जाय तब। वह लड़का बड़ा अक्खड़ है और गाय को प्यार भी बहुत करता है।"

सेठ ने समझा, यह कुछ और पैसे पाने का बहाना है। बोला—"अच्छा, दो सौ पाँच ले लेना। चलो दो सौ सात सही। पर गाय लाओ तो। दूध पन्द्रह सेर पक्के की शर्त है।"

हीरासिंह लाज से गड़ा जाने लगा। वह कैसे बताये कि रुपये की बात बिलकुल नहीं है। तिस पर ये सेठ तो उसके अन्नदाता हैं। फिर ये ऐसी बातें क्यों करते हैं? उसे जवाहर की तरफ से सचमुच शंका थी। लेकिन इन गरीबी के दिनों में गाय दिन पर दिन एक समस्या होती जाती थी। उसको रखना भारी पड़ रहा था। पर अपने तन को क्या काटा जाता है? काटते जितनी वेदना होती है? यही हीरासिंह का हाल था। सुन्दरिया क्या केवल एक गौ थी! वह तो गौ 'माता' थी—उनके परिवार का अंग थी। उसी को रुपये के मोल बेचना आसान काम न था। पर हीरासिंह को यह ढाढ़स था कि सेठ के यहाँ रहकर गौ उसकी आँखों के आगे तो रहेगी। सेवा-टहल भी यहाँ वह गौ की कर लिया करेगा। उसकी टहल करके यहाँ उसके चित्त को कुछ तो सुख रहेगा। तब उसने सेठ से कहा—"रुपये की बात बिलकुल नहीं है सेठजी। वह लड़का जवाहर ऐसा ही है। पूरा बेबस जीव है। खैर, आप कहें, तो आज मैं जाता हूँ। उसे समझा-बुझा सका, तो गौ को लेता ही आऊँगा। उसका नाम हमने सुन्दरिया रखा है।"

"हाँ, लेते आना। पर पन्द्रह सेर की बात है ना? इतमीनान हो जाय, तब सौदा पक्का रहेगा। कुछ रुपये चाहिए तो ले जाओ।"

हीरासिंह बहुत ही लज्जित हुआ। उसकी गौ के बारे में बे-एतबारी उसे अच्छी नहीं लगती थी। उसने कहा—"जी, रुपये कहाँ जाते हैं फिर मिल जाएँगे। पर यह कहे देता हूँ कि गाय वह एक ही है। मुकाबले की दूसरी मिल जाय, तो मुझे जो चाहो कहना।"

सेठजी ने स्नेह-भाव से सौ रुपये मँगाकर उसी वक्त हीरासिंह को थमा दिए और कहा—"देखो हीरासिंह, आज ही चले जाओ, और गाय कब तक आ जायगी ? परसों तक ?···

हीरासिंह ने कहा—"यहाँ से पचास कोस गाँव है। तीन रोज़ तो जाने-जाने में लग जाएँगे।"

सेठजी ने कहा—"पचास कोस ? तीस कोस की मंज़िल एक दिन में की जाती है। तुम मुझको क्या समझते हो ?"

तीस कोस की मंज़िल सेठ पैदल एक दिन छोड़ तीन दिन में भी कर लें तो हीरासिंह जाने। लेकिन वह बोला नहीं।

सेठ ने कहा—"अच्छा, तो चौथे दिन गाय यहाँ आ जाय।"

हीरासिंह ने कहा—"जी, कम-से-कम पूरे पाँच रोज़ तो लगेंगे ही।"

सेठजी ने कहा—"पाँच ?"

हीरासिंह ने विनीत भाव से कहा—"दूर जगह है सेठजी !"

सेठजी ने कहा—"अच्छी बात है। पर देर मत लगाना, यहाँ काम का हर्ज होगा, जानते हो ? खैर, इन दिनों तुम्हारी तनख्वाह न काटने को कह देंगे।"

हीरासिंह ने जवाब में कुछ नहीं कहा, और वह उसी रोज़ चला भी गया।

ज्यों-त्यों जवाहरसिंह को समझा-बुझाकर गाय वह ले आया। देखकर सेठ बड़े खुश हुए। सचमुच वैसी सुन्दर स्वस्थ गौ उन्होंने अब तक न देखी थी। हीरा-सिंह ने खुद उसे सानी-पानी किया, सहलाया और अपने ही हाथों उसे दूहा। दूध पन्द्रह सेर से कुछ ऊपर ही बैठा। सेठजी ने खुशी से दो सौ के ऊपर सात रुपये और हीरासिंह को दिये और अपने घोसी को बुलाकर गौ उसके सुपुर्द की।

रुपये तो लिए, लेकिन हीरासिंह का जी भरा आ रहा था। जब सेठजी का घोसी गाय को ले जाने लगा, तब गाय उसके साथ चलना ही नहीं चाहती थी।

घोसी ने झल्लाकर उसे मारने को रस्सी भी उठाई, लेकिन सेठजी ने मना कर दिया। वह गौ इतनी भोली मालूम होती थी कि सचमुच घोसी का हाथ भी उसे मारने को हिम्मत से ही उठ सका था। अब जब वह हाथ इस भाँति उठ करके भी रुका रह गया तब घोसी को भी खुशी हुई क्योंकि गौ की आँखों के कोये में गाढ़े-गाढ़े आँसू भर रहे थे। वे आँसू धीमे-धीमे बहने भी लगे।

हीरासिंह ने कहा—"सेठजी, इस गौ की नौकरी पर मुझे कर दीजिए, चाहे तनख्वाह में दो रुपये कम कर दीजिएगा।"

सेठजी ने कहा—"हीरासिंह, तुम्हारे-जैसा ईमानदार चौकीदार हमें दूसरा कौन मिलेगा? तनख्वाह तो हम तुम्हारी एक रुपया और भी बढ़ा सकते हैं पर तुमको ड्योढ़ी पर ही रहना होगा।"

उस समय हीरासिंह को बहुत दुःख हुआ। दुःख इस बात से और दुःसह हो गया कि सेठ का विश्वास उस पर है। वह गौ को सम्बोधन करके बोला—"जाओ, बहिनी! जाओ।"

गौ ने सुनकर मुँह ज़रा ऊपर उठाकर हीरासिंह की तरफ़ देखा, मानो पूछती हो, "जाऊँ? तुम कहते हो जाऊँ?"

हीरासिंह उसके पास आ गया। उसने गले पर थपथपाया, माथे पर हाथ फेरा गलबन्ध सहलाया और काँपती वाणी में कहा—जाओ बहिनी सुन्दरिया, जाओ। मैं कहीं दूर थोड़े ही हूँ। मैं तो यहाँ ही हूँ।"

हीरासिंह के आशीर्वाद में भीगती हुई गौ चुप खड़ी थी। जाने की बात पर फिर ज़रा मुँह ऊपर उठाया और आँखों से उसे देखती हुई मानो पूछने लगी—"जाऊँ? तुम कहते हो जाऊँ?"

हीरासिंह ने थपथपाते हुए पुचकारकर कहा—"जाओ बहिनी! सोच न करो।" फिर घोसी को आश्वासन देकर कहा—"लो, अब ले जाओ, अब चली जाएगी।" यह कहकर हीरासिंह ने गाय के गले की रस्सी अपने हाथों उस घोसी को थमा दी।

गाय फिर चुपचाप डग-डग घोसी के पीछे चली गई। हीरासिंह एकटक देखता रहा। उसने आँसू नहीं आने दिए। हाथ के नोटों को उसने ज़ोर से पकड़ रखा।

नोटों पर वह मुट्ठी इतनी जोर से कस गई कि अगर उन नोटों में जान होती, तो बेचारे रो उठते। वे कुचले-कुचलाए मुट्ठी में बँधे रह गए।

उसके बाद सेठजी वहाँ से चले गए और हीरासिंह भी चलकर अपनी कोठरी में आ गया। कुछ देर वह उस हवेली की ड्योढ़ी के बाहर शून्य भाव से देखता रहा। भीतर हवेली थी, बाहर बिछा शहर था, जिसके पार खुला मैदान और खुली हवा थी और उनके बीच में आने-जाने का रास्ता छोड़े हुए फिर भी उस रास्ते को रोके हुए, यह ड्योढ़ी थी। कुछ देर तो वह इसे देखता रहा, फिर मुँह झुकाकर हुक्का गुड़गुड़ाने लगा। अनबूझ भाव से वह इस व्याप्त विस्तृत शून्य में देखता रह गया।

लेकिन अगले दिन गड़बड़ उपस्थित हुई। सेठजी ने हीरासिंह को बुलाकर कहा—"यह तुम मुझे धोखा तो नहीं देना चाहते? गाय के नीचे से सवेरे पाँच सेर भी तो दूध नहीं उतरा। शाम को भी यही हाल रहा है। मेरी आँखों में तुम धूल झोंकना चाहते हो।"

हीरासिंह ने बड़ी कठिनाई से कहा—"मैंने तो पन्द्रह सेर से ऊपर दुहकर आपके सामने दे दिया था।"

"दे दिया होगा। लेकिन अब क्या बात हो गई? जो न तुमने उसे कोई दवा खिला दी है?"

हीरासिंह का जी दुःख और ग्लानि से भारी हो आया। उसने कहा—"दवा मैंने नहीं खिलाई और कोई दवा दूध ज्यादा नहीं निकलवा सकती। इसके आगे और मैं कुछ नहीं जानता।"

सेठजी ने कहा—"तो जाकर अपनी गाय को देखो। अगर दूध नहीं देती, तो क्या मुझे मुफ्त का जुर्माना भुगतना है?"

हीरासिंह गाय के पास गया। वह उसको गर्दन से लगाकर खड़ा हो गया। उसने गाय को चूमा, फिर कहा—"सुन्दरिया, तू मेरी रुसवाई क्यों कराती है? तेरे बारे में मैं किसी से धोखा करूँगा?"

गाय ने उसी भाँति मुँह ऊपर उठाया, मानो पूछा—"मुझे कहते हो? बोलो, मुझे क्या कहते हो?"

हीरासिंह ने घोसी से कहा—"बंटा लाओ तो!"

घोसी ने कहा—"मैं आध घण्टा पहले तो दुह चुका हूँ।"

हीरासिंह ने कहा—"तुम बंटा लाओ।"

उसके बाद साढ़े तेरह सेर दूध उसके तले से पक्का तौलकर हीरासिंह ने घोसी को दे दिया। कहा—"यह दूध सेठजी को दे देना। फिर गौ के गले पर अपना सिर डालकर हीरासिंह बोला—"सुन्दरी! देख, मेरी ओछी मत कर। तू यहाँ है, मैं दूर हूँ, तो क्या उसमें मुझे सुख है?"

गौ मुँह झुकाये वैसे ही खड़ी रही।

"देखना सुन्दरिया! मेरी रुसवाई न करना।" गद्‌गद कण्ठ से यह कहकर उसे थपथपाते हुए हीरासिंह चला गया।

पर गौ अपनी बिथा किससे कहे। कह नहीं पाती, इसी से सही नहीं जाती। क्या वह हीरासिंह की रुसवाई चाहती है? उसे सह सकती है? लेकिन दूध नीचे आता ही नहीं, तब क्या करे? वह तो चढ़-चढ़ जाता है, सूख-सूख जाता है, गौ बेचारी करे तो क्या?

सो फिर शिकायत हो चली। आए दिन बखेड़े खड़े होने लगे। शाम इतना दूध दिया, सवेरे उससे भी कम दिया। कल तो चढ़ा ही गई थी। इतने अनुहार-मनुहार किये, बस में ही न आई। गाय है कि बवाल है। जी को एक सामत ही पाल ली।

सेठ ने कहा—"क्यों हीरासिंह, यह क्या है?"

हीरासिंह ने कहा—"मैं क्या जानता हूँ—"

सेठ ने कहा—"क्या यह सरासर धोखा नहीं है?"

हीरासिंह चुप रह गया।

सेठ ने कहा—"ऐसा ही है तो ले जाओ अपनी गाय और रुपये मेरे वापस करो।

लेकिन रुपये हीरासिंह गाँव भेज चुका था, और उसमें से काफी रकम वहाँ के मकान की मरम्मत में काम आ चुकी थी। हीरासिंह फिर चुप रह गया।

सेठजी ने कहा—"क्या कहते हो?"

हीरासिंह क्या कहे?

सेठजी ने कहा—"अच्छा, तनख्वाह में से रकम कटती जाएगी और जब पूरी हो जाएगी, तो गाय अपनी ले जाना।"

हीरासिंह ने सुन लिया और सुनकर वह अपनी डयोढ़ी में आ गया। उस ड्योढ़ी के इधर हवेली है, उधर शहर बिछा है, जिसके पार खुला मैदान है और खुली हवा है। दोनों ओर टुक देर शून्य भाव से देखकर वह हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

अगले दिन सवेरे से ही एक प्रश्न भिन्न-भिन्न प्रकार की आलोचना-विवेचना का विषय बना हुआ था। बात यह थी कि सवेरे बहुत-सा दूध ड्योढ़ी पर बिखरा हुआ पाया गया। उससे पहली शाम को सुन्दरी गाय ने दूध देने से बिलकुल इन्कार कर दिया था। उसे बहलाया गया, फुसलाया गया, धमकाया और पीटा भी गया था। फिर भी वह राह पर न आई थी। अब यह इतना सारा दूध यहाँ कैसे बिखरा है? यह यहाँ आया तो कहाँ से आया?

लोगों का अनुमान था कि कोई दूध लेकर ड्योढ़ी में आया था, या ड्योढ़ी में जा रहा था, तभी उसके हाथ से यह बिखर गया है। अब वह दूध लेकर आने वाला आदमी कौन हो सकता है? लोगों का गुमान यह था कि हीरासिंह वह व्यक्ति हो सकता है। हीरासिंह चुपचाप था। वह लज्जित और सचमुच अभियुक्त मालूम होता था। हीरासिंह के दोषी होने का अनुमान या कारण यह भी था कि हवेली के और नौकर उससे प्रसन्न न थे। वह नौकर के ढंग का नौकर ही न था। नौकरी से आगे बढ़कर स्वामी-भक्ति का भी उसे चाव था जो कि नौकर के लिए असह्य दुर्गुण नहीं तो और क्या है?

सेठजी ने पूछा—"हीरासिंह यह क्या बात है?

हीरासिंह चुप रह गया।

सेठजी ने कहा—"इसका पता लगाओ हीरासिंह, नहीं तो अच्छा न होगा।"

हीरासिंह सिर झुकाकर रह गया पर कुछ ही देर में उसने सहसा चमत्कृत होकर पूछा—"रात गाय खुली तो नहीं रह गई थी? ज़रूर यही बात है। आप इसकी खबर तो लीजिए।"

घोसी को बुलाकर पूछा गया तो उसने कहा कि ऐसी चूक कभी उससे जनम-जीते जी हो सकती ही नहीं है, और कल रात तो हुज़ूर, पक्के दावे के साथ गाय

ठीक तरह से बँधी रही है।

हीरासिंह ने कहा—"ऐसा हो नहीं सकता।"

सेठजी ने कहा—"तो फिर तुम्हारी समझ में क्या हो सकता है ?"

हीरासिंह ने स्थिर होकर कहा—"गाय रात को आकर ड्योढ़ी में खड़ी रही है और अपना दूध गिरा गई है।"

यह कहकर हीरासिंह इतना लीन हो रहा था कि मानो गौ के इस दुष्कृत्य पर अतिशय कृतज्ञता में डूब गया हो।

सेठजी ऐसी अनहोनी बात पर कुछ देर भी नहीं ठहरे। उन्होंने कहा—"ऐसी मनसुई बातें औरों से कहना। जाओ, खबर लगाओ कि वह कौन आदमी है, जिसकी यह करतूत है।"

हीरासिंह ड्योढ़ी में चला गया। ड्योढ़ी इस हवेली और उस दुनिया के दरमियान है और उसके लिए धर बनी हुई है। और क्षणेक फिर शून्य में देखते रहकर सिर झुकाकर वह हुक्का गुड़गुड़ाने लगा।

रात को जब वह सो रहा था, उसे मालूम हुआ कि दरवाजे पर कुछ रगड़ की आवाज़ आई। उठकर दरवाजा खोला कि देखता क्या है, सुन्दरिया खड़ी है। इस गौ के भीतर इन दिनों बहुत बिथा घुटकर रह गई थी। वह तकलीफ बाहर आना ही चाहती थी। हीरासिंह ने देखा—मुँह ऊपर उठाकर उसकी सुन्दरिया उसे अभियुक्त आँखों से देख रही है। मानो अत्यन्त लज्जित बनी क्षमा-याचना कर रही हो। कहती हो—'मैं अपराधिनी हूँ। लेकिन मुझे क्षमा कर देना। मैं बड़ी दुखिया हूँ।'

हीरासिंह ने कहा—"बहिनी, यह तुमने क्या किया ?"

कैसा आश्चर्य ? देखता क्या है कि गौ मानव-वाणी में बोल रही है—"मैं क्या करूँ ?"

हीरासिंह ने कहा—"बहिनी, तुम बेवफाई क्यों करती हो ? सेठ को अपना दूध क्यों नहीं देती हो ? बहिनी ! वह अब तुम्हारे मालिक हैं।" कहते-कहते हीरासिंह की वाणी काँप गई, मानो कहीं भीतर इस मालिक होने की बात के सच होने में उसको खुद शंका हो।

सुन्दरी ने पूछा—"मालिक ? मालिक क्या होता है ?"

हीरासिंह ने कहा—"तुम्हारी कीमत के रुपये सेठ ने मुझे दिए थे। ऐसे वह तुम्हारे मालिक हुए।"

गौ ने कहा—"ऐसे तुम्हारे यहाँ मालिक हुआ करते हैं। मैं इस बात को जानती नहीं हूँ। लेकिन तुम मुझे प्रेम करते हो, सो तुम मेरे क्या हो ?"

हीरासिंह ने धीर भाव से कहा—"मैं तुम्हारा कुछ भी नहीं हूँ।"

गौ बोली—"तुम मेरे कुछ भी नहीं हो, यह तुम कहते हो ? तुम झूठ भी नहीं कहते होगे। तुम जो जानते हो, वह मैं नहीं जानती। लेकिन मालिक की बात के साथ दूध देने की बात मुझसे तुम कैसी करते हो ? मालिक हैं, तो मैं उनके घर में उनके खूँटे से बँधी रहती तो हूँ। रात मैं चोरी करके आई हूँ। तो भी उनकी ड्योढ़ी से बाहर नहीं हूँ। पर दूध तो मेरे उतरता ही नहीं, उसका क्या करूँ ? मेरे भीतर का दूध मेरे पूरी तरह बस में नहीं है। कल रात आप-ही-आप इतना सारा दूध यहाँ बिखर गया। मैं यह सोचकर नहीं आई थी। हाँ, मुझे लगता है कि बिखरेगा तो वह यों ही बिखर जाएगा। तुम ड्योढ़ी में रहोगे तो शायद ड्योढ़ी में बिखर जाएगा। ड्योढ़ी से पार चले जाओगे तो शायद भीतर-ही-भीतर सूख जाएगा। मैं जानती हूँ इससे तुम्हें दुःख पहुँचा है। मुझे भी दुःख पहुँचता है। शायद यह ठीक बात नहीं हो। मेरा यहाँ तक आ जाना भी ठीक बात नहीं हो। लेकिन जितना मेरा बस है, मैं कह चुकी हूँ। तुमने रुपए लिये हैं, और सेठ मेरे मालिक हैं, तो उनके घर में उनके खूँटे से मैं रह लूँगी। रह तो मैं रही ही हूँ, रुपये के लेन-देन से अधिकार का और प्रम का लेन-देन जिस भाव से तुम्हारी दुनिया में होता है, उसे मैं नहीं जानती। फिर भी तुम्हारी दुनिया में तुम्हारे नियम मानती जाऊँगी। लेकिन तुम अपने हृदय का इतना स्नेह देते हो, अब तुम मेरे कुछ भी नहीं हो और मैं अपने हृदय का दूध विलकुल तुम्हारे प्रति नहीं बहा सकती—यह बात मैं किस विधि मान लूँ ? मुझसे नहीं मानी जाती, सच, नहीं मानी जाती। फिर भी जो तुम कहोगे, वह मैं सब-कुछ मानूँगी।"

हीरासिंह ने विषाद-भरे स्वर में पूछा, "तो मैं तुम्हारा क्या हूँ ?"

गौ ने कहा—"तो क्या मेरे कहने की बात है ? फिर शब्द मैं विशेष नहीं

जानती। दुःख है, वही मेरे पास है। उससे जो शब्द बन सकते हैं उन्हीं तक मेरी पहुँच है। आगे शब्दों में मेरी गति नहीं है, जो भाव मन में हैं, उनके लिए संज्ञा मेरे जुटाए जुटती नहीं। पशु जो मैं हूँ। संज्ञा तुम्हारे समाज की स्वीकृति के लिए ज़रूरी होती होगी, लेकिन मैं तुम्हारे समाज की नहीं हूँ। मैं निरी गौ हूँ। तब मैं कह सकती हूँ कि तुम मेरे कोई हो, कोई न हो, दूध मेरा किसी और के प्रति नहीं बहेगा। इसमें मैं या तुम या कोई शायद कुछ भी नहीं कर सकेंगे। इस बात में मुझपर मेरा भी बस कैसे चलेगा ? तुम जानते तो हो, मैं कितनी परबस हूँ।"

हीरासिंह गौ के कण्ठ से लिपटकर सुबकने लगा। बोला—"सुन्दरिया, तो मैं क्या करूँ ?"

गौ ने कंपित वाणी में कहा—"मैं क्या कहूँ ? क्या कहूँ ?"

हीरासिंह ने कहा—"जो कहो, मैं वही करूँगा सुन्दरी। रुपये का लेन-देन है, लेकिन, मेरी गौ, मैंने जान लिया कि उससे आगे भी कुछ है। शायद उससे आगे ही सब कुछ है। जो कहो वही करूँगा, मेरी सुन्दरिया !"

गौ ने कहा—"जो तुमसे सुन रही हूँ, उससे आगे मेरी कुछ चाहना नहीं है। इतने में ही मेरी सारी कामनाएँ भर गई हैं। आगे तो तुम्हारी इच्छा है और मेरा तन है। मेरा विश्वास करो मैं कुछ नहीं माँगती और मैं सब सह लूँगी।"

सुनकर हीरासिंह बहुत विह्वल हो आया। उसके आँसू रोके न रुके। वह गर्दन से लिपटकर तरह-तरह के प्रेम-सम्बोधन करने लगा। उसके बाद हीरासिंह ने बहुत-से आश्वासन के वचनों के साथ गौ को विदा किया।

अगले दिन सवेरे उसने सेठजी से कहा, "आप मुझसे जितने महीने की चाहें कसकर चाकरी लीजिए, पर गौ आज ही यहाँ से हमारे गाँव चली जाएगी। रुपये जब आपके चुकता हो जाएँ मुझसे कह दीजिएगा। तब मैं भी छुट्टी ले जाऊँगा।"

सेठजी की पहले तो राजी होने की तबियत न हुई, फिर उन्होंने कहा—"हाँ, ले जाओ, ले जाओ। पूरा-पूरा ढाई सौ रुपये का तावान तुम्हें भरना पड़ेगा।"

हीरासिंह तावान भरने को ख़ुशी से राजी हुआ और गौ को उसी रोज़ ले गया।

८

प्रायश्चित्त

भगवतीचरण वर्मा

अगर कबरी बिल्ली घर-भर में किसी से प्रेम करती थी, तो रामू की बहू से, और अगर रामू की बहू घर-भर में किसी से घृणा करती थी, तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू, दो महीने हुए मायके से प्रथम बार ससुराल आई थी। भण्डार घर की चाभी उसकी करधनी में लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा, और रामू की बहू घर में सब कुछ। सासजी ने माता ली और पूजा-पाठ में मन लगाया।

लेकिन ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भण्डार-घर खुला है तो कभी भण्डार-घर में बैठे-बैठे सो गई। कबरी बिल्ली को मौका मिला, घी-दूध पर अब वह जुट गई। रामू की बहू की जान आफत में और कबरी बिल्ली के छक्के पंजे। रामू की बहू हाँड़ी में घी रखते-रखते-ऊँघ गई और बचा हुआ घी कबरी के पेट में। रामू की बहू दूध ढँककर मिसरानी को जिन्स देने गई और दूध नदारद। अगर बात यह यहीं तक रह जाती, तो बुरा न था, कबरी रामू की बहू से कुछ ऐसा परक गई थी कि रामू की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार था। रामू की बहू के कमरे में रबड़ी से भरी कटोरी पहुँची और रामू जब आये तब कटोरी साफ चटी हुई। बाज़ार से बालाई आई और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया बालाई गायब।

रामू की बहू ने तय कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या फिर कबरी बिल्ली ही। मोरचाबन्दी हो गई, और दोनों सतर्क। बिल्ली फँसाने का कठघरा आया, इसमें दूध, बालाई, चूहे और भी बिल्ली को स्वादिष्ट लगने वाले विविध प्रकार के व्यंजन रखे गए, लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। इधर कबरी ने सरगर्मी दिखलाई। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी; पर अब वह साथ लग गई, लेकिन इतने फासिले पर कि रामू की बहू उस पर हाथ न

लगा सके।

कबरी के हौसले बढ़ जाने से रामू की बहू को घर में रहना मुश्किल हो गया। उसे मिलती थीं सास की मीठी झिड़कियाँ, और पतिदेव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनाई। पिस्ता, बादाम, मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध में औटाये गए, सोने का वर्क चिपकाया गया और खीर से भरकर कटोरा कमरे में एक ऊँचे ताक पर रखा गया, जहाँ बिल्ली न पहुँच सके। रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गई।

उधर बिल्ली कमरे में आई, ताक के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा, सूँघा, माल अच्छा है, ताक की ऊँचाई अन्दाजी और देखा कि रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगाकर रामू की बहू सासजी को पान देने चली गई और कबरी ने छलाँग मारी, पंजा कटोरे में लगा और कटोरा झनझनाहट की आवाज़ के साथ फर्श पर।

आवाज़ रामू की बहू के कान में पहुँची, सास के सामने पान फेंककर वह दौड़ी, क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े-टुकड़े, खीर फर्श पर और बिल्ली डटकर खीर उड़ा रही है। रामू की बहू को देखते ही कबरी चम्पत।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बाँस न बजे बाँसुरी, रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात-भर उसे नींद न आई, किस दाँव से कबरी पर वार किया जाय कि फिर ज़िन्दा न बचे, यही पड़े-पड़े सोचती रही। सुबह हुई और वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे देख रही है।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुसकराती हुई वह उठी, कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गई। रामू की बहू एक कटोरा दूध कमरे के दरवाज़े की देहरी पर रखकर चली गई। हाथ में पाटा लेकर वह लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी है। मौका हाथ में आ गया। सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी न हिली न डुली, न चीखी न चिल्लाई, वरन एकदम उलट गई।

आवाज़ जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर और सास

पूजा छोड़कर घटनास्थल पर उपस्थित हो गईं। रामू की बहू सिर झुकाए हुए अपराधिनी की भाँति बातें सुन रही है।

महरी बोली—अरे राम बिल्ली तो मर गई, माँजी बिल्ली की हत्या बहू से हो गई, यह तो बुरा हुआ।

मिसरानी बोली—माँजी, बिल्ली की हत्या और आदमी की बराबर है, हम तो रसोई न बनावेंगी, जब तक बहू के सिर हत्या रहेगी।

सासजी बोलीं—हाँ ठीक तो कहती हो, अब जब तक बहू के सिर से हत्या न उतर जाय, तब तक न कोई पानी पी सकता है न खाना खा सकता है। बहू यह क्या कर डाला।

महरी ने कहा—फिर क्या हो, कहो तो पंडितजी को बुला लाऊँ।

सास की जान में जान आई—अरे हाँ, जल्दी दौड़ के पंडितजी को बुला ला।

बिल्ली की हत्या की खबर बिजली की तरह पड़ोस में फैल गई—पड़ोस की औरतों का रामू के घर में ताँता बँध गया। चारों तरफ से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाए वैठी।

पण्डित परमसुख को जब यह खबर मिली, उस समय वे पूजा कर रहे थे। खबर पाते ही वे उठ पड़े—पण्डिताइन से मुसकराते हुए बोले—भोजन न बनाना, लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली, प्रायश्चित्त होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा।

पण्डित परमसुख चौबे छोटे-मोटे से आदमी थे। लम्बाई चार फुट दस इंच, और तोंद का घेरा अट्ठावन इंच। चेहरा गोल-मटोल, मूँछ बड़ी-बड़ी, रंग गोरा, चोटी कमर तक पहुँचती हुई।

कहा जाता है कि मथुरा में जब पसेरी खुराक वाले पण्डितों को ढूँढ़ा जाता था, तो पण्डित परमसुखजी को उस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था, पण्डित परमसुख पहुँचे और कोरम पूरा हुआ। पंचायत बैठी—सासजी, मिसरानी, किसनू की माँ, छन्नू की दादी और पण्डित परमसुख! बाकी स्त्रियाँ बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

किसनू की माँ ने कहा—पण्डितजी, बिल्ली की हत्या करने से कौन नरक

मिलता है ? पण्डित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा—बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नहीं बतालाया जा सकता, वह मुहूर्त भी मालूम हो जब बिल्ली की हत्या हुई, तब नरक का पता लग सकता है।

यही कोई सात बजे सुबह—मिसरानीजी ने कहा।

पण्डित परमसुख ने पत्रा के पन्ने उलटे, अक्षरों पर अँगुलियाँ चलाईं, माथे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुँधलापन आया, माथे पर बल पड़े, नाक कुछ सिकुड़ी और स्वर गम्भीर हो गया—हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! बड़ा बुरा हुआ, प्रातःकाल ब्रह्म-मुहूर्त में बिल्ली की हत्या ! घोर कुम्भीपाक नरक का विधान है ! रामू की माँ की आँखों में आँसू आ गए—तो फिर पण्डितजी अब क्या होगा आप ही बतलाइए।

पण्डित परमसुख मुसकराये—रामू की माँ, चिन्ता की कौन-सी बात है, हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं ? शास्त्रों में प्रायश्चित्त का विधान है, सो प्रायश्चित्त से सब ठीक हो जाएगा।

रामू की माँ ने कहा—पण्डितजी, उसी के लिए तो आपको बुलाया था, अब आगे बताओ कि क्या किया जाय।

किया क्या जाय, यही कि सोने की एक बिल्ली बनाकर बहू से दान करवा दिया जाय। जब तक बिल्ली न दे दी जाएगी, तब तक तो घर अपवित्र रहेगा। बिल्ली दान देने के बाद इक्कीस दिन का पाठ हो जाय।

छन्नू की दादी—हाँ और क्या, पण्डितजी तो ठीक कहते हैं, बिल्ली अभी दान दे दी जाय, पाठ फिर हो जाय।

रामू की माँ ने कहा—तो पण्डितजी कितने तोले की बनवाई जाय ?

पण्डित परमसुख मुस्कराये, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—बिल्ली कितने तोले की बनवाई जाय ? अरे रामू की माँ शास्त्रों में तो लिखा है बिल्ली के वजन-भर सोने की बिल्ली बनवाई जाय; लेकिन अब कलयुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नहीं रही। सो रामू की माँ बिल्ली के तौल-भर की बिल्ली तो क्या बनेगी। हाँ कम से कम इक्कीस तोले की बिल्ली बनवा के दान करवा दो, और आगे तो अपनी-अपनी श्रद्धा !

रामू की माँ ने आँखें फाड़कर पंडित परमसुख को देखा—अरे बाप रे इक्कीस तोला सोना ! पंडितजी यह तो बहुत है, तोला-भर की बिल्ली से काम न निकलेगा ?

पंडित परमसुख हँस पड़े—रामू की माँ ! एक तोला सोने की बिल्ली ! अरे रुपया का लोभ बहू से बढ़ गया ? बहू के सिर बड़ा पाप है, इसमें इतना लोभ ठीक नहीं !

मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया। इसके बाद पूजा-पाठ की बात आई। पंडित परमसुख ने कहा—उसमें क्या मुश्किल है, हम लोग किस दिन के लिए हैं, रामू की माँ, मैं पाठ कर दिया करूँगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना।

पूजा का सामान कितना लगेगा ?

और कम-से-कम सामान में हम पूजा कर देंगे, दान के लिए करीब दस मन गेहूँ, एक मन चावल, एक मन दाल, मन भर तिल, पाँच मन जौ और पाँच मन चना, चार पसेरी घी, और मन भर नमक भी लगेगा। बस इतने से काम चल जाएगा।

अरे बाप रे इतना सामान। पण्डितजी इसमें तो सौ-डेढ़ सौ रुपया खर्च हो जाएगा—रामू की माँ ने रुआँसी होकर कहा।

फिर इससे कम में तो काम न चलेगा। बिल्ली की हत्या कितना बड़ा पाप है, रामू की माँ ! खर्च को देखते वक्त पहले बहू के पाप को देख लो यह तो प्रायश्चित्त है। कोई हँसी-खेल थोड़े ही है—और जैसी जिसकी मरजादा ! प्रायश्चित्त में उसे वैसा खर्च भी करना पड़ता है। आप लोग कोई ऐसे-वैसे थोड़े हैं, और सौ-डेढ़ सौ रुपया आप लोगों के हाथ का मैल है।

पण्डित परमसुख की बात से पंच प्रभावित हुए, किसनू की माँ ने कहा—पंडित जी ठीक तो कहते हैं, बिल्ली की हत्या कोई ऐसा-वैसा पाप तो है नहीं—बड़े पाप के लिए बड़ा खर्च भी चाहिए।

छन्नू की दादी ने कहा—और नहीं तो क्या, दान-पुन्न से ही पाप कटते हैं—दान-पुन्न में किफायत ठीक नहीं।

मिसरानी ने कहा—और फिर माँजी आप लोग बड़े आदमी ठहरे। इतना खर्च कौन आप लोगों को अखरेगा।

रामू की माँ ने अपने चारों ओर देखा—सभी पंच पण्डितजी के साथ। पंडित परमसुख मुसकरा रहे थे। उन्होंने कहा—रामू की माँ! एक तरफ तो बहू के लिए कुम्भी पाक नरक है और दूसरी तरफ तुम्हारे ज़िम्मे थोड़ा-सा खर्च है। सो उससे मुँह न मोड़ो।

एक ठंडी साँस लेते हुए रामू की माँ ने कहा—अब तो जो नाच नचाओगे नाचना ही पड़ेगा।

पण्डित परमसुख जरा कुछ बिगड़कर बोले—रामू की माँ! यह तो खुशी की बात है—अगर तुम्हें यह अखरता है तो न करो, मैं चला।—इतना कहकर पंडितजी ने पोथी-पत्रा बटोरा।

अरे पण्डितजी! रामू की माँ को कुछ नहीं अखरता—बेचारी को कितना दुःख है, बिगड़ो न।—मिसरानी, छन्नू की दादी और किसनू की माँ ने एक स्वर में कहा।

रामू की माँ ने पण्डितजी के पैर पकड़—और पण्डितजी ने अब जमकर आसन जमाया।

अब क्या हो?

इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपये और इक्कीस दिन तक दोनों बखत पाँच-पाँच ब्राह्मणों को भोजन करवाना पड़ेगा। कुछ रुककर पण्डित परमसुख ने कहा—सो इसकी चिन्ता न करो। मैं अकेले दोनों समय भोजन कर लूँगा और मेरे अकेले भोजन करने से पाँच ब्राह्मण के भोजन का फल मिल जाएगा।

यह तो पण्डितजी ठीक कहते हैं, पण्डितजी की तोंद तो देखो!—मिसरानी ने मुसकराते हुए पण्डितजी पर व्यंग्य किया।

अच्छा तो फिर प्रायश्चित्त का प्रबन्ध करवाओ रामू की माँ, ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊँ—दो घण्टे में मैं बनवाकर लौटूंगा, तब तक सब पूजा का प्रबन्ध कर रखो—और मैं पूजा के लिए…

पडिण्तजी की बात खतम भी न हुई थी कि महरी हाँफती हुई कमरे में घुस आई, और सब लोग चौंक उठे। रामू की माँ ने घबराकर कहा—अरी क्या हुआ री।

महरी ने लड़खड़ाते स्वर में कहा—माँजी, बिल्ली तो उठकर भाग गई !

९

मनुष्य यह !

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

अपनी पत्नी की मृत्यु के चौथे रोज पं० परसराम श्मशान से फूल चुनने के बाद मुहल्ले की धर्मशाला में आकर बैठे, तो उस समय उनके मन में असीम वैराग्य उत्पन्न हो उठा था। उस समय ही क्यों, उनकी पत्नी जब से बीमार पड़ी थी, और जब ही उन्हें मालूम हुआ था कि डाक्टरों, हकीमों और वैद्यों की दवाएँ और उनकी माँ के देवी-देवता, पीर-फकीर, सब उसे मौत के मुँह से न बचा सकेंगे, तभी से एक अज्ञात वैराग्य उनकी नस-नस में समाया जाता था।

प्रातःकाल का अँधेरा अभी काफी गहरा था। लोग चुपचाप आकर दरी पर बैठ गए थे। धर्मशाला के मन्दिर का पुजारी भी मन्दिर के चौंतरे को धोने का काम छोड़ चुपचाप शोक प्रकट करने के निमित्त आ बैठा था। परे दरवाजे पर की लालटेन जैसे अपनी अन्तिम साँसों को भरकर रोककर प्रकाश देने का प्रयास कर रही थी। तेल शायद समाप्त हो चुका था और उसका मद्धम प्रकाश अंधकार की गहराई को और भी व्यग्रता से प्रकट कर रहा था।

प० परसराम ने दीर्घ निश्वास छोड़ा। चाहा उन्होंने कि यह अँधेरा उन्हें भी चुपचाप लील जाए, उसी तरह निगल जाय जैसे मृत्यु का अंधकार उनकी पत्नी को निगल गया था। गरम कंबल उनके कंधे से खिसककर धरती पर आ रहा था। कमीज का गरेबा खुला था। पर शरीर में तीर की भाँति चुभ जानेवाले शीत का उन्हें लेश भी ज्ञान न था। उनकी तो मानो चेतना ही सन्न हो गई थी।

नाई ने कहा—"यजमान, उठकर हाथ दे दो !"

परसराम अन्यमनस्क भाव से कंबल को सम्हालते हुए उठे। खोये-खोये से धर्मशाला के दरवाजे पर आ खड़े हुए और उपस्थित लोगों की ओर उन्होंने हाथ बढ़ा दिया। तब सबको सुनाई देनेवाली एक लम्बी साँस के साथ मानो उम्र-भर के

अनुभवों से दबी हुई कमर को लेकर लाला रामलुभाया उठे और कुछ समीप आकर उन्होंने कहा—"देखो बच्चा, अब गम को छोड़कर आगे की चिंता करो, यह संसार तो ऐसे ही चलता है।"

इस 'आगे की चिन्ता' में जो संकेत निहित था, उसे समझकर परसराम का हृदय ग्लानि से भर आया और उन्होंने उपेक्षा से मुँह फेर लिया।

लाला रामलुभाया फिर लम्बी साँस लेकर चल पड़े और उनके बाद दूसरे लोग एक-एक करके शोक प्रकट करते हुए उनके पास से गुज़रने लगे।

"भाई, मौत के आगे क्या चारा है, अपने मन को शांति दो और अपना घर-बार बसाओ।"

"संसार में आना-जाना तो लगा ही है पंडितजी, इस तरह दुख करके आदमी कहाँ तक जी सकता है ?"

"माँ के बुढ़ापे का ख्याल करो भाई, और कोई ऐसी सबील करो, जिससे उसे भी सहारा मिले।"

"पंडितजी, आपकी अभी उम्र ही क्या है, इस उम्र में तो हमें खाने-पहनने तक का भी ज्ञान न हुआ था।"

जब शोकपूर्ण शब्दों के साथ प्रायः प्रत्येक पड़ोसी के कुछ ऐसे ही वाक्य उनके कानों में पड़े, तो पं० परसराम का विषाद और भी गहरा हो गया। और जब सबके चले जाने के बाद वह नाई के साथ मिलकर दरी उठाने लगे और नाई ने एक खिसियानी-सी मुसकराहट के साथ कहा—"यजमान ! वे तो देवी थीं, दया-धर्म का जैसा उन्हें ज्ञान था, वैसा किसे होगा !" और दरी लपेटते-लपेटते यह देखकर कि उनकी बात ने यजमान के चेहरे पर एक बादल-सा होकर गुज़र गया है, नाई ने कहा—"उन जैसी देवी तो यजमान, अब कहाँ मिलेगी ? पर यदि आप हाँ कहें, तो सुन्दर, शिक्षित, घर के काम-काज में चतुर···"

परसराम रूखी हँसी हँसे और—"हाँ, हाँ, क्यों नहीं !" कहते हुए कम्बल को लपेट, अँगोछे को कंधे पर रख जैसे अंगारों पर से गुज़रते हुए घर को चल पड़े।

दुपहर को ऊपर छत पर धूप में आरामकुर्सी डाले वे चुपचाप पड़े थे और

सुबह की बातें एक-एक करके उनके कानों में गूँज रही थीं—आगे की चिन्ता करो···घर-बार बसाओ···माँ के वुढ़ापे को सहारा मिले ऐसी सबील करो ; अभी आपकी उम्र ही क्या है ? और सोच रहे थे वे कि ये लोग कैसे शुष्क और हृदयहीन हैं ? कैसे ये किसी की अस्थियों पर बैठकर विवाह की बातें कर सकते हैं ? यह संसार कितना स्वार्थी है ! हृदय नाम की वस्तु इसके यहाँ कितने कम परिमाण में मौजूद है ! तभी उन्होंने सुना सीढ़ियों पर उनकी माँ इस अपने वुढ़ापे को, इन न खत्म होनेवाली निगोड़ी सीढ़ियों को कोसती चली आ रही हैं।

माँ जब पास आकर बैठ गई और साँस को उन्होंने ठीक कर लिया और बीमारी के दिनों में परसराम ने बहू की जो सेवा की और जिस-जिस तरह उसे अस्पताल में में रखा और जिस तरह पैसा पानी की तरह बहाया उन सबका ज़िक्र करके जब अंत में दो आँसू भी बहा लिये, तो कहने लगीं कि बेटा, जो बना है वह अवश्य टूटेगा, इस जग में और किस चीज़ को स्थायित्व है कि मनुष्य ही अमर रहें ? यदि आदमी इस तरह चुप बैठ जाए, तो फिर संसार के काम कैसे चल सकते हैं ? और फिर एक लम्बी साँस लेकर उन्होंने गली बालमातावाले पं० दीनदयाल की चाची का ज़िक्र छेड़ा कि बेचारी बड़ी भली हैं, जब से पति की मृत्यु हुई है, उन्होंने भूलकर भी उजला कपड़ा नहीं पहना। अपने मन को उन्होंने काम-काज और साधु-संतों की संगत में लगा दिया है और धर्म-कर्म की तो मानो वे मूर्ति हैं। और फिर बोली कि उनका भतीजा दीनदयाल तो बड़ा ही भलामानुस है, बिजली की कम्पनी में हेडक्लर्क है, दो सौ वेतन पाता है, अपनी चाची को वह माँ की तरह मानता है, उस बेचारे की कोई संतान नहीं। ले-देकर एक ही लड़की भागवन्ती है जो अपने पिता की धर्मपरायणा चाची के चरणों में बैठकर घर के काम-काज और धर्म-कर्म के कामों में दक्ष हो गई है···

तभी आकाश में कहीं से एक कटा हुआ पतंग असहाय-सा, बेकस-सा इधर-उधर डोलता, क्षण-प्रतिक्षण नीचे गिरता उन्हें दिखाई दिया। जिधर को वह जा रहा था, उधर ही उनकी दृष्टि भी जा रही थी और उनकी माँ इस समय यह जानकर कि उनका लड़का दत्तचित्त होकर सुन रहा है, सोल्लास भागवन्ती के रूप-गुण का बखान कर रही थी। सहसा एक झपकी खाकर पतंग टूट किसी मकान

के आँगन में जा गिरा। पंडित परसराम ने लम्बी साँस ली। माँ तब तक कह रही थी कि बच्चा, दीनदयाल की चाची ने तो कहा कि यदि परसराम माने तो भागवन्ती···

तब पण्डित परसराम ने उन आँखों से माँ की ओर देखा जिनमें सफेदी होने पर भी आग बरस रही थी और एक बार उनके मुँह से निकला—"माँ !" उनकी कल्पना के सम्मुख तब उनकी सास का उदास और विवर्ण मुख फिर गया। कितनी मिन्नतों, कितनी प्रार्थनाओं के बाद एक-एक करके सात बच्चों को मृत्यु की गोद में सुलाने के बाद, उसने यह लड़की पाई थी। उसे अपने पति के साथ सुखी देखकर वह अपने सारे अभाव को, अपने बच्चों के निधन को, अपने पति की मृत्यु के सब दुःख को भुलाये हुए थी। अपनी लड़की और दामाद को देखकर ही वह जीती थी। पर आज वह भी न रही ! अपनी सास के दुःख का खयाल करके परसराम सिहर उठे। उन्होंने निश्चय कर लिया कि धर्म का जो नाता एक बार स्थापित हो गया, उसे वे कदापि न टूटने देंगे, उसे सांत्वना देंगे। उसे तसल्ली देंगे, कहेंगे कि क्या हुआ। यदि तुम्हारी लड़की मर गई, तुम्हारा लड़का तो है। आखिर दामाद और लड़के में अन्तर ही क्या है ? वे उसके चरणों पर सिर रख देंगे और कहेंगे कि माँ ! तुम्हारा यह लड़का तुम्हारी हर सेवा के लिए हाजिर है।

यह सोच वे उठे। ससुराल उनकी नगर में ही थी, चुपचाप वे उधर को चल पड़े।

ड्योढ़ी में स्त्रियों के दायरे में बैठी उनकी सास अपनी जवान लड़की की मृत्यु पर क्रन्दन कर रही थी, उसे तो आयु-भर रोना ही था ; पर समाज का भी यह अनुरोध है कि बाईस दिन तक उसे दिखाकर रोया जाए। उसके करुण क्रन्दन को सुनकर परसराम का दिल भर आया। चुपचाप ड्योढ़ी के पास जाकर खड़े हो गए। रोना कुछ क्षण के लिए बन्द हो गया। अन्दर जाने के लिए उन्हें मार्ग दे दिया गया। तभी उन्हें पहचानकर एक बुढ़िया ने दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा—"बेचारे का इस घर से इतना नाता था, अब सूरत तक को भी तरस जाएंगे।"

दूसरी ने कहा—"भला, यह कोई बात है, विमला जो है।" और तब परसराम की सास से उसने कहा—"अपना तो जो जाना था, चला गया, बित्तो

की माँ, पर घर की आग दूसरे क्यों सेंकें ?"

बित्तो की माँ ने एक दीर्घ निश्वास छोड़ा।

परसराम के कानों में भी इन बातों की भनक पड़ी। उन्हें इन दोनों पर दया हो आई। उनके दिल पर जो गुजर रही थी, उनकी सास के हृदय पर जो बीत रही थी, उसे यह शुष्क, हृदयहीन बुढ़िया क्या जाने ?

जब स्त्रियों के चले जाने के बाद सास उनके पास आई, तो अनायास ही उसकी आँखों में आँसू आ गए। पर शीघ्र ही व्यस्त होते हुए बोली—"सुबह का काहे को कुछ खाया होगा ?" और फिर उसने अपने भतीजे की बहू को बुलाकर कहा कि जल्दी से कुछ बना दो। परसराम ने बहुतेरा कहा कि मुझे भूख नहीं, मैं कुछ न खा सकूँगा, पर जब सास ने एक लम्बी साँस भरी और दुखी होकर कहा कि बच्चा, अब तू कब-कब मेरे घर खायेगा...तो परसराम चुप हो गए। खाना बना तो भूख न होने पर भी वे चुपचाप खाने लगे। सास पास आ बैठी। तब अचानक ही उनकी आँखें भर आईं। कण्ठ अवरुद्ध हो गया। घुटे-घुटे स्वर में बोली—"इतना ही सम्बन्ध था भाग्य में। मैं तो तुम्हें पाकर निश्चिन्त हो गई थी; पर जिस विधाता ने अपने लड़के ही छीन लिये, वह दूसरे..."

परसराम ने विनीत कंठ से कहा—"तुम क्या बात करती हो माँ ? यह नाता इतना साधारण नहीं, इतना कच्चा नहीं कि मृत्यु सूत के धागे की भाँति इसे तोड़ दे।"

"दुनिया में यह होता ही आया है बच्चा !"—सास ने कहा।

"दुनिया, दुनिया ! मुझे तुमने दुनिया-जैसा देखा है ?"

सास ने कहा—"बेटा, पराई लड़कियाँ आकर भाई-भाई में विद्रोह डाल देती हैं, फिर तो नाता अब कल की बात हो गई।"

"पराई लड़की ?"

"हाँ, अंत को कोई पराई लड़की आएगी ही। अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है बेटा ?" और फिर एक दीर्घ निश्वास छोड़कर एक दबे स्वर में सास ने कहा—"लोग कहते हैं, घर की आग घर में ही रहे। विमला है, मेरे जेठ की लड़की है, तुमने उसे देखा ही होगा; छोटी-सी ही थी, जब अपने बाप के पास चली गई थी,

पर अब तो बेटा, वह ब्याहने योग्य है, मेरे अगर कोई दूसरी लड़की होती तो क्या मैं तुम्हें जाने देती ? पर अब यहीं···"

परसराम ने कहा—"तुम कहती ही क्या हो माँ ?"

"सोचती हूँ कि यह रिश्ता हो जाय तो मेरा भी आना-जाना खुला रहे, नहीं तो पराई लड़की कब···"

परसराम को गुस्सा आ गया। क्रोध से बोले—"माँ ने यह बात की, चाची ने यह बात की, पास-पड़ोस ने यह बात की। कई आँख के अंधे सगाइयाँ लेकर ही आए। पर मैं चुप रहा, किन्तु तुम उसकी, मरनेवाली की माँ होकर यही बात करोगी ? और वह भी उसकी मृत्यु के चौथे दिन ही ! इस बात की मैंने स्वप्न में भी कल्पना न की थी।" क्रोध और भावावेश से परसराम का गला रुँध गया। तभी किसी ने धीरे से कहा—"नमस्कार, जीजाजी !"

परसराम ने सिर उठाकर देखा, अत्यन्त सुन्दर, पर उदास, बड़ी-बड़ी आँखें लिए लज्जा के भार से जैसे सिमटी विमला उनके सामने आकर बैठ गई है।

क्रोध के आवेग में परसराम कुछ और भी कहनेवाले थे कि रुक गए और हैरान से विमला की ओर देखने लगे। यह वही विमला है जिसे उन्होंने आठ वर्ष पहले अपने विवाह के दिनों में फटी पुस्तकें और कटे बालों को लिए स्कूल जाते देखा था !

"पहचाना नहीं ?"—सास ने दीर्घ निश्वास भरकर कहा—"विमला है, तुम्हारी साली।"

परसराम ने धीरे से कहा—"पहचानता हूँ; अब तो यह सयानी हो गई है।"—और विमला का मुख लाल-लाल हो गया।

साँझ पड़े जब परसराम लौटे तो उनका हृदय उदास न था, कुछ प्रफुल्लित ही था और रह-रहकर उनकी आँखों के सामने कान्तकामिनी विमला की सूरत फिर जाती थी। छिः-छिः वे अपने-आप पर क्रुद्ध होते चले जा रहे थे; पर जितना ही वे क्रुद्ध होते, जितना ही उस चित्र को मस्तिष्क से हटाने का प्रयास करते उतना ही वह और भी गहरा होकर अंकित होता जाता था। और अनजाने ही वे विमला के गुण-दोषों का विवेचन करने लगते।

वहीं बैठे-बैठे उन्होंने पूछा था—"कहो विमला, क्या करती रहीं ? कुछ पढ़ीं भी या यों ही वक्त गँवाती थीं ?"

तब विमला ने कहा—"आठ जमातें पढ़ी हूँ।" और फिर अपनी रौ में बह चली थी—"वहाँ से बहुत कुछ सीखा है जीजाजी मैंने। चादरों में ऐसे अच्छे फूल निकालती हूँ कि इधर कौन निकालेगा ? दुसूती काम नफीस से नफीस सीख गई हूँ। इतने किस्म के स्वेटर बुन लेती हूँ कि गिना नहीं सकती। और फिर धोतियों के किनारों से ट्रंकों के गिलाफ़ बना लेती हूँ, फटे कपड़ों के धागों से आसन बुन लेती और कसीदा······" और परसराम सोचते, ऐसी ही पत्नी तो मैं चाहता हूँ और तभी अपनी मृत पत्नी के अनेकों दोष उनकी आँखों के सामने फिर जाते। वह कहाँ इतनी चुस्त थी। अनपढ़ और अशिक्षित और उसे कहाँ यह सब करना आता था। और तभी वे अपने आपको कोसने लगते। छिः-छः, यह क्या उचित है ? बित्ती से विमला का क्या मुकाबला ? उस जैसा सरल, अबाध प्रेम उन्हें कौन दे सकता है ? लेकिन विमला······"

वहीं बैठे-बैठे बातें कर रहे थे तब विमला की बड़ी बहन आ गई और आँखों में आंसू भरकर उसने कहा—"जीजाजी, बित्तो को कहाँ छोड़ आए ? और वह ऊँचे-ऊँचे रो उठी थी।" तब उसका यह क्रन्दन उन्हें बहुत बुरा लगा था। विमला से बातें करते-करते वे एक और दुनिया में खो गए थे और विमला की बड़ी बहन की संवेदना तक उन्हें रुचिकर प्रतीत न हुई थी, यद्यपि आज कई दिन से एकमात्र इसीके सहारे जी रहे थे। आज अपने घर को जाते अपने इसी व्यवहार के अनौ-चित्य पर वे खीझ उठे थे। क्या उसके लिए ऐसा करना उचित था, क्या उन्हें इस तरह खो जाना चाहिए था ? अपनी प्रिय पत्नी की मृत्यु के चौथे दिन ही, छिः ! छिः ! !

अपने आपसे इसी तरह लड़ते-झगड़ते वे चले जा रहे थे कि मार्ग में उन्हें उनका मित्र चेतन मिल गया—वह सदैव खुश, सदैव प्रसन्न रहने वाला कुंवारा चेतन।

"तुम्हारी पत्नी मर गई !"—चेतन ने ज़रा गम्भीर होकर कहा—"मैंने कल ही सुना।" और फिर एक साँस में कह उठा—"देखो, अब शीघ्र ही विवाह

के फन्दे में न फँसना, कुछ देर आराम करना।"

पं० परसराम को उसका यह कथन अच्छा नहीं लगा। विमला का चित्र फिर विद्युत्-सा उनकी आँखों के सम्मुख फिर गया, दीर्घ निश्वास लेकर उन्होंने कहा—"नहीं, अब क्या शादी करूँगा ?"

चेतन ने कहा—"हाँ, अब इस जंजाल में हरगिज़ न फँसना और फिर तुम तो इस जीवन का आनन्द भी ले चुके हो।"

पं० परसराम के यह दूसरा घाव लगा; पर मन के भावों को मन ही में दबाकर कुछ दबे-दबे स्वर में उन्होंने कहा—"नहीं अब शादी क्या करूँगा ? मेरी सास मेरी साली के लिए कह रही हैं, उसके कोई और लड़की भी नहीं है। चाहती हैं कि उधर नाता कर लूँ तो उसका आना-जाना भी बना रहे।" और फिर सहसा जोश से कह उठे—"पर मैं तो शादी करने का ख्याल भी नहीं रखता, बित्तो की मृत्यु के बाद···"

"हाँ-हाँ कहीं भी न फँसना, बिलकुल न फँसना।" आकाश में विचरने वाले पक्षी की भाँति चेतन के वाक्य उनके कानों में गूँजने लगे।

रात को खाना खाते समय माँ ने गली मातावाली पं० दीनदयाल की चाची की बात छेड़ी तो वे चुपचाप सुनते रहे, उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि चेतन की बातों से उनके हृदय पर जो घाव-से लगे थे, उनपर माँ की बातें ठंडे मरहम का काम दे रही हैं।

सुबह उठे, तो पं० परसराम का सिर भारी था। रात को वे बहुत देर तक सो न सके थे। एक द्वन्द्व-सा सारी रात उनके मन में छिड़ा रहा था और प्रातः उठने के साथ ही जैसे ससुराल जाने की एक प्रबल आकांक्षा उनमें जाग उठी थी। विमला की वह सरल सुन्दर मूर्ति सारी रात उनकी आँखों में घूमती रही थी। शौच आदि से निवृत्त हो, नहा-धो, जल्दी-जल्दी खाना खा, कपड़े पहन वे तैयार हो गए। तभी दरवाजे के ऊपर टँगे हुए अपनी स्वर्गीया पत्नी के चित्र पर उनकी नज़र गई। वे खड़े-खड़े रह गए। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे चोरी करने के लिए जाते समय उनका पाँव किसी ने पीछे से पकड़ लिया है। अपना यह कृत्य भयावह रूप धारण करके उनके सामने आ गया। कोट उतारकर खूँटी पर

टाँगते हुए वे कुरसी पर बैठ गए और मन ही मन इस कृत्य के लिए उन्होंने अपनी पत्नी के उस चित्र के सामने हाथ जोड़कर क्षमा माँगी।

इसके बाद वे कई दिन तक अपने कमरे से बाहर न निकले। द्वन्द्व उनके मन में शांत हो गया हो—ऐसी बात न थी। पर उन्होंने निश्चय कर लिया था कि वे उसे शांत कर देंगे।

इन सात दिनों में कई अच्छे-अच्छे घरों से पैगाम भी आए। पर परसराम अपने कमरे से बाहर ही नहीं निकले। माँ के पास भी वे नहीं बैठे कि कहीं वह गली मातावाली पं० दीनदयाल की चाची और उनकी भतीजी का ज़िक्र न ले बैठे।

क्रिया-कर्म के दिन जब उनकी सास और बड़ी साली शोक प्रकट करने के निमित्त आईं, तो विमला भी उनके साथ थी। तब भी पं० परसराम सामने न आए। क्रिया-कर्म से निबटकर ऊपर अपने कमरे में जा बैठे। जा तो बैठे, पर जैसे वहाँ से उठकर बाहर जाने के लिए उनका मन व्यग्र हो उठा। विमला आई हुई है यह बात वे भूल न सके। रह-रहकर उनका मन उठकर खिड़की में जा बैठने के लिए और नज़र-भर विमला को देख लेने के लिए व्यग्र हो उठता। अपने मन को रोकने का उन्होंने भरसक प्रयत्न किया। उनकी पत्नी का चित्र अब भी वहीं लगा था। उसे देख अपने-आपको उन्होंने कोसा भी; पर इन सब बातों के बावजूद जब उन्होंने सुना कि वे सब जा रही हैं तो वे खिड़की में जा खड़े हुए। तभी जैसे विमला ने उधर देखा और निमिष मात्र के लिए उनका हृदय धक्-धक् करने लगा।

जब वे दूर निकल गईं तो उन्होंने खिड़की लगा ली और जाकर कुर्सी पर बैठ गए। तब फिर प्रतिक्रिया आरम्भ हो गई। पर इस बार वह अधिक देर तक न टिक सकी। और उस आराम कुर्सी पर लेटे आँखें बन्द करके वे कल्पना की सुन्दर, सुरम्य वाटिकाओं की सैर में निमग्न हो गए, जिनमें उनकी मुस्कराहट की स्निग्ध धूप खिलती थी। उसकी सुगन्धित केशराशि के परस से भारी होकर हवा चलती थी और उसके मादक स्वर-संगीत को सुनकर सरिता कल-कल बहती थी। विमला···उन्होंने गुनगुनाया, वे उससे ही विवाह करेंगे।

तभी किसी ने "बित्तो !" कहा और घबराकर आँखें खोल दीं। सामने दीवार पर उनकी स्वर्गीया पत्नी का चित्र टँगा था। उन्हें मालूम हुआ जैसे यह आवाज़ वहीं से आई है। दिल धक्-धक् करने लगा। स्तब्ध बैठे कुछ क्षण वे उस चित्र को देखते रहे। फिर अचानक जैसे कोई दृढ़ निश्चय करके उठे। दरवाज़ा धीरे-से बन्द कर दिया और चिटकनी लगा दी। तब मेज को वे घसीटकर दरवाज़े के पास ले आए, उस पर कुरसी को रखा। चढ़े और चित्र को उतार लिया। कमरे में अँधेरा छा गया था। रोशनदान के शीशे से आनेवाले धीमे प्रकाश में उनकी नज़र दायीं ओर के शीशे में गई और उस वक्त उन्हें अपना प्रतिबिम्ब एक प्रेतात्मा की भाँति दिखाई दिया। तभी बढ़कर उन्होंने एक समाचार-पत्र उठाया, तसवीर को उसमें लपेटा और अन्दर टोकरी में जाकर चार ट्रंकों को उठाकर नीचे के बड़े ट्रंक में रख आए। मेज़ को उसकी जगह घसीट कुर्सी को उसके ऊपर से उठा जिन्होंने दरवाज़ा खोलकर बिजली का बटन दबा दिया। तब उन्होंने समझ लिया, उस आवाज़ का उन्होंने गला घोंट दिया है।

रात को खाना खाते समय उन्होंने माँ से स्वयं ही विवाह की बात चला दी।

माँ का चेहरा खिल गया। गली बालमातावाले पं० दीनदयाल की चाची की बात उन्होने फिर चलाई। कहने लगीं, "बेटा, वे तो आज भी आई थीं। लड़की तो भागवन्ती ऐसे सलीकेवाली, चतुर और बुद्धिमती है कि क्या कहूँ ? न हो तो तू जाकर एक नज़र उसे देख लेना।"

तब परसराम की आँखों में विमला की मूर्ति बैठी थी। सुन्दर, चंचल आँखें लज्जा के आवरण में लिपटी रहने पर भी उन्हें निमन्त्रण दे रही थीं। और माँ कह रही थीं—

"बेटा, क्वारे के तो अढ़ाई पर होते हैं। रिवाज ही ऐसे हैं। लोग एक-दो महीने तक तो आते हैं। फिर कोई बात भी नहीं करता। मैं यह नहीं कहती कि कुँवारा रहेगा, पर अच्छे घर-दर वाले तो पूछकर हार जाएँगे।" अपनी कल्पना में निमग्न परसराम सुनते रहे। जैसे विमला उन्हें बुला रही थी, और उन्हें कह रही थी— "जीजाजी, तुम्हारे लिए ही तो मैं इतनी दूर से आई हूँ, इतनी दूर से, गया से···"

और माँ कह रही थीं—"तुम हाँ कहो तो बेटा, मैं कल ही उसे बुलवा लूं।"

परसराम ने जैसे अपने आप 'हूँ' कहा। माँ ने समझा, उसके पुत्र को समझ आ गई है। और मन उसका फूल उठा। और पुत्र ने समझा कि गया से चलकर आनेवाली उसकी कामिनी विमला ने उसे बुलाया है और वह उससे मिलने ज़रूर जाएगा। लम्बी साँस लेकर वे उठे।

दूसरे दिन जब उनकी माँ घर के काम-काज से निपटकर गली बालमाता की ओर अपनी सहेली से मिलने जा रही थी। परसराम एक अत्यन्त सुन्दर, पर सूफियाना सूट पहनकर अपनी ससुराल की ओर अग्रसर थे।

× × ×

दिसम्बर का महीना था। प्रकाश खिला हुआ। सूरज जो सुबह कंजूस की भाँति अपने धन को आँचल में छिपाए था। अब दोनों हाथों से उसे लुटा रहा था। बड़े दिनों की छुट्टियों में लाहौर में एक विशेष चहल-पहल थी। दुख को जैसे दबा-कर, व्यथा को जैसे भुलाकर और अपनी विपन्नता को जैसे छिपाकर लोग घूम रहे थे ! परसराम को सब ओर नई स्फूर्ति, एक नया जीवन दिखाई दे रहा था। मन उनका जैसे निर्मल आकाश की गहराइयों में उठने वाली चीलों की भाँति पंख फैला-कर उड़ने को हो रहा था। और उनका मस्तिष्क सुख के एक नये साम्राज्य का सृजन कर रहा था—जिसके राजा वे थे और रानी थी अनिंद्य सुन्दरी विमला। तभी उनकी ससुराल आ गई।

उसकी सास आँगन में बैठी सूत अटेर रही थी, वे चुपचाप उसके पास जा बैठे। एक बार उसने अन्यमनस्कता से पूछा—"कहो, अच्छे हो ?" और जब उत्तर में उन्होंने कह दिया—'आपकी कृपा है !" तो वह फिर चुपचाप सूत अटेरने लगी।

पाँच मिनट बीते, दस मिनट बीते, पन्द्रह मिनट बीते। परसराम के लिए यह वातावरण असह्य हो उठा। खिसियाने-से स्वर में उन्होंने पूछा—"तबीयत तो ठीक है ?"

उत्तर में सास ने केवल एक दीर्घ निश्वास छोड़ा।

पं० परसराम का सारा नशा हिरन हो गया। वे बैठे-बैठे क्या करते ? सास के मुँह की ओर ताकते रहे। वे कुछ भी तय न कर सके। हारकर उन्होंने पूछा—

"वे सब किधर हैं ?"

"क्रिया के बाद अपने घर चले गए ?"

कृत्रिम हैरानी के साथ परसराम ने पूछा—"गया ?"

"नहीं-नहीं, अभी गया कैसे जाएँगे ? विमला का विवाह करके ही तब वापस लौटेंगे।"

"तो कहाँ सगाई की ?"—परसराम ने जैसे बेपरवाही के साथ पूछा।

"यहीं शहर में की है। आज ही शकुन देकर आए हैं। तुम तो माने ही नहीं और उनको वापस भी जाना है।"

शहीदी भाव से वे बोले—"मैं कैसे मान सकता, सावित्री की मृत्यु के बाद इतनी जल्दी···"

सास बोली—"मुझसे तो उन्होंने अनुरोध किया था, पर मैंने कह दिया—भाई, उसके दिल पर बड़ी चोट लगी है। वह न मानेगा इतनी जल्दी···"

परसराम ने दिल में जैसे रोते हुए कहा—"अच्छा किया" और प्रणाम करके सास से छुट्टी ली और उठ आए।

घर पहुँचकर खट-खट सीढ़ियाँ चढ़ गए। माँ ऊपर आँगन में बैठी मटरों से दाने निकाल रही थी। उन्हें आते देखकर उसने शिकायत-भरे लहजे में कहा—"बेटा, तुमने बड़ी देर की। गली बालमातावाले पं० दीनदयाल और उनकी चाची···"

गरजकर पं० परसराम ने कहा—"तुम पागल हो गई हो क्या, यदि वह तुम्हारी लड़की होती तो तुम्हें अपने दामाद का इतनी जल्दी शादी कर लेना भाता क्या ?"—और धम-धम पैर रखते वे अन्दर अपने कमरे में जाकर सूट समेत ही बिस्तर पर लेट गए।

मटर की फलियाँ हाथ से गिर गईं और हैरान-सी, भौंचक्की-सी, उनकी माँ उसी शून्य में देखती रह गईं।

१०

अपना घर

होमवती

उमा जब व्यथा और वैधव्य का भार मन पर लादे, चारों पल्ले झाड़कर मैके चली आई तब उसने देखा कि वहाँ भी कुछ नहीं है। अतुल वैभव और विभूति में उसका जन्म और लालन-पालन हुआ था। वह सब आज भी ज्यों का त्यों था, किंतु जैसे उसके लिए उस घर में अवहेलना के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं बचा था। मानो सारा सम्मान, स्नेह और अधिकार माता-पिता के साथ ही चिता पर भस्म हो गया था। भाई उसका कोई था ही नहीं। वह पिता की एकमात्र सन्तान थी, जो आज दुर्भाग्य की मारी इस चचेरे भाई की देहरी पर आश्रय ग्रहण करने को बाध्य हुई थी। उसने तब ऐसा नहीं सोचा था कि इस घर के अन्न का एक-एक दाना भी पोषण के बजाय उसके शोषण का कारण बन जाएगा, अन्यथा वह किसी की मेहनत-मज़दूरी करके अथवा कुछ बच्चों को अ, आ, इ, ई पढ़ाकर भी अपना और उस अभागे बच्चे का पेट भर सकती थी जिसको केवल एक अभिशाप के रूप में कलेजे से चिपकाये, वह जीवित रहने को मजबूर थी।

बच्चा भी न बिलकुल अबोध था और न समझदार ही; यह सातवाँ वर्ष चल रहा था उसे। हर बात में मामा के बच्चों की हिरस करता—गाड़ी में बैठूँगा, मोटर में घूमने जाऊँगा, मैं भी दूध पिऊँगा, सन्तरा मुझे क्यों नहीं दिया, यह जूता पुराना है, मैं नया लूँगा, मुझे भी नये कपड़े पहना दो···। उसकी अनेक फरमाइशें प्रत्येक क्षण उमा का खून चूसती रहतीं। मन ही मन सोचती, कैसे इस कम्बख्त जबान पर ताला डाले ? कैसे इसका दम घोंटकर खुद मर जाय! यही सब सोचते-सोचते उसकी भावुकता सिर धुनने लगती और वह हाथ का काम छोड़कर किसी निराले कोने की खोज में बावली-सी भटकने लगती, जहाँ कि वह दो बूंद आँसू गिराकर मन का भार हल्का कर सके।

उसने ससुराल में रहना पसन्द किया था ? पर रहती किसके पास ? देवर-जेठों ने, उसके पति के बीमे के जो दस-पाँच हज़ार रुपये मिलने थे, उनके बँटवारे के लिए ही मुकदमेबाज़ी शुरू कर दी थी और इसलिए बीमा कम्पनी वालों ने निर्णय होने तक रुपया देने से इन्कार कर दिया था, यद्यपि रुपये का असली वारिस यह सात वर्ष का नीलम ही था। इसी कारण उमा को दिन में ही आकाश के तारे दीखने लगे थे। आखिर उसका भी तो यही सब परिणाम हुआ था। पिता की अतुल धन-राशि में से अकेली सन्तान होने पर भी वह दूध में गिरी मक्खी के समान निकालकर फेंक दी गई थी। केवल सम्मिलित परिवार की दुहाई देने पर ही तो यह चचेरा भाई सब हथिया बैठा, और आज इसी के आश्रय में दो टुकड़ों के लिए उसे बाध्य होकर आना पड़ा।

उसे कहीं नौकरी करने में भी संकोच था। क्या कहकर परिचय देगी वह अपना ? तिस पर उम्र छोटी और रूप की पराकाष्ठा नहीं। भाग्य से बड़े घर में जन्म लिया था और भाग्य ही उसे साधारण स्थिति में ले आया। पर आज वह भी नहीं रहा। पति के सुख में वह सब कुछ भूल गई थी, किन्तु आज वे सारे घाव हरे हो आए, जिन्हें उघाड़ने में भी उसे लाज लगती थी और दबाने में था अपार कष्ट···।

और सहसा जैसे अपने आपसे दूर भागने की चेष्टा में नीलम के मुँह पर ज़ोर का तमाचा लगाकर उमा ने उसे धमकाते हुए कहा, "चल, किताब लेकर आ और जो सबक कल बताया था, उसे सुना !" फिर मन ही मन कुढ़कर उसने उसे गाली दी "मर जाता, तो पाप कटता। उन्हीं के साथ इसे भी चिता पर धर आती, तो पिंड छूटता।" और साथ ही उसकी बड़ी-बड़ी और सुन्दर आँखों से आँसू ढलने लगे। जल्दी से मुँह पोंछकर उमा साग छौंकने बैठ गई; पीछे बैठी मिसरानी आटा गूँधते-गूँधते बोली, "ऐसा मत दुतकारो, बीबी। सिर बदले का है। जी गया तो फिर वे ही दिन आ जाएंगे··· बच्चा है। बच्चों को देखकर दो फूल बगीचे से तोड़ ही लाया तो क्या घट गया ? पर ये बड़े आदमी हैं, कोई क्या कहे। बड़े आदमियों के बच्चे भी ऐसे ही होते हैं। तुरन्त शिकायत भी करने आ गए !" रसोईदारिन की सहानुभूति से उमा को तनिक भी आश्वासन मिला हो, ऐसा नहीं हुआ, बल्कि उसका

हृदय और भी बिंध-सा गया। बड़े आदमी···बड़े आदमियों के बच्चे, और यह मिसरानी, और वह···और नीलम···ओह। और वह तुरन्त चूल्हे से उठकर ऊपर छत पर चली गई, जहाँ धूप में बैठा नीलम पिछले दिन का सबक याद करने की चेष्टा कर रहा था।

× × ×

"सेठ कन्हैयालाल जब मरे, तो अशर्फी बीबी की उम्र बहुत होगी तो तीस साल की होगी, पर उन्होंने उसी दिन से किनारीदार धोती पहननी छोड़ दी और साल-भर तक एक वक्त खाया और वह भी अलूना—हाँ।" कहते हुए उमा की बाल-विधवा भाभी ने, जिनकी उम्र अब चालीस को पार कर गई थी, दो लीची छीलकर मुँह में डाल लीं। उमा ने सिलाई से हाथ रोककर एक बार देखा उनकी चौड़े पाड़वाली हरे रंग की किनारीदार चिट्टी धोती और आसमानी रंग की छींट के ब्लाउज़ को। पल-भर में उसने अपने उन बड़े ज़मींदार विधुर भैया की बात भी सोच डाली जिन्होंने इन्हें समस्त अधिकार दे रखा है कि चाहे जिसको कुछ भी कह डालें। फिर उसने निश्चय किया, कल सब धोतियों की किनारी फाड़कर चारों ओर मशीन घुमा डालेगी वहाँ। उस दिन उसने शाम को खाना नहीं खाया और न किसी ने इसका कारण ही उससे पूछा।

अगले दिन से नीलम का स्कूल भी सुबह का हो गया। उमा ने बहुत सवेरे उठकर नित्य की भाँति सब बच्चों को नाश्ता और दूध देकर थोड़ा दूध नीलम के सामने भी रख दिया। सोचा, छोटा बच्चा बारह बजे तक भूखा कैसे रहेगा? नीलम अपना बस्ता ठीक करने चला गया। चौकी पर दूध रखा था। उसी चौकी पर आँगन में बैठे अन्य बच्चे भी खा पी रहे थे, किन्तु दुर्भाग्य से एक कौआ आया और अभागे नीलम का दूध एक ही चोंच मारकर लुढ़का गया। बच्चों ने शोर मचाया। गृहिणी ने भौंहें तरेर कर कहा, "और क्या, पीने को भी चाहिए, बिखेरने को भी। किस घर से आएगा ऐसा? भैंस-गाय घर में पाल रखी हैं, तो क्या इसी-लिए कि पानी की तरह दूध बहाया जाए?"

उमा और नीलम स्तब्ध और अपराधी के समान ठगे से खड़े ही रह गए। न माँ को दुबारा दूध देने की हिम्मत हुई और न बालक को माँगने की ही। उसने

इतना ही कहा, "मैं दूध नहीं पीऊँगा, अम्मा" और बगल में बस्ता दबाकर बाहर चला गया।

उस दिन रात-भर पानी बरसता रहा और सुबह भी नहीं थमा। सब बच्चे स्कूल जाने के लिए तैयार होकर गाड़ी में जा बैठे। नीलम भी बस्ता लटकाए पास आकर खड़ा हो गया। तभी ज़मींदार बाबू के बड़े लड़के ने कड़ककर कहा, "गाड़ी में जगह नहीं है। जाना है तो पैदल ही जाओ।"

"भीग जाऊँगा, भैया।" कहकर नीलम ज्योंही गाड़ी की ओर बढ़ा, वह चल दी। धीरे-धीरे नीलम पानी में भीगता हुआ ही चला।

दोपहर को जब नीलम स्कूल से लौटा, तो उसे तेज़ बुखार चढ़ा हुआ था। कपड़े, किताबें और कापियाँ सब पानी में भीगे थे। उमा ने भीगने का कारण पूछा तो नीलम रो पड़ा, "अम्माँ अब यहाँ नहीं रहेंगे। घर चलो, बाबूजी के पास।"

बच्चे की बातों से उमा की छाती फटने लगी। "घर···घर अब कहीं नहीं है···बाबूजी···वे भी अब नहीं लौटेंगे। कहाँ लेकर चलूँ तुझे? तू जल्दी से पढ़-लिखकर बड़ा हो जा, बस, तब···हाँ, तभी कहीं···घर होगा हमारा।" और सोचते-सोचते भविष्य का चित्र उसकी आँखों के सामने बनने लगा—नीलम, उसकी बहू, उसके बच्चे और नौकर-चाकर, गाय-भैंस, दूध-दही···और···और अपना घर। ये सब उसकी कल्पना में चलचित्रों के समान आने-जाने लगे। इन्होंने आकर मानो उसकी वेदना को सहला दिया। किसी क्षीण से आशा-तन्तु ने उमा को मानो एक-दूसरे ही लोक में पहुँचा दिया। वह इस समय जैसे बाईस वर्ष की युवती नहीं, बल्कि पचास वर्ष की वृद्धा है—भरी-पूरी गृहस्थी की स्वामिनी। और स्नेह के प्रबल प्रवाह में उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। तभी नीलम ने कहा, "अम्माँ, जाड़ा लग रहा है।"

सहसा स्वप्न भंग हो गया। प्रकृतिस्थ होकर उसने बालक का सारा बदन तौलिए से पोंछ डाला और कपड़े बदलकर बिस्तर पर लिटा दिया। स्वयं भी पट्टी पर माथा टेककर बैठ गई, किन्तु पल-भर में ही वह सचेत होकर उठ खड़ी हुई—ज़मींदार भैया की खड़ाउओं का शब्द सुनकर। थालियाँ तो उसे ही लगानी थीं, अभी चटनी भी नहीं पिसी थी, न रायता ही बना सकी थी वह। उसका हृदय

भय और संकोच के भार से बैठा-सा जा रहा था। नीलम ने कहा, "अम्मा, मुझे छाता मँगा देना। मैं उनकी गाड़ी में नहीं बैठूँगा।" और वह "अच्छा" कहती हुई रसोईघर की ओर चली गई।

उमा ने अपनी चाँदी की सुरमेदानी और शीशा बड़े दीवानजी को थमाते हुए कहा, "किसीको पता न हो, मुंशीजी, इसे बेचकर एक छोटा-सा छाता, एक जोड़ी जूता और दो-चार कमीज़-पाजामों का कपड़ा लाकर इस कमरे में डाल देना, मैं उठा लूँगी।"

मुंशीजी ने दोनों चीज़ों को हाथ में तौलते हुए कहा, "देखो, कितने का माल निकले।"

उमा ने मन ही मन हिसाब लगाया। पूरे बीस तोले की ये चीज़ें उसकी माँ ने शादी में देने के लिए खरीदी थीं। कम-से-कम बीस रुपये तो मिलेंगे ही। चाँदी का भाव तो बहुत तेज़ सुनते हैं। फिर मुंशीजी से कहा, "छाता कितने तक में आ जाएगा, मुंशीजी ? जूता न सही चप्पल ही ला देना।"

मुंशीजी ने गम्भीर मुद्रा से उत्तर दिया, "इस समय सभी चीज़ें चौगुने दामों में मिल रही हैं, बीबी। मुझे क्या इसमें से कुछ खाना थोड़े ही है।"

और तब उमा बिना कुछ कहे घर में लौट आई, ठीक पाले की मारी लता के समान। उसे देखते ही भावज ने व्यंग्य कसते हुए कहा, "बाहर क्या करने गई थीं ?"

"नीलम के लिए छाता मँगाना था और उसका जूता भी टूट गया है बिलकुल।" कहकर उमा साग काटने बैठ गई।

"हूँ" कहकर हरनन्दी ने एक तीव्र दृष्टि ननद पर डाली, उसे अभी सन्तोष नहीं हुआ था। वह बातों का सिलसिला इतना संक्षेप में समाप्त कर देने की आदी नहीं थी। बोली, "वे कहते थे कि नीलम अब सयाना हो गया है। अन्दर ज़नानखाने में सोने की क्या ज़रूरत है। बाहर सोना चाहिए, और बच्चे भी तो बाहर सोते ही हैं।"

उमा जैसे आकाश से गिर पड़ी, नीलम तो अभी पूरे सात वर्ष का हुआ है। वह बाहर···बाहर सोएगा! घर के सभी लड़कों में छोटा है वह। कभी मुझसे

दूर नहीं सोया। पर कहती भी क्या। चुपचाप सिर झुकाए सुनती रही। गृहिणी को ऐसा लगा, मानो उनकी बात की उपेक्षा की गई है। उनकी बात का कोई उत्तर न देने का साहस इस घर के किसी भी व्यक्ति में नहीं था। आतंक का तीव्र बाण छोड़ती हुई वह अपने कमरे में चली गई। उमा जैसी की तैसी बैठी रही। बिलकुल निश्चल भाव से वह भाजी काटने में व्यस्त थी।

उसी दिन शाम को उसकी व्यथा और आश्चर्य की सीमा न रही, जब उसने देखा कि बाहर का नौकर नीलम का बिस्तर ले जाने आया है। एक बार साहस करके उमा ने पूछा, "किसने कहा कालीचरन तुमसे नीलम का बिस्तर ले जाने को?"

उत्तर मिला, "बड़े बाबू ने।"

और उमा हाथ मलकर रह गई। आगे वह क्या कहती? किन्तु उस दिन रात-भर न उसे नींद आई और न नीलम को। सवेरे आकर अम्माँ की छाती में मुँह छिपाकर वह रो पड़ा, "अम्माँ, मेरा तो मन नहीं लगता यहाँ। अब चलो यहाँ से···" और उस दिन से उसे इतना तेज़ बुखार चढ़ा कि सारा दिन बेहोश पड़ा रहा। अगले दिन डाक्टर को दिखाना तय हुआ। डाक्टर ने बताया कि नीलम को टायफायड है। उसे सबसे अलग रखना चाहिए। बड़ी छूत की बीमारी है यह।

घंटे और दिन, दिन और सप्ताह होते-होते पूरे दो मास बीत गए, पर नीलम का ज्वर कम नहीं हुआ, कभी कुछ कम होता भी, तो दूसरे क्षण चौगुना बढ़ जाता। वह अब हड्डियों का ढाँचा मात्र रह गया था। आँखें गढ़े में धँस गईं और हाथ-पैर सूखकर काँटा हो गए। न कभी कुछ कहता है न सुनता है। बोलता है तो अंट-संट बकता है। सब देखते हैं, और एक-दूसरे की ओर भयानक संकेत करके चले जाते हैं। डाक्टर आते हैं और उमा की ओर एक ठंडी साँस फेंककर चले जाते हैं। वह अधमरी-सी पाषाण प्रतिमा के समान बैठी रहती है; न जाने, क्या सोचती रहती है। न खाती है, न पीती है; मानो दया और करुणा की साक्षात् मूर्ति ही है वह।

"नीलू···अरे बोल भैया। दो महीने से ज़्यादा हो गए, तेरी बोली सुने··· नीलम, एक बार तो आँखें तो खोल, मुन्ना! तू कहाँ जाने की तैयारी कर रहा है, बेटा? अकेले मत जाना, नीलू! मन नहीं लगेगा—न तेरा और न मेरा।" कहते-

कहते उमा ने पलंग की पाटी पर अपना सिर दे मारा। उसकी आँखों के आगे अँधेरा-सा छा गया। आँसू भी न जाने कैसे सूख गए, नहीं तो रोकर ही मन कुछ हलका हो जाता।

ठीक दोपहरी का समय था। माँ के हृदय में भट्ठी-सी जल रही थी। वह न जाने कब से प्रलाप कर रही थी। तभी धीरे-धीरे उसके कमरे में गृहस्वामी ने प्रवेश किया। उमा की एक-एक बात उनके कलेजे को आज अचानक ही काटे डाल रही थी। उन्हें ऐसा लगा, मानो इसका कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है—जैसे वे ही इस अभागी युवती की बरबादी का कारण हैं। उन्होंने आज उसे पथ की भिखारिन बना डाला है। उसकी कुन्दन-सी काया मिट्टी में मिल रही है। उन्हें याद आया वह दिन, जब उसे सजा-सँवारकर, डोले में बैठाकर उन्होंने भाई का हक पूरा किया था। कितने लाड़-प्यार से पाला था उमा को उसके माँ-बाप ने। ज़मींदार बाबू को ऐसा लगा मानो उसके माता-पिता प्रेत बनकर उन्हें घूर रहे हैं। उनका दिल बैठने लगा। तभी उमा ने धीरे-धीरे पाटी से सिर उठाकर फिर नीलम की ओर देखा।

जगदीश बाबू ने साहस करके दो पग और बढ़ाए और ठीक उमा के पीछे खड़े होकर बोले, "तुम मुकदमा जीत गईं उमा! अभी तार आया है। रुपया जल्दी ही मिल जाएगा।"

पर उमा को कुछ नहीं सूझ रहा था। उसने बड़ी आकुलता से बड़े भाई के पैरों पर अपना सिर रखते हुए कहा, "नीलम को बचा लो, भैया। यह मुझे छोड़-कर चुपचाप चला जा रहा है। अब तो आँख भी नहीं खोलता। इसके प्राण स्वतन्त्र होना चाहते हैं, भैया! यह अब बन्धन पसन्द नहीं करता। मुझे कोई ऐसा कोना ढूँढ़ दो, जिसे नीलम अपना घर समझ सके, जहाँ इसका अपमान न हो, जहाँ इसे कोई मुझसे अलग न कर सके। और···यदि मरना ही है, तो···यह शान्ति से तो मर सके।"

कहते-कहते उमा की आँखों से अविरल अश्रुधारा वह चली। उसे ऐसा लगा मानो युगों के बाद आज उसे थोड़ा सहारा मिला है। आज उसकी कोई सुन रहा है। आज उसके बन्धन ढीले पड़ रहे हैं। आज उसके मुँह से दो शब्द निकल सके

हैं। जगदीश बाबू ने उमा को उठाते हुए कहा, "बस करो, उमा ! जो तुम चाहोगी वह होगा। नीलू अच्छा हो जाएगा। मैं अभी दूसरे डाक्टर को बुलाता हूँ।"

वे बाहर चले गए। पत्थर अचानक ही करुणा की तीव्र ज्वाला में पसीज गया। उमा ने आँसू पोंछकर नीलम के सिर पर हाथ फेरा और फिर दोनों हाथ जोड़कर किसी अज्ञात शक्ति को नमस्कार किया। नीलम ने आँखें मूँदे ही मूँदे अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा, "अ···म्मा···पा···नी···।"

उमा के कानों में जैसे सहसा अमृत बरस पड़ा। जैसे आज आकाश का चाँद उसकी मुट्ठी में आ गया। उसने चम्मच भर पानी बालक के मुँह में डालते हुए कहा, "जल्दी अच्छे हो जाओ भैया ! फिर अपने घर चलेंगे।"

११

राजपूतानी का प्रायश्चित्त

सुदर्शन

(१)

कुँवर वीरमदेव कलानौर के राजा हरदेवसिंह के पुत्र थे, तलवार के धनी और पूरे रणवीर। प्रजा उनपर प्राण देती थी, और पिता देख-देखकर फूला न समाता था। वीरमदेव ज्यों-ज्यों प्रजा की दृष्टि में सर्वप्रिय होते जाते थे, उनके सद्गुण बढ़ते जाते थे। प्रातःकाल उठकर स्नान करना, निर्धनों को दान देना, यह उनका नित्यकर्म था, जिसमें कभी चूक नहीं होती थी। वे मुस्कराकर बातें करते थे, और चलते-चलते बाट में कोई स्त्री मिल जाती, तो नेत्र नीचे करके चले जाते। उनका विवाह नरपुर के राजा की पुत्री राजवती से हुआ था। राजवती केवल देखने में ही रूपवती न थी, वरन् शील और गुणों में भी अनुपम थी। जिस प्रकार वीरमदेव पर पुरुष मुग्ध थे, उसी प्रकार राजवती पर स्त्रियाँ लट्टू थीं। कलानौर की प्रजा उनको 'चन्द्र-सूर्य की जोड़ी' कहा करती थी।

वर्षा के दिन थे, भूमि के चप्पे-चप्पे पर से सुन्दरता निछावर हो रही थी। वृक्ष हरे-भरे थे, नदी-नाले उमड़े हुए थे। वीरमदेव सफलगढ़ पर विजय प्राप्त करके प्रफुल्लित मन से वापस आ रहे थे। सम्राट् अलाउद्दीन ने उनके स्वागत के लिए बड़े समारोह से तैयारियाँ की थीं। नगर के बाजार सजे हुए थे। छज्जों पर स्त्रियाँ थीं। दरबार के अमीर अगवानी को उपस्थित थे। वीरमदेव उत्फुल्ल बदन से सलामें लेते और दरबारियों से हाथ मिलाते हुए दरबार में पहुँचे। उनका तेजस्वी मुखमण्डल और विजयी चाल-ढाल देखकर अलाउद्दीन का हृदय दहल गया, परन्तु वह प्रकट में हँसकर बोला—"वीरमदेम! तुम्हारी वीरता ने हमारे मन में घर कर लिया है। इस विजय पर तुमको बधाई है।"

वीरमदेव को इससे प्रसन्नता नहीं हुई। हन्त! यह बात किसी सजातीय के

मुख से निकलती ! वह बधाई किसी राजपूत की ओर से होती, तो कैसा आनन्द होता ! विचार आया, मैंने क्या किया ? वीरता से विजय प्राप्त की, परन्तु दूसरे के लिए। युद्ध में विजयी, परन्तु सिर झुकाने के लिए। इस विचार से मन में ग्लानि उत्पन्न हुई। परन्तु आँख ऊँची की तो दरबारी उनकी ओर ईर्ष्या से देख रहे थे। और आदर-पुरस्कार पाँवों में बिछ रहा था। वीरमदेव ने सिर झुकाकर उत्तर दिया—'हुजूर का अनुग्रह है, मैं तो एक निर्बल व्यक्ति हूँ।'

बादशाह ने कहा, 'नहीं तुमने वास्तव में वीरता का काम किया है। हम तुम्हें जागीर देना चाहते हैं।'

वीरमदेव ने कहा, 'मेरी एक प्रार्थना है।'

'कहो।'

'कैदियों में एक नवयुवक राजपूत जीतसिंह है, जो पठानों की ओर से हमारे साथ लड़ा था। वह है तो शत्रु, परन्तु अत्यन्त वीर है। मैं उसे अपने पास रखना चाहता हूँ।'

अलाउद्दीन ने मुस्कराकर उत्तर दिया—'मामूली बात है, वह कैदी हमने तुम्हें बख्शा।'

(२)

दो वर्ष के पश्चात् वीरमदेव कलानौर को वापस लौटे, तो मन उमंगों से भरा हुआ था। राजवती की भेंट के हर्ष में पिछले दुःख सब भूल गए। तेज़ चलने वाले पक्षी की नाईं उमंगों के आकाश में उड़े चले जाते थे। मातृभूमि के पुनर्दर्शन होंगे। जिस मिट्टी से शरीर बना है, वह फिर आँखों के सम्मुख होगी। मित्र-बन्धु स्वागत करेंगे, बधाइयाँ देंगे। उनके शब्द जिह्वा से नहीं, हृदय से न निकलेंगे। पिता प्रसन्न होंगे, स्त्री द्वार पर खड़ी होगी।

ज्यों-ज्यों कलानौर निकट आ रहा था, हृदय की आग भड़क रही थी। स्वदेश का प्रेम हृदय पर जादू का प्रभाव डाल रहा था। मानो पाँवों को मिट्टी की ज़ंजीर खींच रही थी। एक पड़ाव शेष था कि वीरमदेव ने जीतसिंह से हँसकर कहा, 'आज हमारी स्त्री बहुत व्याकुल हो रही होगी।

जीतसिंह ने सुना, तो चौंक पड़ा और आश्चर्य से बोला—'आप विवाहित

हैं क्या ?'

वीरमदेव ने बेपरवाही से उत्तर दिया, 'हाँ, मेरे विवाह को पाँच वर्ष हो गए।'

जीतसिंह का चेहरा लाल हो गया। कुछ क्षणों तक वह चुप रहा, परन्तु फिर न सह सका, क्रोध से चिल्लाकर बोला—'बड़े हृदयशून्य हो, तुम्हें ऐसा न समझता था।'

वीरमदेव कल्पना के जगत् में सुख के महल बना रहे थे। यह सुनकर उनका स्वप्न टूट गया। घबराकर बोले—'जीतसिंह, यह क्या कहते हो ?'

जीतसिंह अकड़कर खड़ा हो गया और तनकर बोला—'समरभूमि में तुमने पराजय दी है परन्तु वचन निबाहने में तुम मुझसे बहुत पीछे हो।'

'बाल्यावस्था में मेरी तुम्हारी प्रतिज्ञा हुई थी। वह प्रतिज्ञा मेरे हृदय में वैसी-की-वैसी बनी हुई है, परन्तु तुमने अपने पतित हृदय की तृप्ति के लिए नया बाग और नया पुष्प चुन लिया है। अब से पहले मैं समझता था कि मैं तुमसे पराजित हुआ, परन्तु अब मेरा सिर ऊँचा है। क्योंकि तुम मुझसे कई गुना अधिक नीचे हो। पराजय लज्जा है, परन्तु प्रेम की प्रतिज्ञा को पूरा न करना पतन का कारण है।'

वीरमदेव यह वक्तृता सुनकर सन्नाटे में आ गए और आश्चर्य से बोले, 'तुम कौन हो ? मैंने तुमको अभी तक नहीं पहचाना।'

'मैं······मैं सुलक्षणा हूँ।'

वीरमदेव के नेत्रों से पर्दा हट गया, और उनको वह अतीत काल स्मरण हुआ, जब वे दिन-रात सुलक्षणा के साथ खेलते रहा करते थे। इकट्ठे फल चुनते, इकट्ठे मन्दिर में जाते और इकट्ठे पूजा करते थे, चन्द्रदेव की शुभ ज्योत्स्ना में वे एक स्वर से मधुर गीत गाया करते थे और प्रेम की प्रतिज्ञाएँ किया करते थे। परन्तु अब वे दिन बीत चुके थे, सुलक्षणा और वीरमदेव के मध्य में एक विशाल नदी का पाट था।

सुलक्षणा ने कहा, 'वीरमदेव! प्रेम के पश्चात दूसरा दर्जा प्रतिकार का है। तुम प्रेम का अमृत पी चुके हो, अब प्रतिकार के विषपान के लिए अपने होंठों को तैयार करो।'

वीरमदेव उत्तर में कुछ कहना चाहते थे कि सुलक्षणा क्रोध से होंठ चबाती हुई खेमे से बाहर निकल गई, और वीरमदेव चुपचाप बैठे रह गए।

दूसरे दिन कलानौर के दुर्ग से घनगर्ज शब्द ने नगरवासियों को सूचना दी, वीरमदेव आते हैं। स्वागत के लिए तैयारियाँ करो।

हरदेवसिंह ने पुत्र का मस्तक चूमा। राजवती आरती का थाल लेकर द्वार पर आई कि वीरमदेव ने धीरता से झूमते हुए दरवाज़े में प्रवेश किया। परन्तु अभी आरती न उतारने पाई थी कि एक बिल्ली टाँगों के नीचे से निकल गई, और थाल भूमि पर आ रहा। राजवती का हृदय धड़क गया और वीरमदेव को पूर्व घटना याद आ गई।

(३)

अभी सफलगढ़ की विजय पुरानी न हुई थी, अभी वीरमदेव की वीरता की साख लोगों को भूलने न पाई थी कि कलानौर को अलाउद्दीन के सिपाहियों ने घेर लिया। लोग चकित थे, परन्तु वीरमदेव जानते थे कि यह आग सुलक्षणा की लगाई हुई है।

कलानौर यद्यपि साधारण दुर्ग था, परन्तु इससे वीरमदेव ने मन नहीं हार दिया। सफलगढ़ की नूतन विजय से उनके साहस बढ़े हुए थे। अलाउद्दीन पर उनको असीम क्रोध था। मैंने उसकी कितनी सेवा की, इतनी दूर की कठिन यात्रा करके पठानों से दुर्ग छीनकर दिया, अपने प्राणों के समान प्यारे राजपूतों का रक्त पानी की तरह बहा दिया और उसके बदले में, जागीरों के स्थान में, यह अपमान प्राप्त हुआ है।

परन्तु राजवती को सफलगढ़ की विजय और वीरमदेव के आगमन से इतनी प्रसन्नता न हुई थी, जितनी आज हुई। आज उसके नेत्रों में आनन्द की झलक थी और चेहरे पर अभिमान तथा गौरव का रंग। वीरमदेव भूले हुए थे, अलाउद्दीन ने उन्हें शिक्षा देनी चाही है। पराधीनता की विजय से स्वाधीनता की पराजय सहस्र गुना अच्छी है। पहले उसे ग्लानियुक्त प्रसन्नता थी—अब हर्षयुक्त भय। पहले उनका मन रोता था, परन्तु आँखें छिपाती थीं। आज उसका हृदय हँसता था और आँखें मुस्कराती थीं। वह इठलाती हुई पति के सम्मुख गई और बोली—

'क्या संकल्प है ?'

वीरमदेव जोश और क्रोध से दीवाने हो रहे थे, झल्लाकर बोले—'मैं अलाउद्दीन के दाँत खट्टे कर दूँगा।'

राजवती ने कहा—'जीवननाथ ! आज मेरे उजड़े हुए हृदय में आनन्द-नदी उमड़ी हुई है !'

'क्यों ?'

क्योंकि आज आप स्वाधीन राजपूतों की नाईं बोल रहे हैं। आज आप वे नहीं हैं, जो पन्द्रह दिन पहले थे। उस समय और आज में महान् अन्तर हो गया है। उस दिन आप पराधीन वेतन-ग्राही थे, आज एक स्वाधीन सिपाही हैं। उस दिन आप शाही प्रसन्नता के अभिलाषी थे, आज उसके समान स्वाधीन हैं। उस दिन आपको सुख-सम्पत्ति की आकांक्षा थी, आज आन की धुन है। उस समय आप नीचे जा रहे थे, आज आप ऊपर उठ रहे हैं।'

राजवती के ये गौरवभरे शब्द सुनकर वीरमदेव उछल पड़े, और राजवती को गले लगाकर बोले—'राजवती ! तुमने मेरे मन में बिजली भर दी है। तुम्हारे ये शब्द रण-क्षेत्र में मेरे मन को उत्साह दिलाते हुए मुझे लड़ाएँगे। दुर्ग तुम्हारे अर्पण है।'

दुन्दुभी पर चोट पड़ी, राजपूतों के दिल खिल गए। माताओं ने पुत्रों को हँसते हुए बिदा किया। बहनों ने भाइयों को तलवारें बाँधीं। स्त्रियाँ स्वामियों से हँस-हँसकर गले मिलीं, परन्तु मन में उद्विग्नता भरी हुई थी ! कौन जाने, फिर मिलाप हो या न हो।

दुर्ग के कुछ अन्तर पर नदी बहती थी। राजपूत उसके तट पर डट गए। सेनापति की सम्मति थी कि हमको नदी के इस पार रहकर शाही सेना को पार होने से रोकना चाहिए, परन्तु वीरमदेव जोश में पागल हो रहे थे, उन्होंने कहा, 'हम नदी के उस पार शाही सेना से युद्ध करेंगे और सिद्ध कर देंगे कि राजपूतों का बाहुबल शाही सेना की शक्ति से कहीं अधिक है।'

राजपूतों ने महादेव की जय के जयकारे बुलाते हुए नदी को पार किया, और वे शाही सेना से जुट गए।

राजपूत शाही सेना की अपेक्षा थोड़े थे, परन्तु उनके साहस बढ़े हुए थे, और राजपूत बराबर आगे बढ़ रहे थे। ऐसा प्रतीत होता था, मानो शाही सेना पर राजपूतों की निर्भीकता और वीरता ने जादू कर दिया है। परन्तु यह अवस्था अधिक समय तक स्थिर न रही। शाही सेना राजपूतों की अपेक्षा कई गुना अधिक थी, इसलिए संध्या होते-होते पासा पलट गया। राजपूतों को नदी के इस पार आना पड़ा।

इससे वीरमदेव को बहुत आघात पहुँचा। उन्होंने रात को एक ओजस्विनी वक्तृता दी, और राजपूतों के पूर्वजों के साखे सुना-सुनाकर उनको उत्तेजित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि राजपूतों ने क्रुद्ध सिंहों के समान तैरकर दूसरे दिन नदी पार करने की प्रतिज्ञा की, परन्तु मनुष्य कुछ सोचता है, परमात्मा की कुछ और इच्छा होती है। इधर यह विचार हो रहे थे, उधर मुसलमान भी सोये न थे। उन्होंने कलमा पढ़कर कसमें खाईं कि मरते-मरते मर जाएँगे, परन्तु पीठ न दिखाएँगे। मुट्ठी-भर राजपूतों से हारना सख्त कायरता है। लोग क्या कहेंगे? यह 'लोग कहेंगे' का भय लोगों से बहुत कुछ करवा देता है।

(४)

प्रातःकाल हुआ तो लड़ाके वीर फिर आमने-सामने हुए और लोहे से लोहा बजने लगा। वीरमदेव की तलवार गजब ढा रही थी। वे जिधर झुकते थे, परे के परे साफ कर देते थे। उनकी रणदक्षता से राजपूत सेना प्रसन्न हो रही थी, परन्तु मुसलमानों के हृदय बैठे जाते थे। यह मनुष्य है या देव; जो न मृत्यु से भय खाता है, न घावों से भय खाता है, न घावों से पीड़ित होता है। जिधर झुकता है, विजय-लक्ष्मी फूलों की वर्षा करती है। जिधर जाता है, सफलता साथ जाती है। इससे युद्ध करना लोहे के चने चबाना है। शाही सेना नदी के दूसरे पार चली गई।

वीरमदेव ने राजपूतों के बढ़े हुए साहस देखे, तो गद्गद हो गए, सिपाहियों से कहा, 'मेरे पीछे-पीछे आ जाओ, और आप घोड़ा नदी में डाल दिया, इस साहस और वीरता पर मुसलमान आश्चर्यचकित हो रहे; परन्तु अभी उनका विस्मय कम न हुआ था कि राजपूत किनारे पर आ गए, और तुमुल संग्राम आरम्भ हो गया। मुसलमान सेना लड़ती थी रोटी के लिए, उसके पैर उखड़ गए। राजपूत

लड़ते थे मातृभूमि के लिए, विजयी हुए। शाही सेना में भगदड़ मच गई, सिपाही समर-भूमि छोड़ने लगे। वीरमदेव के सिपाहियों ने पीछा करना चाहा, परन्तु वीरमदेव ने रोक दिया। भागते शत्रु पर आक्रमण करना वीरता नहीं, पाप है। और जो यह नीच कर्म करेगा, मैं उसका मुँह देखना पसन्द न करूँगा।'

विजयी सेना कलानौर में प्रविष्ट हुई। स्त्रियों ने उन पर पुष्प बरसाये, लोगों ने रात को दीपमाला की। राजवती ने मुस्कराती हुई आँखों से वीरमदेव का स्वागत किया और उनके कंठ में विजयमाला डाली। वीरमदेव ने राजवती को गले लगा लिया और कहा—'मुझे तुझ पर मान है, तू राजपूतानियों में सिरमौर है।'

(५)

इस पराजय ने अलाउद्दीन के हृदय की भड़कती हुई अग्नि पर तेल का काम किया। उसने चारों ओर से सेना एकत्रित की और चालीस हज़ार मनुष्यों से कालानौर को घेर लिया। वीरमदेव अब मैदान में निकलकर लड़ना नीति-विरुद्ध समझ दुर्ग में दुबक रहे।

दुर्ग बहुत दृढ़ और ऊँचा था। उसमें प्रवेश करना असम्भव था। शाही सेना ने पड़ाव डाल दिया और वह रसद के समाप्त होने की प्रतीक्षा करने लगी। सात मास व्यतीत हो गए, शाही सेना निरन्तर डेरा डाले पड़ी रही। दुर्ग में रसद घटने लगी। वीरमदेव ने राजवती से कहा—'प्रिये ! अब क्या होगा ?'

राजवती बोली—'आपका क्या विचार है ?'

वीरमदेव ने उत्तर दिया—'शाही सेना बहुत अधिक है। इससे छुटकारा पाना असम्भव है। परन्तु यह सब युद्ध मेरे लिए है, गेहूँ के साथ घुन भी पिसेंने, यह क्यों ?'

राजवती ने आश्चर्य से सिर ऊपर किया, और कहा—'यह क्या जीवननाथ ! क्या शाही सेना आपको पाकर दुर्ग की ईंट से ईंट न बजा देगी ?'

वीरमदेव ने ठंडी साँस भरी और कहा—'नहीं, अलाउद्दीन कलानौर नहीं, वरन् मुझे चाहता है।'

'और यदि वह आपको प्राप्त कर ले, तो दुर्ग पर अधिकार न जमाएगा ?'

"यह नहीं कहा जा सकता। हाँ, यदि मैं अपने आपको शाही सेना के अर्पण कर दूँ, तो सम्भव है, सेना हटा ली जाय।'

राजवती ने मन-ही-मन सोचा, यदि कलानौर को भय नहीं, तो हमारे लिए इतना रक्त बहाने की क्या आवश्यकता है ?

वीरमदेव ने कहा—'प्रिये ! तुम राजपूत की स्त्री हो ?'

'हाँ।'

'राजपूत मरने-मारने को उद्यत रहते हैं ?'

'हाँ।'

'जाति पर प्राण निछावर कर सकते हैं ?'

'हाँ।'

'मैं तुम्हारी वीरता की परीक्षा करना चाहता हूँ।'

राजवती ने सन्देह भरी दृष्टि से पति की ओर देखा और धीमे से कहा—'मैं उद्यत हूँ।'

वीरमदेव ने कुछ देर सोचकर कहा—'इस युद्ध को समाप्त करना तुम्हारे वश में है।'

राजवती समझ न सकी कि इसका क्या अभिप्राय है; चकित-सी होकर बोली—'किस तरह ?'

'तुम्हें अपनी सबसे अधिक प्रिय वस्तु बलिदान करनी होगी।'

'वह क्या ?'

'मुझे गिरफ्तार करा दो, निर्दोष बच जाएँगे।'

राजवती का कलेजा हिल गया। रोकर बोली—'प्राणनाथ ! मेरा मन कैसे मानेगा ?'

'राजपूत की आन निभाओ।'

राजवती ने कहा—'आपकी इच्छा सिर आँखों पर, परन्तु यह बोझ असह्य है।'

वीरमदेव ने प्रसन्न होकर राजवती को गले लगा लिया और मुँह चूमकर वे बाहर चले गए। राजवती भूमि पर लेटकर रोने लगी।

दो घण्टे के पश्चात् दुर्ग में एक तीर गिरा, जिसके साथ कागज़ लिपटा हुआ था। हरदेवसिंह ने खोलकर देखा। लिखा था—हम सिवाय वीरमदेव के कुछ नहीं चाहते। उसे पाकर तत्काल घेरा हटा लेंगे।

यह पढ़कर हरदेवसिंह का हृदय सूख गया। वीरमदेव को बुलाकर बोले—'क्या तुमने मुसलमान सेना को कोई सन्देश भेजा था ?'

'हाँ, क्या उत्तर आया है ?'

हरदेवसिंह ने कागज़ वीरमदेव को दिया और फूट-फूटकर रोने लगे। रोते-रोते बोले, 'बेटा ! यह क्या ? तुमने यह क्या संकल्प किया है ? अपने को गिरफ्तार करा दोगे ?'

वीरमदेव ने उत्तर दिया, 'पिताजी ! यह सब कुछ केवल मेरे लिए है ! यदि आन का प्रश्न होता, दुर्ग की संरक्षा का प्रश्न होता, तो बच्चा-बच्चा न्योछावर हो जाता, मुझे आशंका न थी। परन्तु अब कैसे चुप रहूँ, यह सब रक्तपात केवल मेरे लिए है। यह नहीं सहा जाता।'

उस रात्रि के अन्धकार में दुर्ग का फाटक खुला और वीरमदेव ने अपने आपको मुसलमान सेनापति के अर्पण कर दिया। प्रातःकाल सेना ने दुर्ग का घिराव हटा लिया।

(६)

स्त्री का हृदय भी विचित्र वस्तु है। वह आज प्यार करती है, कल दुत्कार देती है। प्यार के खातिर स्त्री सब कुछ करने को तैयार हो जाती है, परन्तु प्रतिकार के लिए उससे भी अधिक भयानक कर्म कर बैठते हैं।

सुलक्षणा असामान्य स्त्री थी। उसके हृदय में बाल्यावस्था से वीरमदेव की मूर्ति विराज रही थी। उसे प्राप्त करने के लिए वह पुरुष के वेश में पठानों के साथ मिलकर वीरमदेव की सेना से लड़ी और इस वीरता से लड़ी कि वीरमदेव उस पर मुग्ध हो गए। परन्तु जब उसे पता लगा कि मेरा स्वप्न भंग हो गया है, तो उसने क्रोध के वशीभूत भयंकर कर्म करने का निश्चय कर लिया। अनेक यत्नों के पश्चात् वह अलाउद्दीन के पास गई। अलाउद्दीन पर जादू हो गया। सुलक्षणा अतीव सुन्दरी थी। अलाउद्दीन विलासी मनुष्य था, प्रेमकटारी चल गई। सुलक्षणा

ने जब देखा कि अलाउद्दीन बस में है, तो उसने प्रस्ताव किया कि यदि आप वीरमदेव का सिर मुझे मँगवा दें, तो मैं आपको और आपके दीन को स्वीकार करूँगी। अलाउद्दीन ने इसे स्वीकार किया। इस अन्तर में सुलक्षणा के निवास के लिए पृथक् महल खाली कर दिया गया।

आठ मास के पश्चात् सुलक्षणा के पास सन्देश पहुँचा कि कल प्रातःकाल वीरमदेव का सिर उसके पास पहुँच जायगा। सुलक्षणा ने शान्ति का श्वास लिया। अब प्रेम की प्यास बुझ गई। जिसनें मुझे तुच्छ समझकर ठुकराया था, मैं उसके सिर को ठोकर मारूँगी। वीरमदेव ने मुझे तुच्छ स्त्री समझा, परन्तु यह विचार न किया कि स्त्री देश भर का नाश कर सकती है। प्रेम भयानक है, परन्तु प्रतिकार उससे भी अधिक भयंकर है। सुलक्षणा हँसी। इस हँसी में प्रतिकार का निर्दय भाव छुपा हुआ था।

विचार आया, मरने से पहले एक बार उसे देखना चाहिए। वह दुर्दशा में लज्जित होगा। सहायता के लिए प्रार्थना करेगा। मैं गौरव से सिर ऊँचा करूँगी। वह पृथ्वी में घुसता जाएगा, मेरी ओर देखेगा परन्तु करुणा दृष्टि से। उस दृष्टि पर खिलखिलाकर हँस देने पर उसे अपनी और मेरी अवस्था का ज्ञान होगा।

इतने में बादशाह सलामत आए। सुलक्षणा के मन की इच्छा पूरी हुई। कुआँ प्यासे के पास आया। बादशाह ने देखा, सुलक्षणा सादी पोशाक में है। इस पर सुन्दरता उससे फूट-फूटकर निकल रही है। हँसकर बोला—'सादगी के आलम में यह हाल है, तो ज़ेवर पहनकर बिलकुल ही गजब हो जाएगा। कहो तबीयत अच्छी है ?'

सुलक्षणा ने लजाकर उत्तर दिया, 'जी हाँ, परमात्मा की कृपा से।'

'तुम्हारी चीज कल सुबह तुम्हारे पास पहुँच जायगी।'

'मैं बहुत कृतज्ञ हूँ, परन्तु एक प्रार्थना है, आशा है आप स्वीकार करेंगे।'

अलाउद्दीन ने सुलक्षणा के चेहरे की ओर देखते हुए कहा, 'क्या आज्ञा है ?'

'मैं वीरमदेव से एक बार साक्षात करना चाहती हूँ। प्रातःकाल से पहले एक बार भेंट करने की इच्छा है।'

अलाउद्दीन ने सोचा, चिड़िया जाल में फँस चुकी है, जाती कहाँ है? वीरमदेव को चिढ़ाना चाहती है, इसमें हर्ज की बात नहीं। यह विचारकर उसने कहा, 'तुम्हारी बात मंजूर है, लेकिन अब निकाह जल्द हो जाना चाहिए।'

सुलक्षणा ने उत्तर दिया, 'घबराइए नहीं अब दो-चार दिन की बात है।'

बादशाह ने अँगूठी सुलक्षणा को दी कि दरोगा को दिखाकर वीरमदेव से मिल लेना और आप प्रसन्न होते हुए महल को रवाना हो गए।

(७)

सुलक्षणा ने नवीन वस्त्र पहने, माँग मोतियों से भरवाई, शरीर पर आभूषण अलंकृत किये और वह दर्पण के सामने जा खड़ी हुई। उसने अपना रूप सहस्रों बार देखा था, परन्तु आज वह अप्सरा प्रतीत होती थी। कमरे में बहुत-सी सुन्दर मूर्तियाँ थीं, एक-एक करके सबके साथ उसने अपनी तुलना की, परन्तु हृदय में एक भी न जमी। अभियान सौन्दर्य का कटाक्ष है। सुलक्षणा अपने रूप के मद में मतवाली होकर झूमने लगी।

कहते हैं, सुन्दरता जादू है, और उससे पशु भी वश में हो जाते हैं। सुलक्षणा ने सोचा, क्या वीरमदेव हृदय से शून्य है। यदि नहीं तो क्या वह मुझे देखकर फड़क न उठेगा? अपनी की हुई उपेक्षाओं के लिए पश्चात्ताप न करेगा? प्रेम सब-कुछ सह लेता है, परन्तु उपेक्षा नहीं सह सकता। परन्तु थोड़े समय पश्चात् दूसरा विचार हुआ। यह क्या? अब प्रेम का समय बीत चुका, प्रतिकार का समय आया है। वीरमदेव का दोष साधारण नहीं है। उसे उसकी भूल सुझानी चाहिए। यह शृंगार किसके लिए है? मैं वीरमदेव के घावों पर नमक छिड़कने चली हूँ, उसे अपनी सुन्दरता दिखाने नहीं चली।

यह सोचकर उसने वस्त्र उतार लिये, और वीरमदेव को जलाने के लिए मुसलमानी वस्त्र पहनकर पालकी में बैठ गई।

रात्रि का समय था, गगन-मण्डल तारों से जगमगा रहा था। सुलक्षणा बुरका पहने हुए कैदखाने के दरवाजे पर गई और बोली, 'दरोगा कहाँ है?'

सिपाहियों ने कहारों के साथ शाही कर्मचारी देखकर आदर से उत्तर दिया, 'हम उन्हें अभी बुला लाते हैं।'

सुलक्षण ने नर्मी से कहा, 'इसकी आवश्यकता नहीं। मैं वीरमदेव को देखूँगी, कैदखाने का दरवाजा खोल दो।'

सिपाही काँप गए और बोले, 'यह हमारी शक्ति से बाहर है।'

सुलक्षणा ने कड़ककर कहा, 'आज्ञा पालन करो। तुम रानी सुलक्षणा की आज्ञा सुन रहे हो। यह देखो शाही अंगूठी है।'

रानी सुलक्षणा का नाम राजधानी के बच्चे-बच्चे की जिह्वा पर था। कोई उसके गौरवर्ण का अनुमोदक था, कोई रसीले नयनों का। कोई गुलाब से गालों का, कोई पंखड़ियों से होंठों का। जब से उसने अलाउद्दीन पर विजय पाई थी, तब से उसकी सुन्दरता की कल्पित कहानियाँ घर-घर में प्रसिद्ध हो रही थीं। उसे किसी ने नहीं देखा, परन्तु फिर भी कोई न था, जो इस की डींग मारकर मित्रों में प्रसन्न न होता कि उसने सुलक्षणा को देखा है।

सिपाहियों ने सुलक्षणा का नाम सुना और शाही अंगूठी देखी, तो उनके प्राण सूख गए। काँपते हुए बोले, 'जो आज्ञा हो, हम हाज़िर है।' यह कहकर उन्होंने कैदखाने का दरवाज़ा खोल दिया और वे दीपक लेकर उस कोठरी की ओर रवाना हुए, जिसमें अभागा वीरमदेव अपने जीवन की अन्तिम रात्रि के श्वास पूरे कर रहा था। सुलक्षणा के पैर लड़खड़ाने लगे। अब वह सामने होगा, जिसकी कभी मन में आराधना किया करती थी। आज उसे वध की आज्ञा सुनाने चली हूँ।

सिपाहियों ने धुँधला-सा दीपक दीवट पर रख दिया और आप दरवाजा बन्द करके बाहर चले गए। सुलक्षणा ने देखा, वीरमदेव फर्श पर बैठा हुआ है और मृत्यु के घण्टे की प्रतीक्षा कर रहा है। सुलक्षणा के हृदय पर चोट पहुँची। यह राजपूत कुल-भूषण है और धर्म पर स्थिर रहकर जाति पर न्योछावर हो रहा है। मैं भ्रष्टा होकर जाति के बहुमूल्य व्यक्ति के प्राण ले रही हूँ। यह मर जाएगा, तो स्वर्ग के द्वार इसके स्वागत के लिए खुल जाएँगे। मैं जीवित रहूँगी, परन्तु नरक के पथ में नीचे उतरती जाऊँगी। इसके नाम पर लोग श्रद्धा के पुष्प चढ़ाएँगे, मेरे नाम पर सदा धिक्कार पड़ेगी। यह मैंने क्या कर दिया? जिससे प्रेम करती थी, जिसके नाम की माला जपती थी, जिसकी मूर्ति मेरा उपास्य देव थी, जिसके स्वप्न देखती थी, उसे आप कहकर मरवाने चली हूँ। जिस सिर को अपना सिरमौर

समझती थी, उसे नेत्र कटा हुआ कैसे देखेंगे ? सुलक्षणा की आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली। प्रेम की दबी हुई अग्नि जल उठी। सोया हुआ स्नेह जाग्रत हो पड़ा। हृदय में पहला प्रेम लहराने लगा, नेत्रों में पहला प्रेम झलकने लगा। सुलक्षणा की नींद खुल गई।

सुलक्षणा लड़खड़ाते हुए पैरों से आगे बढ़ी, परन्तु हृदय काँपने लगा। पैर आगे करती थी, परन्तु मन पीछे रहता था। वीरमदेव ने सिर उठाकर देखा तो अचम्भे में आ गए और आश्चर्य से बोले, 'सुलक्षणा! यह क्या ? क्या प्रेम का प्रतिकार धर्म, न्याय और जाति का रुधिर पान करके भी तृप्त नहीं हुआ, जो ऐसी अँधियारी रात्रि में यहाँ आई हो ?'

सुलक्षणा की आँखों में आँसुओं का फव्वारा उछल पड़ा, परन्तु वह पी गई। उसे आज ज्ञान हुआ कि मैं कितनी पतित हो गई हूँ, तथापि सँभलकर बोली, 'नहीं, अभी मन शान्त नहीं हुआ।'

'क्या माँगती है ? कहो मैं देने को उद्यत हूँ।'

'इसी से यहाँ आई हूँ, मेरे घाव का मरहम तुम्हारे पास है।'

वीरमदेव ने समझा, मेरा सिर लेने आई है। सुनकर बोले, 'मरहम यहाँ कहाँ है, मैं तो स्वयं घाव बन रहा हूँ, परन्तु तुम जो कहोगी, उससे पीछे न रहूँगा।'

सुलक्षणा ने अपना मुख दोनों हाथों से ढाँप लिया, वह फूट-फूटकर रोने लगी। रोने के पश्चात् हाथ जोड़कर बोली, 'तुमने एक बार मेरा हृदय तोडा है, अब प्रतिज्ञा भंग न करना।'

वीरमदेव को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने मन में सोचा, हो-न-हो, यह अपने किये पर लज्जित हो रही है, और यह बचाव का उपाय ढूँढ़ती है। आश्चर्य नहीं, मुझसे क्षमा माँगती हो। गम्भीरता से पूछा, 'क्या कहती हो ?'

सुलक्षणा ने विनती करके कहा, 'मेरे वस्त्र पहनो, और यहाँ से निकल जाओ।'

वीरमदेव ने घृणा से मुँह फेर लिया और कहा, 'मैं राजपूत हूँ।'

सुलक्षणा ने रोकर उत्तर दिया, 'तुम मेरे कारण इस विपत्ति में फँसे हो। जब तक मैं स्वयं तुमको यहाँ से न निकाल दूँ, तब तक मेरे मन को शान्ति न होगी। तुमने घाव पर मरहम रखने की प्रतिज्ञा की है। राजपूत प्रतिज्ञा भंग नहीं करते।

देखो इन्कार न करो, सिर न हिलाओ, मैंने पाप किया है, उसका प्रायश्चित्त करने दो।'

स्त्री का अन्तिम अस्त्र रोना है। जहाँ सब यत्न व्यर्थ हो जाते हैं वहाँ यह युक्ति सफल होती है। सुलक्षणा को रोते हुए देखकर वीरमदेव नर्म हो गए और धीरे से बोले, 'इसमें दो बातें शंकनीय हैं। पहली तो यह कि तुम मुसलमान हो चुकी हो; यह वस्त्र मैं नहीं पहन सकता। दूसरे मैं निकल गया, तो मेरी विपत्ति तुम पर टूट पड़ेगी।'

सुलक्षणा ने उत्तर दिया, 'मैं अभी तक अपने धर्म पर स्थिर हूँ। यह वस्त्र तुम्हारे जलाने के लिए पहने थे, परन्तु अब अपने किये पर लज्जित हूँ। इसलिए तुम्हें यह शंका न होनी चाहिए।'

'और दूसरी बात ?'

'मुझे तनिक भी कष्ट न होगा। मैं सहज में ही प्रातःकाल छूट जाऊँगी।'

सुलक्षणा ने झूठ बोला, परन्तु यह झूठ अपने लिए नहीं, दूसरे के लिए था। यह पाप था, परन्तु ऐसा पाप जिस पर सैकड़ों पुण्य निछावर किये जा सकते हैं।

वीरमदेव को विवश होकर उसके प्रस्ताव के साथ सहमत होना पड़ा।

जब उन्होंने वस्त्र बदल लिये, तो सुलक्षणा ने कहा, 'यह अँगूठी दिखा देना।'

वीरमदेव बुरका पहनकर निकले। सुलक्षणा ने शान्ति का श्वास लिया। वह पिशाचिनी से देवी बनी। बुराई और भलाई में एक पग का अन्तर है।

(६)

सुलक्षणा की आँखें अब खुलीं, और उसे ज्ञान हुआ कि मैं क्या करने लगी थी, कैसा घोर पाप, कैसा अत्याचार ! राजपूतों के नाम को कलंक लग जाता है। आर्य-स्त्रियों का गौरव मिट जाता। सीता-रुक्मिणी की आन जाती रहती। क्या प्रेम का परिणाम कर्म-धर्म का विनाश है ? क्या जो प्रेम करता है, वह हत्या भी कर सकता है ? क्या जिसके मन में प्रेम के फूल खिलते हैं, वहाँ उजाड़ भी हो सकती है ? क्या जहाँ प्रीति की चाँदनी खिलती है, जहाँ आत्म-बलिदान के तारे चमकते हैं, वहाँ अन्धकार भी हो सकता ? जहाँ स्नेह की गंगा बहती है, जहाँ स्वार्थत्याग की तरंगें उठती हैं, वहाँ रक्त की पिपासा भी रह सकती है ? जहाँ अमृत हो, वहाँ

विष की क्या आवश्यकता है ? जहाँ माधुर्य हो, वहाँ कटुता का निवास क्यों कर ? स्त्री प्रेम करती है, सुख देने के लिए। मैंने प्रेम किया, सुख लेने के लिए। प्रकृति के प्रतिकूल कौन चल सकता है ? मेरे भाग्य फूट गए। परन्तु जिनसे मेरा प्रेम है, उनका क्यों बाल-बाँका हो ? प्रेम का मार्ग विकट है, इस पर चलना बिरले मनुष्यों का काम है। जो अपने प्राणों को हथेली पर रख ले, वह प्रेम का अधिकारी है।

जो संसार के कठिन-से-कठिन काम करने को उद्यत हो, वह प्रेम का अधिकारी है। प्रेम बलिदान सिखाता है, हिसाब नहीं सिखाता। प्रेम मस्तिष्क को नहीं, हृदय को छूता है। मैंने प्रेम पथ पर पैर रखा, फल मुझे मिलना चाहिए। वीरमदेव ने विवाह किया, पति बना, संतानवान हुआ, अब उसको पहले प्रेम की बातें सुनाना, मूर्खता नहीं तो क्या है। मैंने पाप किया है, उसका प्रायश्चित्त करूँगी। रोग की औषधि कड़वी होती है।

इतने में कैदखाने का दरवाज़ा खुला। पिछले पहर का समय था। आकाश से तारागण लोप हो गए थे। कैदखाने का दीपक बुझ गया और कमरे में सुलक्षणा के निराश हृदय के समान अन्धकार छा गया। घातक धीरे-धीरे पैर रखता हुआ कैदखाने में घुसा। सुलक्षणा समझ गई, प्रायश्चित्त का समय आ गया है। उसने कम्बल को लपेट लिया और चुपचाप लेट गई। घातक के हाथ में दीपक था, उसने ऊँचा करके देखा, कैदी सो रहा है। पाप कर्म अन्धकार में ही किए जाते हैं।

जल्लाद धीरे-धीरे आगे बढ़ा और सुलक्षणा के पास बैठ गया। उसने कम्बल सरकाकर उसका गला नंगा किया और उस पर छुरी फेर दी। सुलक्षणा ने अपने रक्त से प्रायश्चित्त किया। आप मरकर हृदयेश्वर को बचाया। जिसके रुधिर की प्यासी हो रही थी, जिसकी मृत्यु पर आनन्द मनाना चाहती थी, उसकी रक्षा के लिए सुलक्षणा ने अपना जीवन न्योछावर कर दिया। प्रेम के खेल निराले हैं।

पिछले पहर का समय था उषाकाल की पहली रेखा आकाश पर टूट पड़ी। जल्लाद सिर को लपेटे हुए अलाउद्दीन के पास पहुँचा और झुककर बोला, 'वीरमदेव का सिर हाजिर है।'

अलाउद्दीन ने कहा, 'कपड़ा उतारो।'

जल्लाद ने कपड़ा हटाया। एक बिजली कौंध गई, अलाउद्दीन कुर्सी से उछल

पड़ा। यह वीरमदेव का नहीं सुलक्षणा का सिर था। अलाउद्दीन बहुत हताश हुआ। कितने समय के पश्चात् आशा की श्यामल भूमि सामने आई थी, परन्तु देखते-ही-देखते निराशा में बदल गई। राजपूतानी के प्रतिकार का कैसा हृदयवेधक दृश्य था! प्रेम-जाल में फँसी हुई हिन्दू स्त्री की प्रभाव-पूर्ण बलिदान, पतित होनेवाली आत्मा का पश्चात्ताप!

यह समाचार कलानौर पहुँचा, तो इस पर शोक किया गया, और वीरमदेव कई दिन तक रोते रहे। राजवती ने एक 'मन्दिर बनवाकर उसके ऊपर सुलक्षणा का नाम खुदवा दिया। अब न वीरमदेव इस लोक में हैं न राजवती, परन्तु वह मन्दिर अभी तक विद्यमान है; और लोगों को राजपूतानी के भयंकर प्रायश्चित्त का स्मरण करा रहा है।

१२

अनाथालय

कमला चौधरी

(१)

चर्खा कातते हुए रोगिणी विधवा सोचने लगी, यह रोग अब अधिक दिन छोड़ेगा नहीं, मेरे बाद मोहन का क्या होगा। उसके पिता मोहन के लिए बैंक में रुपया नहीं छोड़ गए हैं। ज़मींदारी नहीं है, कोई वसीयत नहीं है। ईश्वर ने उससे पिता का दुलार छीन लिया है और माता के वात्सल्य से भी वह वंचित होना चाहता है।

मन भर आया। अंग-अंग में शिथिलता समा गई। अनाथ विधवा फफककर रो उठी, किन्तु शीघ्र ही फिर तीव्र गति से चर्खा कातने लगी। यही तो उन दोनों माता-पुत्र का जीवनाधार है। इसी चर्खे के बल पर उसने वैधव्य के बारह वर्ष व्यतीत किये हैं। तीन मास के पितृहीन पुत्र का लालन-पालन करके उसे बड़ा किया है। और आज चार वर्ष से वह रोगिणी है। पैरों में गठिया मार गई है। फिर भी बैठे-बैठे सारे दिन में इतना सूत कात लेती है। जिससे दोनों समय किसी प्रकार रोटी मिल जाती है। विचारों का धारा-प्रवाह फिर बदल गया—उसके बाद पुत्र का क्या होगा? रोगिणी फिर सोच में पड़ गई।

× × ×

कंगाल देश के मज़दूर बालक के लिए क्या उपाय होगा? यह विलायत नहीं है, अमेरिका नहीं, निर्धन देश हिन्दुस्तान है। यहाँ नर्सिंग होम कहाँ से आएँ? उन्हें शीशियों में गाय का दूध पिलाकर माता के दूध का भुलावा कौन दे? कौन उन्हें गाड़ियों पर हवा खिलाने ले जाय? उसके रोने की—नहीं, नहीं, उसके मरने की यहाँ चिन्ता किसे है? किसे फिक्र है वह भूख से छटपटाता है, जाड़े से ठिठुरता है।

समाज ने उसके लिए कोई प्रबन्ध नहीं किया है। गरीबों के बच्चे भूख से छटपटाने और जाड़े से ठिठुरने ही को पैदा होते हैं। उन्हें किसी के प्यार की, स्नेह की ज़रूरत नहीं है; वरना निर्धन के घर उत्पन्न ही क्यों होते ? उसका कुटुम्ब मालदार क्यों न होता ? उनकी पैतृक जागीर इतनी क्यों न होती जो हज़ार उनके रक्षक बनने को तैयार हो जाते। सैकड़ों सम्बन्धी निकल आते। कितने ही उनका लालन-पालन करने को लालायित हो उठते। बड़ों-बड़ों के दिल उनका वली बनने को बेचैन हो जाते। फिर ये निजी पूँजी खर्च करके प्रिवी कौंसिल तक उनका केस लड़ाकर उन्हें जायदाद का, जागीर का, हकदार साबित कर दिखलाते, किन्तु गरीब के बच्चे के लिए कष्ट उठाने की किसी को भी ज़रूरत महसूस नहीं होती।

प्रकृति माता ने जो जागीर गरीब बच्चों के लिए भी छोड़ी है उसके लिए 'केस' चलाने वाला इस समाज में कोई नहीं है। कौन वकील ऐसा है जो साबित कर दिखाये—अभागा गरीब होने पर भी वह इस समाज का जीव है। इस देश के अन्न-जल में उसका हिस्सा है।

हाँ, पूँजीपतियों के कुछ दान-पुण्य से अनाथालय खुले हुए हैं और समाज गरीब बच्चों के लिए केवल इतना उपाय करके ही मानो निश्चिन्त हो गया है।

(२)

मोहन की माँ मर गई और किसी दयाशील सज्जन ने उसे शहर लाकर यतीमखाने में दाखिल करवा दिया और अनाथालय के मैनेजर ने उसी के योग्य कार्य उसके सुपुर्द कर दिया। अनाथालय के लिए अनाज संग्रह करने की मोहन की ड्यूटी थी।

अनाथ मोहन प्रातः से संध्या तक द्वार-द्वार भटकता, गिड़गिड़ाता और फिर भी मैनेजर साहब की घुड़कियाँ खाता। मारे भय के सारा दिन उसका दिल धक्-धक् करता रहता। कहीं मैनेजर साहब की मार न खानी पड़े! वह अपने इस कार्य में किस प्रकार सफलता प्राप्त करे!

मोहन अनाथालय का मैनेजर नहीं है, न शहर का कोई लीडर ही है, न कोई बड़ा आदमी ही है। फिर वह चन्दा माँगने वाला भी नहीं है। अनाथालय के लिए अनाज इकट्ठा करनेवाला यतीम बालक है, कोई उसे अठन्नी, चवन्नी और रुपया कैसे दे दे! भिक्षा के लिए दो मुट्ठी अनाज दे देना ही उसे सब काफी समझते हैं।

किन्तु कोई मोहन के हृदय को टटोलकर देखे, उसकी अन्तर्वेदना से पूछे, उसकी व्यथा को महसूस करे, तो उसे मालूम होगा कि वह दो मुट्ठी अनाज काफी नहीं है। कुछ भी नहीं है। मुट्ठी-मुट्ठी करके वह कुछ भी एकत्रित नहीं कर पाता है। शाम को वह थके शरीर और धड़कते दिल से अनाथालय पहुँचता है तो उस पर कैसी बीतती है—अधिकारी डाँटते हैं—"तू इधर-उधर खेला करता है, मांगने नहीं जाता है।" साथ के बालक हँसी उड़ाते हैं—"इससे अनाज भी इकट्ठा नहीं होता, यह और क्या करेगा ?"

नादान बालक क्या जाने भीख माँगने के लिए खास हुनर की जरूरत है। मोहन के लिए यह काम कठिन है। उसने यह काम कभी किया भी तो नहीं है। माँ सूत लेकर जुलाहे के घर भेज देती थी और जितने पैसे कह देती थी वह लाकर माता के हाथ पर रख देता था; फिर गाँव की पाठशाला में पढ़ने चला जाता था। भीख माँगने की कला प्रारम्भ से उसने सीखी होती तो वह आज इस आर्ट में चतुर हो जाता।

आज मोहन ने सोचा मोहल्लों की अँधेरी गलियों में न भटककर बड़ी-बड़ी कोठियों और बँगलों में जाऊँगा। अमीरों के घरों से खूब अनाज मिलेगा। उसका झोला भर गया तो बाकी अनाज ले जाने को वह किराये पर ठेला ले लेगा। आज मैनेजर साहब नाराज थोड़े ही होंगे, जरूर ठेले के पैसे चुका देंगे और साथी दंग रह जाएँगे; कोई भी हँसने का साहब नहीं करेगा।

गरीब बालक मोहन इस कल्पना ही से अपने पर अभिमान करने लगा। उसकी आँखों में गौरव की आभा झलक उठी, होंठों पर भीनी मुस्कराहट दौड़ गई। आज उसके हृदय को हिलाने वाली धड़कन सदैव को दूर हो जाएगी, उससे भर पेट रोटी खाई जाएगी।

(३)

मोहन के शरीर में नीवन स्फूर्ति का संचार हुआ। आह्लाद और उम्मीद के साथ उसने एक विशाल बंगले में प्रवेश किया। मोहन के कदमों ने बंगले के कम्पाउंड के इतने चिकने फर्श का स्पर्श जीवन में पहली बार किया। उसके हृदय में संकोच और भय का समावेश हो आया। अच्छा हुआ फाटक पर सन्नाटा था।

मोहन को स्थिर होने का तनिक अवसर मिल गया। गला साफ करके उसने आवाज़ दी—"माँजी, अनाथालय का बालक..."

बात आधी ही मुँह से निकल पाई थी और बराण्डे के द्वार तक ही वह पहुँच सका था कि इतने ही में एक चपरासी ने लपककर उसे धक्का दे दिया और तड़ा-तड़ तीन-चार तमाचे जड़ दिए।

मोहन की अन्तर्वेदना भभक उठी। आत्म-सम्मान में धक्का लगा। नाड़ियों का रक्त खौल उठा। कुछ भी हो आज तक उसने किसी की मार नहीं खाई थी। उसने अपने हृदय के आवेश को रोकते हुए पूछा—"मारते क्यों हो ?"

उत्तर में चपरासी ने उसे गाली दी—"किसके हुक्म से तू बंगले के अन्दर घुस आया !" और गर्दन पकड़कर चपरासी मोहन को घसीटता हुआ बंगले के गेट से कुछ दूर छोड़ आया। उसको भय था कि साहब ने कुछ सुन लिया तो उलटे खुद की भी खबर ली जाएगी—वह गेट खाली छोड़कर हटा ही क्यों, जो भिखमंगे को अन्दर आने का मौका मिला।

(४)

हरिपुरा गाँव में एक अनाथालय का निर्माण हुआ था। इस अनाथालय ने अपने जिले में बहुत प्रसिद्ध पाई थी। अनेकों धनी-मानी लोग दूर-दूर से इसे देखने आते थे और इस अनाथालय पर श्रद्धा से माथा झुकाते थे। चारों ओर इसके निर्माण के इतिहास की चर्चा होती थी।

अनाथालय की विशेषता द्वार की लिखी हुई इन पंक्तियों ही से विदित हो जाती थी—"यह अनाथालय भोजन-बसन नहीं, काम देता है। भिक्षा माँगना नहीं, कला सिखाता है। और इन पंक्तियों के नीचे एक विधवा का चर्खा कातते हुए चित्र था। चित्र के ऊपर हेडिंग दिया था—'तुम्हारे जलाए दीपक का प्रकाश।"

यह चित्र मोहन की स्वर्गीय माता अनाथ विधवा का था। उस घटना का अब कई वर्ष व्यतीत हो चुके थे। चपरासी की मार से व्यथित और अपमानित होकर मोहन फिर अनाथालय में नहीं गया। वह जाने कितनी देर तक एक पेड़ के नीचे बैठा फूट-फूटकर रोता रहा। फिर यतीमखाने का भीख का झोला वहीं नाले में फेंककर अपने गाँव भाग आया। माता के टूटे खण्डहर में घुसते ही उसकी नज़र

माता के जीर्ण चर्खे पर पड़ी। उसे माता के जीविका-उपार्जन के साधन का ध्यान आया और वह उसी दिन से माता के उस पुराने चर्खे के सहारे और एक पड़ोसिन बुढ़िया की सहायता से अपनी जीविका-उपार्जन में संलग्न हुआ। आज उसी के परिश्रम के फलस्वरूप इस अनाथालय में सैकड़ों गरीब स्त्री-पुरुष और अनाथ बालक-बालिकाओं को रोजी मिल रही थी। सैकड़ों चर्खों की घनघोर ध्वनि मृत विधवा के टूटे-खंडहर को प्रकाशमान और पवित्र आश्रम का रूप दे दिया था।

यही इस अनाथालय का इतिहास था।

१३
मैना
राधाकृष्ण
(१)

अलियार जब मरा तो दो पुत्र, छोटा-सा घर और थोड़ी-सी जमीन छोड़कर मरा। दसवें के दिन दोनों भाई क्रिया-कर्म समाप्त करके सिर मुंड़ाकर आये, तो आने के साथ ही बँटवारे का प्रश्न छिड़ गया, और इस समस्या के लिए इतने जोरों से लाठियाँ चलीं कि दोनों भाइयों के मुंडित मुंड फूट गए।

दोनों भाइयों ने इस प्रकार एक-दूसरे का सिर फोड़कर अपना-अपना अपमान मान लिया। बड़े भाई 'मुसाफिर' की धारणा थी कि छोटे भाई ने सिर फोड़कर मेरा बड़ा भारी अपमान किया है। छोटे भाई 'जगन' की भी यही शिकायत थी कि बड़के भइया ने बड़ी मजबूत लाठी से मेरा अपमान किया है। दोनों ने प्रतिज्ञा की कि इस अपमान का बदला नहीं लिया, तो मेरा नाम नहीं।

किन्तु अपमान के प्रतिशोध के लिए मुक़दमा लड़ने को किसी के पास पैसे नहीं थे। केवल लाठियों का भरोसा था; लेकिन इसका मौका नहीं था। दोनों ही सतर्क रहते थे, खैर किसी प्रकार दोनों भाई अपने उसी घर में, एक म्यान में दो तलवारों की तरह रहने लगे; लेकिन एक म्यान में दो तलवार के रहने से तलवारों का उतना नुकसान नहीं होता, जितना कि बेचारे म्यान का। दोनों का क्रोध अपने घर पर ही उतरता था। मुसाफिरराम को जरूरत हुई, तो छोटे भाई के लगाये हुए कुम्हड़े और करेले की लताओं को तहस-नहस करके अपनी गौशाला बना ली। इधर जगन ने आवश्यक समझते ही बड़े भाई के भण्डार-घर को तोड़-कर दरवाजे के साथ मिला दिया। घर तोड़ने की खबर सुनते ही मुसाफिरराम अपने भाई का सिर तोड़ने के लिए तैयार हो गए, किंतु गाँव वालों ने बीच-बचाव करके झगड़ा शान्त कर दिया।

यह लड़ाई केवल पुरुषों तक ही थी, यह बात नहीं है। स्त्रियों में भी ऐसा घमासान युद्ध होता था जिसका ठिकाना नहीं।

हाथ चमकाकर, माथा मटकाकर, नथ हिलाकर ऐसी-ऐसी गालियों की बौछार की जाती थी, जिसका अमृतरस लूटने के लिए गाँव की सारी महिलाएँ एकत्र हो जाती थीं। मुनिया को आदमी का मांस खाना अभीष्ट नहीं था, फिर भी बड़ी तेजी से निनाद करके रधिया को धमकी देती थी—"तेरा भतार खा जाऊँगी!" रधिया भला अपनी चीज कैसे दे सकती थी? चट से कहती—"मेरा भतार क्यों खायगी; तेरा मुस्टंडा तो अभी तक जीता ही है, उसी को चबा!" इसी प्रकार दोनों देवरानी-जेठानी साहित्य के नवरसों से भिन्न गाली-रस की सृष्टि किया करती थीं।

यह लड़ाई-झगड़ा, गाली-गलौज एक-दो दिन रहता, तब तो ठीक; यहाँ तो महीने की लम्बी डग भरता हुआ साल चला गया। घर और बाहर के सभी इस झगड़े से ऊब उठे। गाँव वालों ने कहा—"भाई, तुम लोग आपस में क्यों इतना झगड़ा करते हो? अपनी-अपनी चीजें बराबर बाँट लो, बस झगड़ा खतम हो गया।"

दोनों ने सकार लिया, बात ठीक है।

आखिर एक दिन गाँववालों की पंचायत जमा हुई। सब कुछ देख-भालकर दुखहरण पाण्डे ने, तम्बाकू फाँकते हुए फैसला सुना दिया, और तब आँगन के बीच में दीवार खींच दी गई। घर की कोठरियों को गिन-गिनकर अलग किया गया। हल, बैल, खेत, बारी सब कुछ अलग-अलग हो गए। अब कोई भाई किसी से बोलना भी पसन्द नहीं करता था। एक-दूसरे को देखते ही घृणा से मुँह फेर लेता था।

(२)

उपर्युक्त घटना को दो वर्ष बीत गए।

बिल्ली की तरह घर-घर घूमने वाली पद्मिनी काकी एक दिन मुसाफिर के घर जाकर बोली—"मुँह मीठा कराओ तो एक बात कहूँ!"

रधिया ने उत्सुकता से पूछा—"कौन बात है काकी, कहो न?"

"तुम्हारा भतीजा होने वाला है!"

रधिया का चेहरा घृणा से सिकुड़ गया। क्रोध से जल उठी। मुंह बिचकाकर

बोली—"अय नौज, चूल्हे-भनसार में पड़े भतीजा, और देवी मइया के खप्पर में जाएँ हमारे देवर-देवरानी। इनको बेटा-बेटी हो, इससे हमको क्या और नहीं हो, इससे क्या। अगर इन लोगों का बस चले, तो हम लोगों को न जाने कब फाँसी से लटका दें। ये लोग जैसे अपने हैं, उससे गैर ही कहीं अच्छे।"

इस प्रकार रधिया ने भली भाँति साबित कर दिया कि इससे मुझे तनिक भी खुशी नहीं और पद्मिनी काकी का मुँह मीठा खाने लायक नहीं है।

यह बात बड़े विस्तारपूर्वक मुनिया के निकट पहुँची। रधिया जलती है, यह सुनते ही उसे एक ईर्ष्यामय आनन्द हुआ। बोली—"अभी से उस कलमुँही के कपार में आग लग गई, तब तो लड़का होने से वह छाती फाड़कर मर जाएगी?"

जगन घर में आया, तो उसे भी यह समाचार सुनना पड़ा। सुनकर उसे हर्ष नहीं हुआ। घृणा से जी छोटा हो गया। अपने भाई-भौजाई होकर भी ये लोग कितने नीच हैं! बोला—"वे लोग तो जनम के जलन्त, उनकी बात को लेकर कहाँ तक क्या किया जाय?"

उन दिनों पद्मिनी काकी प्रतिदिन एक नई सनसनीदार घटना की खबर लेकर मुनिया के निकट उपस्थित होती थी। आज रधियादेवी मैया के मन्दिर में धरना देने गई है, कि तुम्हारे पेट का लड़का नष्ट हो जाय। आज एक ओझा बुलाया गया है। बड़ा नामी ओझा है। उसके मन्तर का मारा हुआ पानी भी नहीं पीता। भगवान जाने क्या होगा। रोज इसी प्रकार नई घटनाओं का उल्लेख करके वह मुनिया से कुछ न कुछ जोग-टोटके के लिए झटक लेती थी।

किसी प्रकार इन मारन-मोहन-उच्चाटन वशीकरण से घोर युद्ध करता हुआ, कई महीनों का सुदीर्घ समय व्यतीत हो गया। आज मुनिया को लड़का होने वाला है। उसकी वर्षों की मुराद पूरी होगी। खाली गोद भर जायगी। जगन के इष्ट-मित्र भी चहक रहे थे—"भाई! भर पेट खिलाना पड़ेगा, यहाँ पौने तीन सेर से छटाँक भर भी कम नहीं खाते।" जगन प्रसन्नता-पुलकित होकर उत्तर देता—"अरे इतना खिलाऊँगा कि खाते-खाते पेट फट जायगा।" भीतर गाँव की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ बच्चे की सेवा-सुश्रूषा कर रही थीं। अन्य महिलाएँ स्वयं सेविकाओं की तरह दूसरे-दूसरे कार्य में व्यस्त थीं, किन्तु न मुसाफिर का पता

और न रधिया का। बाहर एक आदमी ने जगन से कहा—"इस समय तुम्हें सब बैर भूलकर अपने भाई को बुलाना चाहिए।" जगन ने उत्तर दिया—"बुलाया भाई, पचासों दफे आदमी भेजा, खुद गया, जब आते ही नहीं तो क्या करूँ ?"

भीतर की औरतें आपस में कह रही थीं—"ऐसे समय में सब आदमी लाग-डाट भूल जाते हैं। भाई-भौजाई होकर भी वे लोग नहीं आए।"

इस समय भी मुनिया कहने से न चूकी—"चूल्हे में जाएँ वे लोग नहीं आए यही अच्छा हुआ।"

उस समय रधिया अपने घर में चिन्ता से चूर बैठी थी। ईर्ष्या से उसका कलेजा जल रहा था। बार-बार भगवान् को दोष दे रही थी, उसे क्यों लड़का हो रहा है, मुझे क्यों नहीं हुआ ?

मुसाफिर को तो ऐसा मालूम होता था, जैसे उसका सर्वस्व लुट गया। अगर कहीं लड़का हुआ, तो मेरे घर-द्वार का भी वही मालिक होगा। आज तक उसने कभी अपने निःसन्तान होने के विषय में नहीं सोचा था। किन्तु अब यही बात तीर की तरह उसके हृदय को बार-बार वेध रही थी। गाल पर हाथ रखे वह इन्हीं ईर्ष्यामय विचारों में मग्न था। पड़ोस का शोर-गुल उसे ऐसा मालूम होता था, जैसे यह सब आयोजन उसी को चिढ़ाने के लिए किया गया है।

इसी समय मालूम हुआ कि जगन के यहाँ लड़की पैदा हुई है।

मुसाफिर ने एक लम्बी साँस खींचकर कहा—"जाने दो, लड़का नहीं पैदा हुआ, यह अच्छा हुआ।"

यह उसके मन की वह प्रवृत्ति थी, जो निराशा के डाल पर भी सन्तोष के घोंसले बनाती है।

(३)

समय-पंछी उड़ता हुआ छः वर्षों का पथ और भी पार कर गया। जगन की लड़की मैना अपने द्वार पर बैठी हुई धूल के घरौंदे बनाती और बिगाड़ती नज़र आती थी। उसे देखकर मुसाफिर को क्रोध नहीं आता था, एक प्रकार का ममत्व जाग्रत हो उठता था। जी में आता था कि वह धूल-धूसरित बालिका को गोद में उठाकर चूम ले। वह दूर से बैठकर उसकी बालक्रीड़ा को देखता था और फूला न

समाता था। मैना को गोद में लेने की बलवती इच्छा को वह कैसे दबाता था—यह उसके सिवा किसी को नहीं मालूम।

असाढ़ रथ-द्वितीया के दिन, उसी के गाँव के समीप करोंदी में मेला लगता था। उस मेले में कोई खास बात नहीं थी। जगन्नाथ स्वामी के मन्दिर में खूब घड़ी-घंटे बजाकर उनकी पूजा होती थी। सन्ध्या के समय मनुष्यों के रथ पर लादकर देवताओं को एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर तक पहुँचा दिया जाता था। आस-पास के सभी गाँव वाले वहाँ एकत्र होते थे, काफी भीड़ जुट जाती थी। मुसाफिर भी वहाँ खिलौने की दूकान देखकर ठिठक गया। इच्छा हुई कि मैना के लिए कुछ खिलौने लेता चलूँ। फिर सोचा—"मगर इसके लिए कहीं जगन या उसकी बहू कुछ कह दे तब ?"

उसने इच्छा को बलपूर्वक त्याग दिया और आगे बढ़ा। आगे भी खिलौने की दूकान थी। एक से एक अच्छे खिलौने भली भाँति सजाकर रखे हुए थे। मुसाफिर रुक गया और दुकान की ओर देखने लगा। खिलौने सभी सुन्दर थे। जिस पर दृष्टि जाती थी, उससे आँखों का हटाना कठिन था। यदि इसमें से एक भी खिलौना मैना को मिले, तो वह कितनी खुश होगी। मुसाफिर की कल्पना की आँखों के आगे मैना उसके लिए खिलौनों को लेकर छाती से लगाए हुई दिखलाई पड़ने लगी। वह इसी आत्मविस्तृत दशा में दूकान के सामने जाकर खड़ा हो गया। एक खिलौना उठाकर पूछा—"इसका कितना दाम है ?"

"छः आने !"

मुसाफिर को मानो होश हुआ। यह खिलौना मैं किसके लिए खरीद रहा हूँ ! उसी के लिए जो मे· बैरी की लड़की है। मगर अब क्या करता; दाम पूछ चुका था, अगर वहाँ से यों ही चल देता तो बड़ी हेठी होती। बस टाल देने के लिए बोला—"तीन आने में देते हो तो दे दो।"

"अगर लेना ही है तो चार आने से कौड़ी कम न लूँगा।"

अब तो सिर्फ चार पैसों पर बात अटक गई। अगर ले ही लूँ तो क्या होगा। मेरा दुश्मन जगन है कि उसकी लड़की ? बेचारी बच्ची का क्या कसूर ? जैसे वह जगन की लड़की है वैसे ही हमारी लड़की है। बेचारी को मैंने कभी कुछ नहीं

दिया। लोग अपने भतीजे-भतीजी को लाख-दो लाख दे देते हैं, अगर मैंने एक चार आने का खिलौना ही दे दिया तो क्या दिया ? मुसाफिर जब खिलौनों को खरीद कर चला, तो उसके हृदय में जितना उल्लास था उतना ही झगड़े की आशंका भी थी।

साँझ के समय घर पहुँचा। मैना उस समय अपने पिता से पाई हुई सीटी बजा-बजाकर खुश हो रही थी। इस समय मुसाफिर जाकर उसके सामने खड़ा हो गया। खिलौना हाथ में रखकर कहा—"देख बेटी, यह खिलौना तेरे लिए लाया हूँ, पसन्द है ?"

मैना खुशी से नाच उठी। बोली—"हाँ चाचा, खूब पसन्द है ; अबकी मेला में जाओगे तो मेरे लिए एक हाथी, एक खरगोश और एक कछुआ लेते आओगे ?"

"अच्छा लेता आऊँगा"—कहकर मुसाफिर ने उसे गोद में उठाकर चूम लिया।

मैना बोली—"तुम बड़े अच्छे आदमी हो चाचा, तुम मेरे लिए मेले से खिलौना ला देते हो, गोद में लेकर दुलार भी करते हो।"

मुसाफिर ने स्नेह से पूछा—"और तेरा बाप दुलार नहीं करता ?"

मैना सिर हिलाती हुई बोली—"नहीं वह दुलार नहीं करता, वह तो मुझे गोद में भी नहीं लेता।"

(४)

एक दिन मुसाफिर गोद में मैना को लिए हुए घर के भीतर गया, तो रधिया बोली, "तुम्हारे रंग-ढंग मुझे अच्छे नहीं लगते।"

मुसाफिर ने सहज उत्सुकता से पूछा—"क्यों क्या हुआ ?"

"पराई बेटी के पीछे काम-धन्धा छोड़कर दिन-भर पागल बने फिरते हो। अगर अपनी बेटी होती तो क्या करते ! कल खेत पर भी नहीं गए, सारा दिन बाँस की गाड़ी बनाने में बिता दिया।"

मुसाफिर ने हँसकर कहा—"पराई बेटी कैसे हुई ? क्यों मैना तू दूसरे की बेटी है ?"

मैना ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं।"

"तब किसकी बेटी है ?"

मैना उसके गले में दोनों बाँहें डालकर बोली, "तुम्हारी !"

मुसाफिर मुस्कराता हुआ गर्व से अपनी पत्नी की ओर देखकर बोला—"देखती हो ?"

रधिया ने कहा—"सब देखती हूँ, लेकिन अगर कहीं कुछ हो गया, तो यही समझ लो कि तुम्हारे सिर का एक बाल भी नहीं बचेगा। जो कुछ असर-कसर बाकी है, वह भी पूरी हो जाएगी।"

मुसाफिर ने मैना को चूमकर कहा—"मेरी बेटी को क्यों कुछ होगा, जो कुछ होगा, जो कुछ होना होगा, सो इसके दुश्मन को होगा। क्यों बेटी ?"

मैना ने सिर हिलाकर अपनी सम्मति जता दी।

रधिया ने मुँह फुलाकर कहा—"एक दफे कपार फुटवा ही चुके अबकी मालूम होता है, मूँछें उखड़वाओगे।"

मुसाफिर के दिल में कुछ चोट लगी। उसने सिर उठाकर कहा—"तुम तो मैना को फूटी आँखों भी नहीं देख सकती। यह मेरी गोद में नहीं आवे, तब तुम्हारा कलेजा ठंडा रहेगा।"

रधिया तीव्र स्वर में बोली—"कौन कहता है कि मैना मुझे फूटी आँखों नहीं सुहाती ? बोलते कुछ लाज भी लगती है कि नहीं ! लड़के-बच्चे भी किसी के दुश्मन होते हैं ?" मैना को देखती हूँ, तो गोद में लेने के लिए तरसकर रह जाती हूँ, मगर करूँ तो क्या, इसके माँ-बाप ऐसे हैं, जिनसे दुश्मन भी भला। छोड़ देती हूँ, कौन जाने मैना को दुलार करने से हमारी मालकिनजी राँड़-निपूती करने लगें।"

इसी समय मैना अपनी चाचा की गर्दन झकझोरकर बोली—"चाचा, चलो मुझे गाड़ी पर चढ़ाकर टहला दो।"

"चल !"—कहता हुआ मुसाफिर उसे लिये हुए घर से बाहर चला गया।

उस दिन मैना गाड़ी पर चढ़कर खूब घूमी : लेकिन जब उसकी छोटी-सी गाड़ी समस्त गाँव की परिक्रमा करके लौटी, तो उसे कुछ ज्वर-सा हो गया था।

मुसाफिर ने देखा कि उसका शरीर कुछ गर्म है। बोला—"घर चली जाओ बेटी, शायद तुम्हें बुखार आएगा।"

मैना जिद्द करने लगी—"नहीं चाचा, थोड़ा और घुमा दो। थोड़ा-सा। फिर घर चली जाऊँगी।"

"नहीं नहीं, अब घर जाओ।"

मैना मलीन मन गाड़ी से उतरकर घर चली गई। उस दिन वह बहुत उदास हो गई। चाचा यदि थोड़ा और घुमा देते तो क्या होता?

(५)

दूसरे दिन मुसाफिर दिन-भर मैना को नहीं देख सका। मालूम हुआ कि उसे ज्वर आया है। मुसाफिर दिन-भर बहुत ही उदास रहा। खेत पर भी नहीं जा सका। बैल भूखे थे, उन्हें सानी देने की भी याद नहीं रही। मालूम होता था, वह जैसे नर्वासित कर दिया गया है। वह जहाँ बैठा था, दिन-भर वहीं बैठा रह गया। रात हुई तो रधिया आकर बोली—"आज खाओगे नहीं क्या?"

"ना, आज भूख नहीं है।"

तुम तो मुफ्त में अपनी जान गँवा रहे हो। जिन लोगों के लिए प्राण हत रहे हो, उन्हें तो तुम्हारी परवाह ही नहीं है। यह किसी से नहीं हुआ कि तनिक बुला-कर दिखला देते। हाय री बच्ची, कल ही भली-चंगी थी, आज न जाने कैसे क्या हो गया! मेरा तो जी चाहता है कि जाकर एक बार देख आती।

मुसाफिर प्रसन्न होकर बोला—"चली जाओ न, देखती आना।"

रधिया ने कहा—"जाती तो; लेकिन महारानीजी से डर लगता है कि कहीं डाइन कहकर बदनाम न कर दें। और तुम्हारा सपूत भाई भी कम नहीं है। ना, मैं नहीं जाऊँगी; तुम्हीं जाओ।"

"तुम्हारे जाने से लोग बुरा मानेंगे, तो क्या मेरे जाने से भला मानेंगे?"

"तो जाने दो; मगर चलो खा लो। ऐसे कब तक रहोगे?"

"जब तक मन करेगा।"

"भगवान् लोगों को दुःख देते हैं, तो क्या सभी खाना छोड़ देते हैं? दुनिया का काम तो सभी को करना ही पड़ता है।"

"खाऊँगा तो ज़रूर ; लेकिन अभी भूख नहीं है।"

रधिया निराश होकर चली गई। मुसाफिर वहाँ बैठा-बैठा क्या सोच रहा था, यह वही जाने ; लेकिन जब रात भींग गई, दस से ऊपर हो गए और रात्रि के सन्नाटे में कुत्तों का भूँकना जारी हो गया, तब मुसाफिर जगन के द्वार पर जाकर खड़ा हो गया, दीवार से कान लगाकर, बहुत देर तक मैना की बोली सुनने की चेष्टा की, किन्तु निष्फल रहा। अन्त में निराश होकर घर लौट आया और चुप-चाप सो गया।

मैना तीन-चार दिनों तक तो बुखार में डूबी रही, पाँचवें दिन सन्निपात हो गया। बचने तक की आशा जाती रही। मुसाफिर यह सब सुनता था और मन-ही-मन हाय करके रह जाता था।

आखिर एक दिन मुनिया के क्रन्दन से जगन का घर गूँज उठा। मुसाफिर के हाथ-पाँव फूल गए। वह पागल की तरह दौड़ा हुआ जगन के आँगन में पहुँच गया। घबराया हुआ बोला—"जगन, जगन, क्या हुआ ?"

जगन रोता हुआ घर से निकला—"भइया हम लुट गए, भइया, मैना···"

मुसाफिर भी कातर भाव से हाहाकार करके रो उठा, "हाय मेरी बेटी !"

जब लोग मैना की लाश उठाकर चले, उस समय मुनिया भी सिर के बाल खोले पगली की तरह रोती हुई जा रही थी। "हाय रे ! मेरी भली-सी बच्ची को लेकर तुम लोग कहाँ जा रहे हो। लाओ उसे मुझे दे दो, वह दूध पीकर चुपचाप सो जाएगी। हाय रे, मेरी बच्ची ! सुनो···सुनो तो···"

इसी समय रधिया अपने घर से दौड़ती हुई निकली और मुनिया को पकड़ लिया। उसे अपनी छाती से लगाकर बोली—"न रोओ बहन, न रोओ ! भगवान् ने हम लोगों को दुःख दिया है, तो सहना ही पड़ेगा।"

उस समय तक शव ले जाने वाले आँखों की ओट हो चुके थे।

१४

मूँछ का बाल

ग्रानन्दप्रकाश जैन

उस दिन रहस्यमय सम्राट् ग्रकबर की दाढ़ी पर गुलाबजल लगाते-लगाते जब नुसरत हज्जाम ने डरते हुए यह निवेदन किया कि वह तन्त्र-मन्त्र की विद्या में पारंगत है। यहाँ तक कि ग्रादमी को जीवित ही जन्नत भेज सकता है, तो विद्वान् बादशाह को बड़ा कुतूहल हुग्रा।

बादशाह ने गम्भीर होकर कहा, "नुसरत, हमारी इतनी बड़ी शहंशाहियत में तेरे जैसा बुद्धिमान् मनुष्य ग्रौर कोई नहीं है!"

थोड़ी ही दूरी पर रेशमी वस्त्र की प्रतीक्षा में खड़ी लौंडी दाँतों में ग्रँगुली देकर हौले से मुसकराई। शायद वह बादशाह के व्यंग्य को समझ रही थी।

हज्जाम ने कहा, "ग्रालीजाह के मुँह से झरे फूलों को चुन लूँ। हज्जाम तो ग्राखिर हज्जाम ही है। कौन नहीं जानता कि हजूर की सलतनत में ग्रकल जहाँ पहुँचकर दम तोड़ बैठी है, वह राजा साहब बीरबल हैं।"

ग्रकबर उसी मुद्रा से बोला, "मालूम होता है कि जन्नत में तेरा कोई काम ग्रटका हुग्रा है!"

नुसरत बोला, "हजूर की उमर चाँद-सितारों से बातें करे। इन खूबसूरत चमकती गेंदों के ऊपर, जन्नत की रंगीन चारदीवारी के भीतर, हजूर ग्रालीजाह के पुरखों की रूहें तैर रही हैं। बेटे पर ग्रपनी जान कुरबान कर देनेवाले ग़ाज़ी बादशाह बाबर ग्रौर खुदा की इबादत की राह में कुरबान हो जाने वाले ग़रीब-परवर बादशाह हुमायूँ की ग्रात्माएँ रात-दिन जहाँपनाह की जान को सौ-सौ दुग्राएँ देती होंगी। इस विद्या को जानकार उनकी ख़ैरियत का पता लगाने का खयाल ही गुलाम के दिल में सबसे पहले उठा था। मगर सल्तनत के सबसे ग्रधिक बुद्धिमान् मनुष्य के ग्रतिरिक्त ग्रौर कोई इस विद्या को सीखकर जन्नत में कैसे

पहुँच सकता है ?"

बादशाह का दिल चाहा कि उसी वक्त हज्जाम का सिर धड़ से अलग करने का हुक्म दें। लेकिन वह ठंडा करके खाता था। वह ठठाकर हँस पड़ा और नुसरत सहमकर बादशाह की ओर देखने लगा।

अकबर बादशाह किस समय विनोद को अपने हृदय में प्रश्रय देता था और किस समय क्रोध को—इसका पता आज तक किसीको भी नहीं चल पाया था। नुसरत कोप के प्रहार से बाल-बाल बच गया। दाढ़ी बनाने का काम ख़त्म हुआ और उसने जल्दी-जल्दी अपना सामान बुकचे में बन्द करके तीन बार ज़मीन को चूमा। उसके जाने के बाद अकबर फिर एक बार जी खोलकर हँसा। लौंडी नज़रें नीची किये रेशमी वस्त्र और जल का पात्र लेकर आगे बढ़ी। सोने की तूँबी से उसने बादशाह के हाथों पर पानी डालकर चपलता के साथ उन्हें पोंछा। बादशाह ने गुलाबजल से मुँह धोया। उसी समय कक्ष के बाहर खड़ी लौंडी ने सेवा में उपस्थित होकर विनयपूर्वक कहा, "जहाँपनाह, राजा साहब बीरबल, मिर्ज़ा राजा मानसिंह, हज़रत मुल्ला-दो-प्याज़ा और वज़ीर सदर अब्दुलफज़ल साहब क़दमबोसी चाहते हैं।"

"बहुत खूब !" अकबर इस समय अपने इन रत्नों का आगमन सुनकर प्रसन्न होता हुआ बोला, "हाज़िर किये जाएँ।"

सब लोगों ने कक्ष के भीतर आते ही तीन-तीन बार माथे तक हाथ ले जाकर गिराया। बादशाह के चेहरे की तरफ देखकर बीरबल ने कहा, "जहाँपनाह, साफ हो गई !"

बादशाह ने घुटी हुई ठोढ़ी पर हाथ फेरते हुए भृकुटी चढ़ाकर पूछा, "क्या साफ हो गई राजा साहब !"

राजा बीरबल ने कहा, "हुज़ूर, रीवाँ के राजा रामचन्द्र वाली बात साफ हो गई…"

वज़ीर अब्बुलफ़ज़ल ने कहा, "हुज़ूर, बीच में दखलअन्दाज़ी की माफ़ी चाहता हूँ, बात बिलकुल भी साफ नहीं है, बल्कि ज्यों-की-त्यों उलझी हुई है। तीन साल हो गए, रीवाँ का राजा हर बार अपने बेटों को खिराज अदा करने के लिए भेज

देता है, मगर खुद कभी दरबार में नहीं आता। यह ठीक है कि हम लड़ाई नहीं चाहते, मगर इसका यह मतलब नहीं कि हमारे अधीन राजा हमें बराबरी तक का दरजा न दें। तीन साल के बाद राजा रामचन्द्र के खुद आगरे के दरबार में उपस्थित होने की बात थी, मगर वह इस चौथे साल भी नहीं आया···"अब्बुल-फ़ज़ल ने कमरे में बिछी हुई स्वच्छ चाँदनी के ऊपर अपने खंजर की मूठ की नोक से एक गहरी रेखा खींचते हुए कहा, "···अब रीवाँ नरेश मुगल दरबार के सम्मान के रास्ते में एक ऐसी लकीर बन गया है, जिसे मिटाये बिना शहंशाहियत की भाग्यरेखा को अपना बड़प्पन क़ायम रखना मुश्किल हो गया है।"

बादशाह ने अपने रत्न को प्रशंसा की निगाह से देखते हुए कहा, "खूब! मावदौलत ने युद्ध के पक्ष में फ़ज़ल साहब की दलीलों को सुना। आप क्या कहते हैं, राजा साहब?" अकबर का संकेत बीरबल की ओर था।

राजा बीरबल ने कहा, "जहाँपनाह, इस अकिंचन का विचार है कि फ़ज़ल साहब ने जो रेखा इस बेशक़ीमती चाँदनी के ऊपर खींचकर इसका बड़प्पन दिखाया है, वह इस रेखा को मिटाये बिना भी छोटा किया जा सकता है···।" इसके बाद बीरबल ने लौंडी के हाथ से मोर की पंखी ली और उसने चाँदनी पर खिची पहली रेखा के पास ही एक और बड़ी रेखा खींचते हुए बोले, "देखिए जहाँपनाह, फ़ज़ल साहब की खींची हुई युद्ध की लकीर मेरी शान्ति की लकीर से छोटी हो गई···"

अकबर जोश से चिल्लाया, "वाह, वाह! आपने कमाल की दलील दी है!"

राजा मानसिंह बोले, "अगर राजा साहब इसे व्यवहार में भी कर दिखाएँ, तो यह करिश्मा सचमुच में बहुत बड़ा माना जाएगा।"

बीरबल ने कहा, "मैं राजा रामचन्द्र को मुगल दरबार में ले जाऊँगा, अगर जहाँपनाह की ओर से यह आश्वासन प्राप्त हो सके कि उनका स्वागत एक अधीन राजा की तरह न होकर सम्मानित अतिथि की भाँति होगा।"

मुल्ला-दो-प्याज़ा चहके, "अजी, खुदा का नाम लो! राजा रामचन्द्र जैसा घमंडी आदमी इस दुनिया के तख्ते पर दूसरा कोई हो सकता है। यह शुबे की बात है। वह आगरे में पैर रखने को भी हिमाकत समझता है।"

बादशाह ने कहा, "यह बात तो ठीक है। राजा रामचन्द्र का दिल मावदौलत की तरफ से साफ नहीं है। हम सारे हिन्दुस्तान को मिलाकर एक ऐसा ग्राईना बनाना चाहते हैं, जिसमें विदेशी हमलावर ग्रपनी सूरत देखते ही डर जाय। हिन्दुस्तान के छोटे-छोटे राजाग्रों की ग्रधीनता के बजाय साफदिली की हमें ज्यादा जरूरत है। न हम ग्रपने दिल में कोई घमंड रखना चाहते हैं, न ग्रपने किसी दोस्त के दिल में ग्रपनी ग्रोर से कोई ग़लतफ़हमी चाहते हैं। ग्रगर राजा रामचन्द्र हमारे दरबार में ग्राने के लिए राजी हो जाएँ, तो हम उनका ख़िराज तक माफ़ कर सकते हैं···मगर, राजा साहब, ग्राजकल ग्रागरे से बाहर क़दम रखना ग्रापके लिए खतरे से खाली नहीं है।"

राजा बीरबल ने कहा, "हुज़ूर, जब तक जहाँपनाह का हाथ मेरे सिर पर···"

"ग्राप पुरानी बात दोहरा रहे हैं," बादशाह ने कहा। इसके बाद उन्होंने नुसरतवाली बात सबको सुनाते हुए कहा, "इससे ज़ाहिर होता है कि कुछ सिर-फिरे मौलवी हर क़ीमत पर ग्रापकी जान लेना चाहते हैं। यहाँ तक कि वे बेवक़ूफ़ हमसे भी यह उम्मीद रखते हैं कि हम उनकी ग्रन्धविश्वास से भरी बातों में ग्राकर ग्रापको ग्रपने पुरखों की खबर लाने के लिए जिन्दा ही जन्नत भेज सकते हैं—नामाकूल कहीं के !"

"इसके ग्रलावा," मुल्ला-दो-प्याज़ा ने कहा, "यह भी कतई ग़ैरमुमकिन है कि राजा रामचन्द्र राजा बीरबल के समझाने-बुझाने से ही इनके साथ-साथ ग्रागरे की तरफ़ चल देंगे। लातों का भूत बातों से नहीं मानता। ग्रगर राजा साहब ने ग़ैरमुमकिन को मुमकिन कर दिखाया, तो यह गुनाम ग्रपनी दाढ़ी मुँड़वा देने के लिए तैयार है।"

राजा बीरबल बोले, "मैं हुज़ूर ग्रालीजाह से निवेदन करता हूँ कि माननीय मुल्ला-दो-प्याज़ा की दाढ़ी को खास शाही हज्जाम के हाथों मूँड़े जाने का सौभाग्य प्रदान किया जाय।"

ग्रकबर ने कहा, "मावदौलत को खेद है कि मुल्ला-दो-प्याज़ा की यह इच्छा पूरी नहीं की जा सकेगी, क्योंकि नुसरत हज्जाम का सिर ग्राज ही क़लम हो जाने

के लिए फरमान ज़ारी हो जाएगा।"

"माफ करें, जहाँपनाह," राजा बीरबल ने कहा, 'नुसरत हज्जाम ने सही कहा है। मैं उसकी विद्या सीखकर जन्नत से हजूर के पुरखों की खबर जरूर लाऊँगा।"

बादशाह सलामत चौंके। "आप भी, राजा साहब! क्या आप भी इन मूर्खताओं में विश्वास रखते हैं?"

"जी, जहाँपनाह, रखता तो नहीं था, मगर अब देखता हूँ कि रखे बिना काम नहीं चलेगा। हजूर जहाँपनाह मुझ नाचीज़ पर विश्वास रखें और नुसरत को कोई सजा देने से पहले मुझे स्वर्ग से वापस आ लेने दें!"

राजा मानसिंह ने कहा, "राजा साहब, आप बड़े मज़ेदार राजा साहब हैं, इसलिए हम आपको अकेले-अकेले जन्नत तशरीफ नहीं ले जाने देंगे।"

बीरबल बोले, "मुझे कोई एतराज़ न होता, मगर अफसोस की जन्नत से अकेला बीरबल वापस आ सकता है, बाकी जो साथ जाएगा वहीं पर रहने लगेगा!"

इस पर एक कहकहा लगा। राजा बीरबल ने फिर कहा, "जहाँपनाह, क्या यह सेवक एकान्त में कुछ निवेदन कर सकता है?"

"ज़रूर, ज़रूर," अकबर ने कहा। "सज्जनो, मावदौलत एकान्त चाहते हैं।"

फौरन राजा बीरबल को छोड़कर सब लोग बादशाह के सामने से हटकर कक्ष के बाहर चले गए। अब राजा बीरबल ने कहा, "हजूर, जन्नत के रास्ते से ही रीवाँ पहुँच सकता हूँ। अगर धरती के रास्ते से गया, तो धर्मांध शत्रु ज़रूर मुझे खोज निकालेंगे और पहचान लेंगे। अगर मैं रीवाँ के राजा साहब को आगरे न ले जाऊँ, तो हजूर की सेवा में नहीं आऊँगा, और सचमुच जन्नत जा पहुँचूँगा··· मगर ऐसा नहीं होगा। पहले जो थोड़ा-बहुत अनिश्चय था, वह भी अब नहीं है।"

बहुत देर सलाह-मशवरा करने के बाद आखिर अकबर बादशाह ने राजा बीरबल को जन्नत जाने की इजाजत दे दी।

शाम के समय तक सारे आगरे शहर में यह विचित्र अफवाह फैल गई कि राजा बीरबल को नुसरत हज्जाम जन्नत में भेज रहा है और वह वहाँ से बादशाह के पुरखों का समाचार लाएँगे। सैकड़ों-हजारों विरोधों के बावजूद, रोने-चिल्लाने और हँसी-ठट्ठे की उपेक्षा करते हुए, राजा बीरबल एक विशेष चिता पर बैठकर स्वर्ग सिधार गए।

× × ×

तीन मास बाद एक दिन सुबह ही सुबह, जब नुसरत हज्जाम अपने घर पर, बदन पर तेल मल-मलकर दण्ड पेल रहा था, उसकी बीवी भीतर आई और बोली, "मियाँ, दुनिया भिखारी से बादशाह हो गई, मगर तुम यों-कें-यों ही रहे। अगर इस तरह मौकोंको हाथ से जाने दिया करोगे, तो सारी उमर हजामत बनाते ही बीतेगी।"

हज्जाम ने दण्ड पेलना रोककर पूछा, "क्यों, क्या मुझे कोई बादशाहत का पैगाम देने आया है ?"

"मुंह धो रखो," बीबी ने कहा। "एक-एक सीढ़ी चढ़ा जाता है। जो आदमी जहाँ होता है खुदा उसे वहीं बरकत देता है। बाहर एक बाल खरीदने वाला खड़ा है। तुम तो रोज़ लोगों की हजामत मूँड़ते हो। ज़रा बुलाकर तो पूछो कि क्या भाव लेता है। सड़क पर न झाड़े घर पर उठा लाए। आदमी तिजारत से ही तरक्की कर सकता है !"

नुसरत मियाँ फौरन बाहर की तरफ लपके, तो देखते क्या हैं कि एक बहुत बूढ़ा आदमी गली में आवाज़ लगा रहा है, "कोई बाल बेचो बाल !"

न जाने कम्बख्त सुअर के बाल खरीदता है या आदमी के ? नुसरत मियाँ ने दो पल दाढ़ी खुजाई, इसके बाद आवाज़ दे ही तो बैठे : "ओ मियाँ बाल खरीदने वाले······ज़रा यहाँ आना तो।"

बूढ़ा जब पास आ गया, तो बोला, "अरे, आप तो शाही हज्जाम हैं !"

नुसरत मियाँ ने अकड़कर अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा। बोले, "कैसे पहचाना ?"

"ए लो, सुनो इनकी बातें ! मियाँ, तिजारत करते हैं, कोई घास नहीं बेचते।

बाल खरीदने का पेशा है, तो बाल काटने वालों को नहीं पहचानेंगे ? लाओ, है कुछ माल ?" बूढ़े ने पूछा।

नुसरत मियाँ ने कहा, "इस वक्त तो नहीं है, मगर कल से होने लगेंगे। तुम बताओ क्या सेर के भाव खरीदते हो ?"

बूढ़ा खिलखिलाकर हँसा—'मियाँ मज़ाक करते हो ! कहीं बाल भी अनाज की तरह सेरों के भाव खरीदे जाते हैं। हम तो छँटवा बाल खरीद करने वालों में से हैं, और एक-एक बाल को गिनकर कीमत देते हैं।"

हज्जाम की हालत सुनते ही बुरी हो गई। वह आश्चर्य से बूढ़े का मुँह ताकने लगा। "एक-एक बाल की कीमत ! यह कैसे मुमकिन है ?"

बूढ़े ने कहा, "मियाँ, तुम कुएँ के मेंढ़क मालूम होते हो। तुम्हें क्या पता कि बालों की क्या-क्या कीमतें होती हैं। अब यही लो, अगर तुम कहीं से बादशाह बाबर का एक बाल भी ला सको, तो बंदा यहीं खड़े-खड़े एक हज़ार टंका कीमत दे सकता है। किसी चीज़ की कीमत होती ही इस बात की है कि वह कितनी मुश्किल और दिक्कत से मिल सकती है।"

उनकी बातें सुन-सुनकर आसपास के लोग इकट्ठे होने शुरू हो गए थे, इसलिए नुसरत मियाँ ने बूढ़े को भीतर आने का इशारा किया और घर ले जाकर एक चारपाई पर दरी बिछाकर उसे बैठाते हुए बोले, "भला बड़े मियाँ, इतनी कीमत देकर बादशाह बाबर के बाल का कोई करेगा क्या ?"

बीवी, जो दरवाज़े की ओट में खड़ी सब सुन रही थी, मियाँ की इस बेबात की हुज्जत पर मन-ही-मन पेंच-ताब खा रही थी। वहीं से बुरका खींचते हुए बोली, "ए मियाँ तुम्हें इन बातों से मतलब क्या, कोई कुछ भी करे। न हो बादशाह अकबर उसे छाती से चिपकाकर ही सो जाएँ। मरहूम बादशाह बाबर की पाक हस्ती की कोई भी चीज़ उतनी ही पाक होगी।"

बूढ़े ने कहा, "मियाँ माफ करना, तुमसे तुम्हारी बीवी ज्यादा अक्लमन्द मालूम होती है।"

नुसरत मियाँ बीवी की तरफ मुड़कर तुनकते हुए बोले, "ए, तुम जाकर बड़े मियाँ के लिए शरबत बना लाओ···हाँ, तो बड़े मियाँ, अगर मैं बादशाह अकबर

के बाल आपको ला दूँ, तो आप क्या कीमत देंगे ?"

बड़े मियाँ अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोले, "मियाँ, तुम तो समझ-कर भी नहीं समझे। जो चीज़ आसानी से मिल सकती है, उसकी कीमत कुछ भी नहीं होती, जैसे पानी। फिर यह देखा जाता है कि चीज़ किस काम में आएगी। बादशाह अकबर के बाल उनके पोते-पड़पोते अच्छी कीमत में खरीद सकते हैं, लेकिन तब तक तुम जिन्दा नहीं रहोगे। हाँ, अपने बाल-बच्चों के लिए रख जाओ। अच्छी वरासत रहेगी। मगर बादशाह अकबर की मूँछ का बाल ज़रूर कुछ कीमत रखता है। उनकी मूँछ का एक बाल रखकर कोई भी महाजन लाखों रुपये कर्ज दे सकता है। मगर उसके लिए ज़रूरत इस बात की है कि मूँछ का बाल नोंचा हुआ होना चाहिए, उस्तरे से कटा हुआ नहीं, क्योंकि कटा हुआ बाल किसी कीमत का नहीं होता।"

यह सुनकर नुसरत मियाँ सिर खुजलाने लगे। इतने में बीवी ने शरबत का कटोरा लाकर थमाया और उन्होंने बड़े मियाँ की नज़र किया। फिर बोले, "बड़े मियाँ, यह तो बड़े मुश्किल की बात है। बादशाह अकबर हमेशा मूँछों के उस्तरा ही लगवाते हैं। वह बाल नोचे जाने को बरदाश्त नहीं कर सकते !"

बूढ़ा शरबत पीता हुआ बोला, "और अगर किसी दिन नोच डालो, तो तुम्हारा सिर धड़ से अलग हो जाय। देखो, हुई न एक बाल की कीमत एक आदमी का सिर ?"

नुसरत मियाँ ने कहा, "मानता हूँ, बड़े मियाँ। आप जैसा अजीब सौदागर मैंने आज तक नहीं देखा था। और कैसे-कैसे बाल आप खरीद सकते हैं ?"

'देखो," बूढ़े मियाँ बोले, "वक्त-वक्त पर बालों की कीमत घटती-बढ़ती रहती है। मिसाल के लिए, अभी तीन दिन पहले जमुना के किनारे दीवान खास की मजलिस हुई थी। उसमें सुना है कि बादशाह सलामत रीवाँ के राजा पर इतने खफा हुए कि अगर वह सामने होता, तो उल्टा लटकवा देते। मजबूरन सिर्फ इतना कहकर रह गए: 'अगर वह हाथ जोड़े माबदौलत के हजूर में न आ खड़ा हुआ, तो माबदौलत उसकी मूँछें नोच डालेंगे, चाहे हमें उसके एक एक बाल के लिए अपने तख्त का एक-एक हीरा क्यों न अदा करना पड़े;' अब, बंदे खुदा के

अक्ल पर जोर देकर सोचो कि बादशाह सलामत के तख्त में एक हीरे की कीमत कम-से-कम एक लाख रुपये तो होगी ही। बस समझ लो, अगर रीवाँ के राजा की मूँछ का एक बाल भी नोचा जा सके, तो एक लाख रुपये उलटे हाथ से बादशाह सलामत से वसूल किए जा सकते हैं। वसूल करने का काम मेरा रहा, बाल तुम नोच लाओ। नकद पचास हजार रुपये दूँगा ; बोलो, हो तैयार ?"

भीतर नुसरत मियाँ की बीवी तो खुशी के मारे गश खाकर गिर पड़ी। नुसरत हज्जाम ने बूढ़े मियाँ के पैर पकड़ लिये। बोला, "बड़े मियाँ, अपना पता बताते जाओ। आज से एक हफ्ते के अन्दर-अन्दर रीवाँ के राजा की मूँछ का बाल नोचकर न ला दिया, तो मेरा नाम नुसरत हज्जाम नहीं।"

"अच्छी बात है," बड़े मियाँ खड़े होते हुए बोले। "तुम मुझे एक हफ्ते बाद शाही मसजिद की सीढ़ियों पर देखते रहना। किसी न किसी वक्त वहीं मिल लूँगा। मैं घूमता-फिरता आदमी हूँ, कोई एक ठिकाना नहीं है।"

बड़े मियाँ तो चले गए, मगर नुसरत हज्जाम ने रीवाँ के सफर की तैयारी शुरू कर दी। अर्जी लिखकर बादशाह सलामत से गैरहाजिरी की माफी तलब की और मिलने पर दोपहर होते-न-होते रीवाँ की तरफ कूच बोल दिया।

तीसरे दिन रीवाँ के राजा के सामने हाजिर होकर नुसरत हज्जाम ने सिर झुकाया और निवेदन किया। "हजूर, हिन्दुस्तान के शहंशाह का खास नाई हूँ। गुलाबजल दाढ़ी पर लगाते हुए जरा चुटकी सख्त हो गई, तो खड़े-खड़े निकलवा दिया। महाराज, मेरे बराबर सफाई से हजामत बनाने वाला सारे हिन्दुस्तान में मिल जाय, तो मूँछें मुड़ा दूँ। हजामत बनानेवाला सो जाता है, और जब जागता है, तो देखता है कि दाढ़ी साफ हो गई। सरकार कदरदानी करें।"

बादशाह अकबर से दण्डित हुआ व्यक्ति रीवाँ के यहाँ शरण पाए, तो इसमें स्वयं राजा साहब की ही बड़ाई थी। रीवाँ के राजा ने उसी दिन दाढ़ी बनवाई और नुसरत को राजकीय नाई का पद मिल गया।

अगले दिन हजामत बनाते-बनाते नुसरत की नरम उँगलियों ने राजा रामचन्द्र की लम्बी-लम्बी मूँछों के दो-चार बालों को भी रगड़ा और उनकी जड़ में उसके नाखून से निकली हुई कोकीन लग गई। हजामत खत्म होने तक कौशल

के प्रयोग से उसके हाथ तीन बाल आए। नुसरत की कुशल उँगलियों ने उन्हें खींच लिया और राजा को बिलकुल भी दर्द महसूस नहीं हुआ।

दूसरे दिन की हजामत के वक्त तक नुसरत रीवाँ छोड़ चुका था।

बातचीत के एक सप्ताह बाद, अपने वादे के अनुसार, बड़े मियाँ शाही मस्जिद की सीढ़ियों के पास मिले। नुसरत को देखते ही बड़ी उत्सुकता से उन्होंने पूछा, "लाए ?"

"एक नहीं, तीन," नुसरत ने प्रसन्नता से फूलकर उत्तर दिया।

"देखो, भाई," बड़े मियाँ ने कहा, "इस वक्त तो मेरे पास पचास हजार रुपये हैं। इसलिए एक बाल दे दो। अगर बादशाह सलामत से इसकी कीमत वसूल हो गई, तो बाकी दोनों भी मैं ले लूंगा। मंज़ूर है ?"

नुसरत को क्या इनकार हो सकता था। उसने पचास हज़ार को माले-गनीमत जाना। बड़े मियाँ ने बड़ी बारीकी से बाल का मुआयना किया और जब इतमीनान हो गया, तो पचास हज़ार रुपये नुसरत के हाथ पर रखे। नुसरत हैरत के साथ इस विचित्र सौदे को सम्पन्न होता देखता रहा और जब बूढ़े मियाँ वहाँ से चले गए, तब कहीं जाकर उसे यकीन हुआ कि एक बाल पचास हज़ार रुपये की कीमत का हो सकता है।

× × ×

इसके एक सप्ताह बाद रीवाँ के प्रमुख सरदारों में एक हलचल मच गई। जो भी सामन्त रीवाँ के राजा से मिलने आता उसके मुँह पर एक संशय का भाव दिखाई पड़ता और वह रीवाँ के राजा को विचित्र दृष्टि से देखता। आखिर राजा रामचन्द्र से न रहा गया और एक प्रमुख सरदार को विदा करते समय उसने कहा, "क्या बात है, आज जो कोई मुझसे मिलता है, ऐसे मिलता है, जैसे मैं राजा रामचन्द नहीं, कोई और हूँ ?"

"श्रीमान् ही इस रहस्य को भली भाँति जानते हैं," सामन्त ने कहा, "किसे मालूम था कि महाराज रामचन्द्र रीवाँ का प्रतापी राज्य बादशाह अकबर के यहाँ बन्धक रख सकते हैं ?"

"क्या कहा ?" राजा रामचन्द्र की त्योरियाँ चढ़ गईं। "रीवाँ का राज्य बन्धक

रखा···मैंने ! असम्भव ! यह हमारा अपमान है।"

"क्षमा चाहता हूँ, सरदारों के पास इसका प्रमाण है ··"

"किन सरदारों के पास है ?···तुम्हारे पास है ?" राजा रामचन्द्र ने मूंछें चबाते हुए कहा।

"जी, श्रीमान्, इसी सेवक के पास है। बादशाह अकबर का राजदूत आज मंत्रीजी के पास आया था। उनका कहना है कि राजा रामचन्द्र चार दिन के भीतर-भीतर रीवाँ का राज्य खाली कर दें क्योंकि जो रकम श्रीमान् ने आगरे के बादशाह से ली थी उसे वापस नहीं कर सके।"

"आप क्या बक रहे हैं !" राजा रामचन्द्र की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। "कहीं आप सब लोगों ने मिलकर आज भाँग तो नहीं पी ली ?"

"श्रीमान्, यह खबर जल्दी ही सारे राज्य में फैल जाएगी और राजपूतों के हौसले पस्त हो जाएंगे। उस समय सभी लोग भाँग पिये हुए होंगे यह नहीं समझा जा सकता।"

"उस राजदूत को हमारे सामने उपस्थित किया जाय," राजा रामचन्द्र ने कहा।

कुछ देर बाद ज़र्कबर्क पोशाक में एक सफेद दाढ़ी वाला बूढ़ा वहाँ आकर उपस्थित हो गया। पीछे कई सामन्त खड़े थे। राजा रामचन्द्र ने कहा, "यह गप इन सरदारों को आकर तुम्हींने सुनाई है कि हमने आगरे के बादशाह के यहाँ अपना राज्य गिरवी रख दिया है ?"

"जी, श्रीमान्," बूढ़े ने निवेदन किया। "यह सत्य मेरी ही वाणी से प्रकट हुआ है।"

राजा रामचन्द्र की उत्सुकता बढ़ गई। मन-ही-मन उबाल खाकर उसने पूछा, "तुम्हारे पास इसका प्रमाण है ?"

"जी, श्रीमान्," बूढ़े ने फिर विनयपूर्वक कहा, "इतना बड़ा प्रमाण जिसे कोई भी झुठला नहीं सकता। श्रीमान् ने तीन साल पहले आगरे की सल्तनत से एक ऐसी चीज़ ली थी, जिसकी कीमत रीवाँ राज्य है। श्रीमान् ने वचन दिया था कि तीन

साल के भीतर-भीतर उस चीज़ को वापस कर देंगे, नहीं तो रीवाँ का राज्य बादशाह अकबर को सौंप देंगे···"

"सरासर झूठ है," रामचन्द्र ने तलवार की मूठ पर हाथ रखते हुए अपना क्रोध प्रदर्शित किया।

"कृपा करके मेरे सिर को एक राजदूत का सिर समझिए," बूढ़े व्यक्ति ने राजा रामचन्द्र की तलवार की मूठ पर नज़र गड़ाकर कहा। "मेरे पास प्रमाण है, और वह है श्रीमान् की मूँछ का एक बाल, जिसे रीवाँ के राज्य के बदले श्रीमान् ने आगे काम आने के लिए बादशाह अकबर के हज़ूर में बन्धक रखा था।"

"ओह!" राजा रामचन्द्र ने अपने कानों पर हाथ रख लिये। "इतना बड़ा झूठ आज तक नहीं सुना था···"

लेकिन तब तक बूढ़ा एक नक्काशीदार सोने की खूबसूरत और कीमती डिबिया अपने कपड़ों के भीतर से निकाल चुका था। उसने उसे खोला और राजा रामचन्द्र के सामने रख दिया। "प्रमाण उपस्थित है, श्रीमान्, अपने राज्य के अच्छे-से-अच्छे पारखी को बुलाकर हजूर इस बाल की पहचान करवा सकते हैं।"

राजा रामचन्द्र ने स्वयं डिबिया उठाकर उसमें से बाल को निकाला; उसे एक ही नज़र देखकर उन्होंने कहा, "नहीं, कोई ज़रूरत नहीं है। हम इसे पहचान सकते हैं। यह हमारी ही मूँछ का बाल है।"

"श्रीमान् की परख बेदाग है," बूढ़े व्यक्ति ने कहा।

"लेकिन हमारे साथ चालाकी खेली गई है। यह क्या चीज़ थी, जो हमने अपना राज्य बन्धक रखकर ली थी?"

"सद्भावना।"

"क्या!" रीवाँ नरेश आश्चर्य से बोले।

"जी, श्रीमान्, तीन साल हुए आपने बादशाह अकबर को वचन दिया था कि आप जल्दी-से-जल्दी उनके द्वारा आपको दी हुई सद्भावना को लौटा देंगे। बादशाह अकबर ने तीन साल तक उसकी प्रतीक्षा की, मगर आप आगरे के दरबार में अपने राजकुमारों को भेजते रहे, स्वयं कभी नहीं गए। आपको भय था कि शायद

बादशाह अकबर के सामने आपको सिर झुकाना पड़े। भय और सद्भावना साथ-साथ नहीं रह सकते। बादशाह अकबर आपको अपने अधीन नहीं रखना चाहते। वह सारे हिन्दुस्तान को एक शक्ति के रूप में देखना चाहते हैं। बिखरी हुई ताकतों में एक को दूसरी से मिलाने के लिए दो ही चीजें होती हैं। युद्ध या शान्ति सन्देह और भय युद्ध को जन्म देते हैं, सुविचार और सद्भावना शान्ति को। यदि युद्ध होगा, तो रीवाँ का राज्य आगरे की ताकत के सामने नहीं बचेगा; शान्ति। होगी तो आप आगरे के बादशाह के साथ तख्त पर बराबर-बराबर बैठेंगे, और ऐसा तभी होगा, जब आप आगरा जाएँगे—अपनी मूँछ का बाल वापस लेने के लिए आपको आगरे जाना ही होगा।"

राजा रामचन्द्र की दृष्टि स्थिर थी। सहसा नज़रें नीची करके वह बोले, "और अगर हम न जाएँ ?"

"तो आप रीवाँ का राज्य हार बैठे हैं, यह बाल इसका प्रमाण होगा", बूढ़े ने कहा, "सारा रीवाँ राज्य आपको घृणा की दृष्टि से देखेगा।"

राजा रामचन्द्र खिलखिलाकर हँस पड़े, "और जो हमें घृणा की दृष्टि से देखेगा वह इस ज़माने के चाणक्य राजा बीरबल को नहीं पहचान जाएगा। वाह, राजा बीरबल, यह आपकी ही अक्ल का नमूना...है !"

सामन्तगण आश्चर्य से यह व्यापार देख रहे थे। बीरबल का नाम सुनते ही उनकी आँखें फट गईं। राजा बीरबल सीधे हो गए और क्षण-भर में ही दोनों राजा एक-दूसरे के गले लगे हुए थे।

कहने की आवश्यकता नहीं कि राजा बीरबल रीवाँ के राजा को अपने साथ लेकर आगरा लौटे और बादशाह अकबर ने उनका असाधारण सम्मान किया। लेकिन राजा बीरबल तो साथ-ही-साथ स्वर्ग से बूढ़ों वाली दाढ़ी भी बढ़ाए आए थे और बादशाह के पुरखों का समाचार भी लाए थे। किसी प्रकार उन्होंने बादशाह को आकर बताया कि स्वर्ग में नाइयों की कमी है, बादशाह के पुरखों के बाल बढ़े हुए हैं, और किस प्रकार बादशाह ने यह सोचा कि नुसरत से अच्छा हज्जाम स्वर्ग में उनके पुरखों की सेवा करने के लिए नहीं मिल सकता—यद्यपि उसके जलने

के लिए जो चिता बनाई जाएगी वह किसी सुरंग के मुँह पर बनी हुई नहीं होगी—और किस प्रकार नुसरत हज्जाम ने बीरबल के पैरों पर माथा टेककर, उनके पचास हज़ार रुपये सूद सहित लौटाकर अपनी जान बख्शी करवाई और मुल्ला-दो-प्याज़ा की दाढ़ी मूंड़ने का सम्मान प्राप्त किया, ये सब बादशाह अकबर और राजा बीरबल की लोकप्रिय अनश्रुतियों की बातें हैं।

१५

सहपाठी

जनार्दन झा 'द्विज'

(१)

रात के बारह बजे होंगे। घनश्याम नाटक देखकर लौट रहा था। एक जगह पहुँचकर उसने देखा कोई विद्यार्थी सड़क की पटरी पर बिजली की रोशनी के नीचे, बैठा हुआ कुछ लिख रहा है। उसका कौतूहल नाच उठा। उसने गाड़ी रुकवा दी। उतरकर चुपचाप वह उसके पीछे जा खड़ा हुआ। विद्यार्थी अपने लिखने में इस तरह लीन हो रहा था कि उसे किसी के आने-जाने की कोई खबर नहीं थी। आश्चर्य भाव से लगभग दो मिनट तक उसी तरह निस्तब्ध खड़ा रहने के बाद, घनश्याम की विह्वल वाणी काँप उठी—"चन्द्र !"

चन्द्रमणि ने चौंककर पीछे देखा। उसी समय वह उठकर खड़ा हो गया और चकित होकर बोला—"घनश्याम ! इस समय तुम यहाँ कैसे ?"

"घर जा रहा था"—घनश्याम ने आर्द्रस्वर में कहा—"इस खम्भे के पास, इतनी रात को तुम्हें देखकर उतर पड़ा। क्या प्रतिदिन तुम इसी जगह लिखा-पढ़ा करते हो ?"

"हाँ"—कहकर चन्द्रमणि ने अपना सिर झुका लिया।

"तुम रहते कहाँ हो चन्द्र ?" उसका हाथ पकड़ते हुए घनश्याम ने पूछा—"मुझे अपने कमरे में ले चलोगे ?"

पटरी के दूसरी ओर एक गली थी। चन्द्रमणि ने कहा—"इसी गली में एक कच्चा घर है, उसी में रहता हूँ। तुम वहाँ जाकर क्या करोगे घनश्याम ?"

"क्या कर सकूँगा चन्द्र !"—उसने एक गहरी उसास छोड़कर जवाब दिया—"मैं थोड़ी देर वहाँ जाकर बैठना चाहता हूँ, तुमसे कुछ बातें किया चाहता हूँ। चलो मुझे अपना घर दिखा दो।"

चन्द्रमणि ने अपनी किताबें सँभाली; लिखने का सामान उठाया और कहा—"चलो।"

एक छोटा-सा घर था। एक टूटी हुई चौकी, कुछ कपड़े, थोड़ी-सी किताबें, और कोने में पड़े हुए अनाज के कुछ बर्तन, यही उस घर की सम्पत्ति थी। सभी चीज़ें अपने-अपने स्थान पर सँभाल कर रखी हुई थीं, गंदगी का कहीं नाम नहीं था। इसी में चन्द्रमणि रहता था।

घर में घुसते ही उसने दीपक जलाया और अपने अथिति का हाथ पकड़कर कहा—"आओ भाई, इसी चौकी पर बैठ जाओ। गरीब के घर आये हो, कष्टों की कमी न होगी।"

घनश्याम का हृदय उमड़ आया। चौकी पर बैठते हुए उसने पूछा—"तुम अकेले हो चन्द्र ?"

"हाँ !"

"तुम्हारे घर के और लोग कहाँ रहते हैं ?"

"स्वर्ग में।"

"स्वर्ग में ! क्या तुम्हारे माँ-बाप नहीं हैं ?"

"नहीं।"

"तुम खाते-पीते कैसे हो ?"

"स्वयं उपार्जन करके, स्वयं भोजन बनाकर।"

सन्नाटे में आकर घनश्याम थोड़ी देर तक चुप हो रहा, फिर उसने पूछा—"दोनों समय अपने ही हाथों से भोजन बनाते हो ?"

"मैं अपना सब काम अपने ही हाथों से करता हूँ घनश्याम !" चन्द्रमणि ने उत्तर दिया—"इस दुनिया में मैं अकेला अवश्य हूँ, पर असहाय नहीं हूँ। मनुष्य को भगवान् ने असहाय बनाया ही नहीं। जो अपने हाथ-पैर से पूरा काम लेना नहीं जानता, वह पराधीन है; वही दुखी है, वही असहाय है।"

"तुम्हारा खर्च कैसे चलता है चन्द्र ?"—घनश्याम ने उसके हाथ पकड़कर बड़ी नम्रता से कहा—"क्षमा करना, यह प्रश्न तो पूछना नहीं चाहिए, पर मैं जानता हूँ, इससे तुम दुःखी न होगे।"

"दुखी होने की इसमें कौन-सी बात है भाई !"—चन्द्रमणि ने उत्तर दिया—"निर्धनता कोई पाप नहीं है। मैं इसे छिपाना नहीं चाहता। जिस गली में अभी तुम पधारे हो, उसमें सभी मजदूरी करके ही अपनी जीविका चलाते हैं। मैं भी उन्हीं में से एक हूँ।"

"तुम मजदूरी करते हो ?"—घनश्याम ने कुछ आश्चर्यमिश्रित दुःख के साथ पूछा।

"हाँ, मैं मजदूरी करता हूँ।"—चन्द्रमणि ने कहा—"अपने इस छोटे-से मुहल्ले की नालियाँ साफ करता हूँ। इसकी गलियों में झाड़ू लगाता हूँ। सायंकाल दो घंटे तक मुहल्ले के मजदूर बच्चों को पढ़ाया करता हूँ। यही मेरी जीविका का उपाय है, इसी से जो कुछ मिल जाता है उसी पर अपना निर्वाह करता हूँ।"

"और इस हालत में रहते हुए भी तुम सदैव अपनी कक्षा में प्रथम रहते हो ?"—घनश्याम ने आश्चर्य-विस्फारित नेत्रों में पानी भरकर पूछा।

"यह भगवान् की कृपा है और तुम मित्रों का आशीर्वाद।"—कहकर चन्द्रमणि ने सिर झुका लिया।

"चन्द्र !"

"भाई !"

"तुम मेरी एक विनती सुनोगे ?"

"आज्ञाकारी तो मै तुम्हारा सदा से हूँ घनश्याम।"

चन्द्रमणि ने प्रेम से उसका हाथ पकड़कर पूछा—"तुम आज इस तरह मुझे क्यों लज्जित कर रहे हो ? कहो, क्या चाहते हो ?"

"तुम मेरे घर पर चलकर मेरे साथ रहो।"—घनश्याम ने प्रार्थना के स्वर में कहा—"मैं तुम्हारी सेवा करके अपने को धन्य बनाऊँगा ! मुझे अपने जीवन को सुधारने का अवसर दो। चलो, मेरे साथ घर चलो।"

प्यार को यह अयाचित निधि पाकर चन्द्रमणि विह्वल हो उठा। उसने उसे गले लगाकर उत्तर दिया—"घनश्याम ! मेरी दीनता दयनीय नहीं है। तुम मुझे जिस प्रकाश में ले जाना चाहते हो, उसका यह तेज मेरी ये आँखें न सह सकेंगी। कदाचित् भगवान् मुझे कुछ विशेष प्यार करते हैं, इसलिए उन्होंने मुझे इतना

गरीब बनाया है। उनकी इच्छा है कि मैं इसी अवस्था में रहकर अपने को उसके योग्य बनाऊँ। तुम मुझे उनकी इस इच्छा के विरुद्ध ले चलने का उपक्रम न करो। चुपचाप इसी झोंपड़ी में रहकर अपना काम करने दो। मेरे प्रति तुम्हारे हृदय में इतना स्नेह है, इसी को मैं बहुत समझता हूँ। इससे अधिक मुझे और कुछ न चाहिए।"

घनश्याम सिसक-सिसककर रो रहा था। चन्द्र ने फिरकर कहा—"तुम इस तरह मुझे विह्वल न बनाओ भाई! कभी-कभी मेरी झोंपड़ी में आ जाया करो, इसी से मैं सुखी रहा करूँगा, जाओ, घर के लोग चिन्तित हो रहे होंगे।"

घनश्याम आँसू पोंछता हुआ अपनी गाड़ी में जा बैठा।

(२)

"क्या मुझे तुम सचमुच प्यार करते हो घनश्याम?"

"हाँ, कहने का साहस नहीं होता चन्द्र!"—घनश्याम ने कुछ व्यथित होकर उत्तर दिया—"मैं तुम्हारे किस योग्य हूँ कि तुम्हें सचमुच प्यार करने का दावा करूँ?"

"तो क्या तुम मुझ पर दया करते हो?"

"नहीं; उसका पात्र तो मैं स्वयं हूँ।"—घनश्याम ने व्यग्र होकर उत्तर दिया—"इससे अच्छा तो तुम्हारा पहला ही प्रश्न था। कहो, साफ-साफ कहो, तुम आज मुझसे इस तरह की बातें क्यों कर रहे हो?"

"पहले बता दो, मेरे लिए तुम्हारे हृदय में कोई जगह है?"

"यदि मैं इसका उत्तर 'हाँ' में दूँ तो?"

"तो मैं तुमसे कुछ माँगूंगा; दोगे?"

"हाँ?"

"तो तुम मुझे एक वचन दो।"

"माँगो।"

"वचन दो कि आज से तुम शराब न पिओगे।"

घनश्याम उसके पैरों पर गिर पड़ा और रोता हुआ बोला—"आज तुम्हारे सामने आने के पहले ही मैं इसकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, चन्द्र! मुझे इसकी चाट

नहीं है, मैंने बुरी संगत में पड़कर ऐसा पाप किया। इसके लिए जन्म-भर पछताऊँगा। मुझे क्षमा करो, अपने योग्य बनाओ।"

चन्द्र ने उसे उठाकर गले लगा लिया और पूछा—"सिगरेट भी पीते हो ?"

"हाँ, उसी की दुर्गन्ध छिपाने के लिए।"

"इसे भी छोड़ दो तो तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँ।"

"मुझे अपनी शरण में ले लो।"—कहकर वह अपने मित्र की छाती से चिपक गया और रोता हुआ बोला—"अब से किसी भी बुरी लत को मैं अपने पास न फटकने दूँगा।"

"नाटक, सिनेमा और मिठाइयों के पीछे पैसे बरबाद कर तुम अपने स्वास्थ्य को चौपट किए जा रहे हो"—चन्द्रमणि ने कहा—"अब भी तो इन प्रलोभनों पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा करो। पास में पैसे हों, तो उनका सदुपयोग होना चाहिए।"

"अब से तुम्हें इन्हें इसकी भी शिकायत न रहेगी।"—कहकर घनश्याम ने बड़ी कारुणिक दृष्टि से अपने मित्र की ओर देखा। उसकी सजल आँखें उसकी समस्त दुर्बलताओं के लिए क्षमा माँग रही थीं, उसका मुख-मंडल उसकी समस्त प्रतिज्ञाओं के पालन करने का विश्वास दिला रहा था।

उसी दिन से घनश्याम ने बुरी संगत छोड़ दी, अपनी बुरी आदतें छोड़ दीं। चन्द्रमणि की छाया उससे मलिन न हो जाय, इसी भय से वह पल-पल अपनी पवित्रता की परीक्षा लेता, कोई ऐसा काम नहीं करता जिससे उसका जीवन-सौन्दर्य थोड़ी दर के लिए भी फीका पड़ जाय। इसका एक प्रत्यक्ष फल तो यह हुआ कि वही घनश्याम, सदैव कक्षा में सबसे पिछड़ा रहता था, उस साल की परीक्षा में सबसे आगे निकल गया।

चन्द्रमणि उससे एक नम्बर के लिए पीछे रहकर भी बड़ा प्रसन्न था। क्यों न होता ? घनश्याम और उसमें कोई भिन्नता तो थी नहीं ! दोनों दो शरीर एक प्राण हो रहे थे।

(३)

यों तो सारे शहर में हैजा फैल चुका था, पर मजदूरों के उस मुहल्ले में, जहाँ

चन्द्रमणि रहता था, बीमारी ने विकराल रूप धारण कर लिया था। शहर के लोग एक-एक करके भागने लगे। घनश्याम के माँ-बाप ने भी जब शहर छोड़ने की तैयारी की, तो उसे बड़ा दुःख होने लगा। उसने कहा—"माँ! मैं चन्द्र के पास जाता हूँ। उस मुहल्ले में वह अकेला ही काम कर रहा है, उसकी मदद करूँगा।"

"पागल हो गए हो क्या बेटा?"—माँ ने पूछा।

"हाँ, उसके बिना इस समय बहुत पागल हो उठा हूँ। मुझे तुम लोगों के साथ नहीं जाना है। मैं वहीं जाकर रहूँगा और उसे थोड़ी-बहुत सहायता पहुँचाऊँगा। तुम लोगों को जहाँ जाना हो; जाकर रहो।"

उसकी माँ उधर उसके पिताजी को बुलाने गई, इधर घनश्याम घर से बाहर निकल गया।

मजदूरों का वह मुहल्ला श्मशान से भी अधिक भयावह मालूम हो रहा था। गली में घुसते ही उसने चन्द्र के कराहने की आवाज़ सुनी। अस्त-व्यस्त भाव से वह उस घर में घुस गया। देखा, एक स्त्री उसकी सेवा कर रही है और वह रोग के कारण विवर्ण होकर तड़प रहा है।

घनश्याम को देखते ही वह स्त्री बोल उठी—"आप इस आग में क्यों कूदने आए बाबूजी? इन्हें देखकर आप क्या कीजिएगा? यही तो इस मुहल्ले के सब कुछ थे। हमारे ही बाल-बच्चों की सेवा करते-करते आज ये भी हमें अनाथ बनाकर जा रहे हैं! इन्हें अब हम रोक तो सकते नहीं! आप क्यों आए? आप हैं कौन?"

"मैं इनका सहपाठी हूँ।" कहकर घनश्याम रोगी के पास बैठ गया और सजल स्वर में बोला—"चन्द्र!"

रोगी ने एक बार अपने मित्र की ओर देखा और बड़े कष्ट से धीरे-धीरे कहा—"मुझे अब विदा करो, इन गरीबों को न भूलना।"

"चन्द्र!"—कहकर घनश्याम उसके गले से लिपटकर बच्चों की तरह रोने लगा।

चन्द्र ने किसी तरह अपनी बाँहें उसके गले में डाल दीं। थोड़ी ही देर में उसने हिचकियाँ लीं और आँखों का अन्तिम परदा गिरा दिया।

इसी समय घनश्याम के पिता भी उसी घर में घुस आए और अपने बेटे को सँभालते हुए बोले—"इस तरह मेरा सत्यानाश क्यों कर रहे हो ! चलो, जल्दी यहाँ से चले चलो।"

घनश्याम ने रोते ही रोते कहा—"बाबूजी ! ईश्वर के लिए मुझे अभी यहीं रहने दीजिए। मेरा चन्द्र जो काम अधूरा छोड़ गया है, उसे पूरा किए बिना मैं न मरूँगा।"
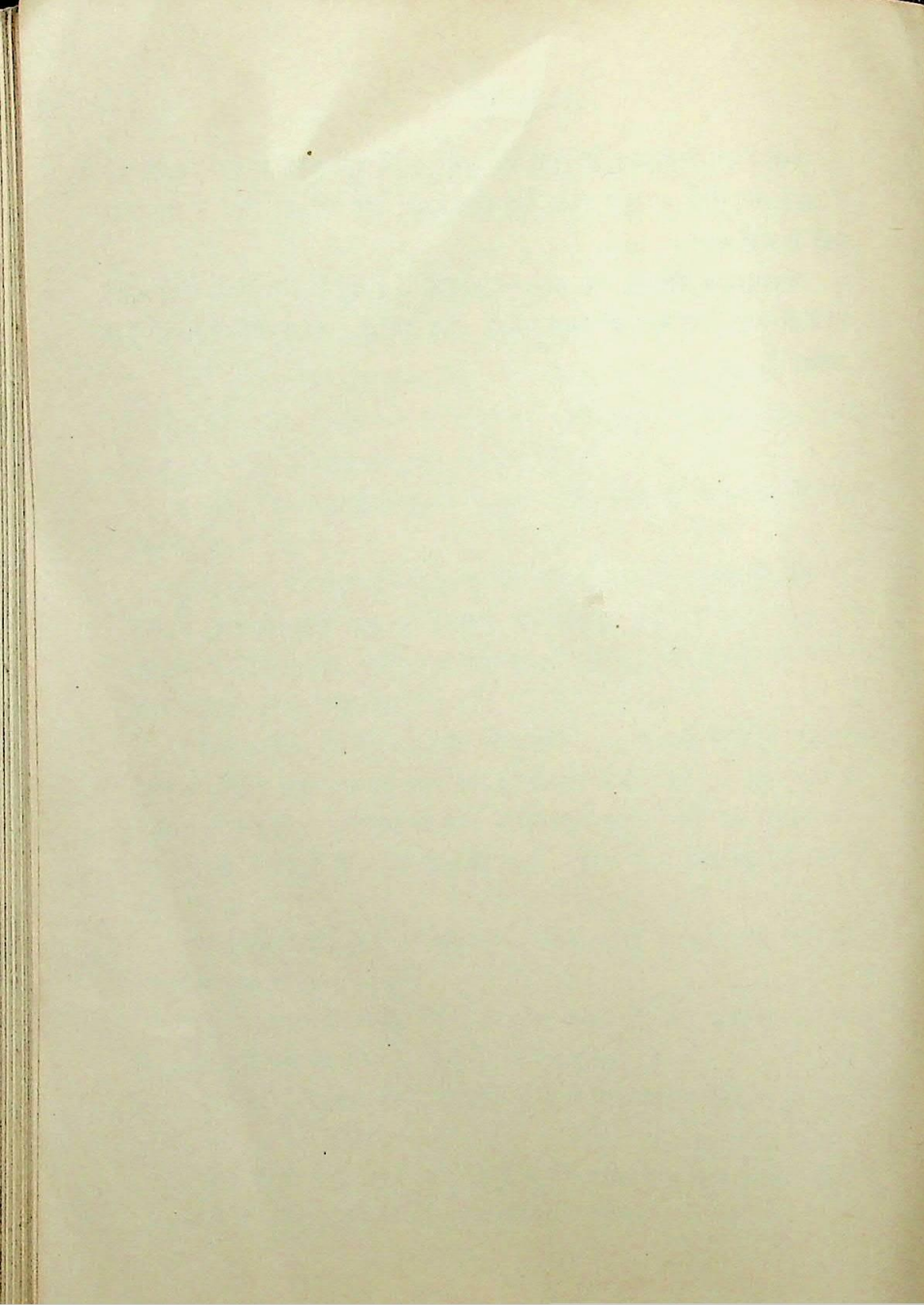
कहानियों के शब्दार्थ और प्रश्न

१. शरणागत

शब्दार्थ

वीहड़=घना; कर्मण्य और अकर्मण्य=उपयोगी और अनुपयोगी, सक्रिय और निष्क्रिय; व्यवहारियों=बनियों, व्यापारियों, जिनके साथ अपना व्यापारिक सम्बन्ध हो; पेशगी=अग्रिम, एडवांस ; गढ़ी=छोटा किला, गढैया ; शामत का मारा=दुर्भाग्य ग्रस्त ; मुकर्रर=नियत; आगन्तुक=आये हुए; अव्यक्त लोकमत का दवदवा=आकार रहित लोक-धारणा का आतंक ; स्थगित कर दिया=कुछ देर के लिए टाल दिया ; सेंत-मेंत का=मुफ्त में ; सरोकार=मतलब ; घिग्घी बँध गई=भय से वाणी रुक गई ; गाँठ बाँध लेना=भविष्य के लिए स्थायी रूप से याद रख लेना।

प्रश्न

१. रज्जब कौन था ? ठाकुर ने उसे अपने घर में क्यों शरण दी ?
२. ठाकुर का चरित्र-चित्रण कीजिए।
३. 'बुन्देला शरणागत के साथ घात नहीं करेगा।'—ठाकुर के इस कथन का मर्म समझाइए।
४. इस कहानी में आये हुए मुहावरों का अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए।

२. छोटा जादूगर

शब्दार्थ

कलनाद=मधुर ध्वनि ; गम्भीर विषाद=गहरा शोक या रंज; अभाव में ही सम्पूर्णता थी=साधन हीनता में भी जीवन्तता थी; पथ्य=रोगी के लिए उपयुक्त खान-पान की वस्तु ; दीर्घ निश्वास=दुःख की लम्बी गहरी साँस ; दंग रह गए=आश्चर्य में पड़ गए; नौ-दो ग्यारह हो गया=रफूचक्कर हो गया, गायब हो गया ; आँख बदल गई=भिन्न दृष्टि से देखने लगे ; अविचल भाव से=निश्शंक भाव से, निडर भाव से; भौंचक्का=आश्चर्य के कारण स्तब्ध।

प्रश्न

१. 'छोटा जादूगर' कौन था ? उसका विस्तृत परिचय दीजिए।
२. 'बालक को जरूरतों ने कितना शीघ्र चतुर बना दिया। यही तो संसार है।' इस कथन के आधार पर 'छोटा जादूगर' का चरित्र-चित्रण कीजिए।
३. कार्निवल मैदान का और बोटानिकल उद्यान का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
४. यह कहानी पढ़ते समय हमारे मन में कहाँ-कहाँ करुण भावना का संचार होता है, और क्यों ?
५. छोटा जादूगर और उसके परिवार की दीन दशा का वर्णन कीजिए।

३. ताई

शब्दार्थ

अर्द्धांगिनी=पत्नी ; रुखाई=रूखे भाव से ; शुष्क=सूखा, नीरस ; अमानुषिक=जो मनुष्य के करने योग्य न हो, मनुष्य के लिए शोभाजनक न हो; अपनी ही ओटे जाती हो=बिन दूसरी की सुने अपनी ही कहती जाती हो; पोच=लचक, कच्ची, पोली ; की बदौलत=के कारण ; सुकृति=अच्छे कार्य, कीर्तिकर कार्य ; चोली दामन का-सा साथ=घनिष्ठ सम्बन्ध ; अन्तर्निहित=भीतर भरे हुए ; प्रस्फुटित करके=अंकुरित करके, फोड़कर ; नींद-सी टूटी=अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हुआ ; व्यंग्य की तीक्ष्ण गन्ध मालूम हुई=व्यंग्य की कड़वाहट जान पड़ी ; गिरगिट=एक जानवर जो देखते ही देखते कई रंग बदल लेता है; घी के चिराग जलाऊँगी=मंगल मनाऊँगी ; भृकुटि=भौंह; अप्रतिभ=मन्द; सतृष्ण नेत्रों से=ललचाई आँखों से ; कलेजा मुँह को आ गया=करुणा से विह्वल हो उठी।

प्रश्न

१. रामेश्वरी मनोहर को छिपे-छिपे प्यार क्यों करती थी ? उसके चरित्र में कब और किस प्रकार परिवर्तन हुआ ?
२. रामजीदास का चरित्र-चित्रण कीजिए।
३. इस कहानी में हिन्दू-समाज की किन दुर्बलताओं की ओर लेखक ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है ? अपने विचार लिखिए।
४. मनोहर की बाल-क्रीड़ा का वर्णन कीजिए।

४. उसने कहा था

शब्दार्थ

कोड़ों से=चाबुकों से; बंबूकार्ट वालों की=बाँस की गाड़ी वालों की; मरहम=चिकना लेप; बाछा=बादशाह; फेटों=मोटी पगड़ियों या साफ़ों; चितौनी=चेतावनी; लीक=लकीर; सुथना=पाजामा, सलवार (?); गुथ रहा था=उलझ रहा था; गड्डी=जेट, जत्था; कुड़माई=मँगनी, सगाई; खंदक=खाई ग़नीम=शत्रु, विपक्षी; गैबी=छिपा हुआ, अजनबी (अरबी); जलजला=भूकम्प; रिलीफ=सहायता या विश्राम देने वाली सेना की टुकड़ी; झटका करना=बकरा काटना (एक ही वार में); फिरंगी मेम=विलायती मेम; धावा=आक्रमण; कमान=हुक्म; मत्था टेकना=सिर टिकाना; पाधा=उपाध्याय, पुरोहित; तर्पण=जलांजलि, पितरों को तृप्त करने की क्रिया; बूँटे=पेड़; लाड़ी होरां=स्त्रियों आदि को; माँदे पड़ना=बीमार पड़ना; मुरब्बा=ज़मीन का प्लॉट; घरबारी=परिवार वाले सद्गृहस्थ; बरान कोट=ओवर कोट; हुज्जत=बहस; माथा ठनका=किसी गहरे विचार से सिर हिला; खोते पर=गधे पर; खानसामा=बवर्ची, खाना आदि बनाने वाला; कयामत=मौत; सोहरा=ससुर; खबर लेता हूँ=बदला लेना, मजा चखाना; मुहाने पर=सिरे पर; चित्त हो गए=सीधे पड़ गए; जेब के हवाले किया=जेब में डाल दिया; मंजा=खाट, चारपाई; क्षयी=क्षय (टी० बी०) का रोगी; बाणभट्ट=संस्कृत के एक प्रसिद्ध कवि; दंतवीणोपदेशाचार्य=शीत में कटकटाने वाले दाँतों की वीणा बजाने में कुशल, धुंध=कुहरा; लाम=फौज, सेना, भीड़-भाड़; नमक हलाली=वफ़ादारी राज-सेवा, कृतज्ञता; तीमियों की=स्त्रियों की; आँचल पसारती हूँ=याचना करती हूँ; ओबरी=मकान के भीतर का कमरा; पट्ट=जंघा, जाँघ; हाड़=आषाढ का महीना।

प्रश्न

१. 'उसने कहा था' कहानी के शीर्षक की विशेषताएँ बताइए।

२. अमृतसर के बाज़ार तथा खन्दक का अपने शब्दों में वर्णन कीजिए।

३. लहनासिंह का चरित्र-चित्रण कीजिए। उसके चरित्र की कौन-सी विशेषताएँ मुग्ध करने वाली हैं ?

४. इस कहानी की वे सब विशेषताएँ बताइए जो इसे एक अत्यन्त लोकप्रिय व कलापूर्ण कहानी के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं।

५. दो बैलों की कथा

शब्दार्थ

निरापद सहिष्णुता=किसी को भी कष्ट न पहुँचाने की सीमा तक की सहनशीलता; कुलेल=क्रीड़ा, खेल, मनोरंजन; पराकाष्ठा=सीमा; गम खाना—संतोष रखना; ईंट का जवाब पत्थर से देना=सवाया-ड्योढ़ा मुकाबला करना; चौकस=सावधान; विचार-विनिमय=विचारों का आदान-प्रदान; वेगानों से=परायों-से, अपरिचित-से; अभूतपूर्व=जैसा पहले न हुआ हो; प्रतिवाद=विरोध, प्रत्याख्यान; फूल की छड़ों से भी न छूना=अत्यन्त कोमल व्यवहार करना; मसलहत=गुप्त हेतु, रहस्य, शुभ कामना; आत्मीयता=अपनापन; बरकत=वृद्धि; नौ-दो ग्यारह होना=रफूचक्कर होना, भाग छूटना; जान हथेलियों पर लेकर=प्राण देने के लिए तैयार होकर; आदी=अभ्यस्त, काँजी हौस=चौपायों को बाँध-सम्हालकर रखने की जगह; साबिका पड़ा=काम पड़ा, अवसर आया; बूते पर=शक्ति या साधन के सहारे; जान से हाथ धोना=प्राण देना; प्रतिद्वन्द्वी=विरोधी, जोर-आजमाई=बल-परीक्षा, शक्ति की जाँच; मुद्रा=मुख की भाव-रेखा; नगीच=पास; जी तोड़कर काम करना=पूरी शक्ति लगाकर काम करना; दाँतों पसीना आना=अत्यन्त श्रम पड़ना; बगलें झाँकना=विवशता से इधर-उधर ताकना; मरम्मत करना=शत्रु का इलाज करना, मजा चखाना; खबर लेना=बदला चुकाना।

प्रश्न

१. 'मूक पशुओं के हृदय में उतरकर उसकी हलचलों को समझने की गहरी शक्ति प्रेमचन्दजी में विद्यमान है।'—'दो बैलों की कथा' के आधार पर समझाइए।
२. इस पाठ में आये हुए मुहावरों का अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए।
३. मित्रता का सच्चा आदर्श क्या है? दो बैलों के कार्य-कलाप द्वारा स्पष्ट कीजिए।
४. यह कहानी वस्तु-प्रधान है या चरित्र-प्रधान? वस्तु-प्रधान और चरित्र-

प्रधान कहानी का अन्तर स्पष्ट करते हुए उत्तर दीजिए।
५. इस कहानी में युग-जीवन का चित्रण किस प्रकार हुआ है ?
६. आप 'दो कुत्तों की कथा' लिखिए।

६: अकबरी लोटा

शब्दार्थ

आँख सेंकने के लिए=मधुर स्पर्श व दर्शन-मात्र के लिए भी; बुल्ला=बुद्बुद; बिलाने=विलीन होने; मीठी मार=भीतरी महीन मार; फिक़रा=वाक्य; उधेड़-बुन=संकल्प-विकल्प ; बेढंगी=विचित्र, अजीब ; गढ़न=रचना; बाप डमरू और माँ चिलमची=बेमेल के, विचित्र संयोग वाले; दाहिने देखा न बाएँ=किसी प्रकार का आगा-पीछा न सोचा; उल्का को लजाता हुआ=बहुत तेज रफ़्तार से; न्यूटन=यूरोप का प्रसिद्ध वैज्ञानिक जिसने पृथ्वी की आकर्षण-शक्ति का रहस्य मालूम किया था; खुराफाती=उपद्रवी, कुछ न कुछ रचते रहने वाला; ईजाद=आविष्कार; काटो तो बदन में खून नहीं=भयभीत हो गए; नख-शिख तक=पाँव के अँगूठे से सिर की चोटी तक; दो और दो जोड़कर=चारों ओर की स्थिति की भली भाँति कल्पना करके; सायबान=छाया के लिए छप्पर या टीन; सांगोपांग=अंग-उपांग सहित, पूरी तरह; प्रकाण्ड कोष=लबालब भरा खजाना; हिरासत=क़ैद; इजाज़त=आज्ञा; फेंसी=अच्छा-खासा, मन चाहा, मुँह माँगा; ताव आ गया=जोश आ गया; कूँची=तूलिका, ब्रश (रंग से भरा); डींग=गर्वोक्ति; बिल्लौर=एक बहुमूल्य पत्थर; दून की नहीं ले सकते=बढ़-चढ़कर बात नहीं कर सकते; अन्तर्धान=लुप्त, गायब; कान पकना=सुनते-सुनते तंग आ जाना।

प्रश्न

१. इस कहानी की रचना की मुख्य प्रेरणा अथवा उद्देश्य क्या है ?
२. लाला झाऊलाल को रुपये किस प्रकार प्राप्त हुए ?
३. यह कहानी आपको मनोरंजक क्यों लगती है ?
४. इस कहानी की भाषा-शैली की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।

७. एक गौ

शब्दार्थ

कद्दावर=अच्छे, ऊँचे कद वाले; परवरिश=पालन-पोषण, रक्षा; बेचारगी=विवशता; गरीबी' चुनांचे=इसलिए; तोड़=कसर, कमी; तले=नीचे; इतमीनान=आश्वासन, भरोसा; मुकाबले की=समान, वैसी ही, एक-सी शक्ति, योग्यता वाली; बे-ऐतबारी=अविश्वास; घोसी=घोष वाले, गाय-भैंस वाले, दूध बेचने वाले; जी भरा आ रहा था=करुणा से गिलगिला रहा था; आश्वासन=भरोसा, विश्वास; अनबूझ भाव से=समाधान न पाकर, समस्या; में डूबा हुआ सा, आँखों में धूल झोंकना=धोखा देना; ओछी=हेठी; बिथा=व्यथा, मानसिक कष्ट; टुक=क्षण-भर, ज़रा, थोड़ी देर; अभियुक्त=अपराधी, जिस पर अभियोग, लगा हो; असह्य=जो सहा न जा सके; दुष्कृत्य=बुरा काम, पाप कर्म; किस विधि=किस प्रकार; सञ्ज्ञा मेरे जुटाए जुटती नहीं=नाम, रूप, देते नहीं बनता।

प्रश्न

१. 'प्रेमचन्द की तरह ही जैनेन्द्रकुमार भी पशु-मनोविज्ञान के गहरे पारखी हैं।' 'एक गौ' कहानी के आधार पर इस कथन की सत्यता प्रमाणित कीजिए।
२. 'दो बैलों की कथा' और 'एक गौ'—इन दोनों कहानियों की तुलना कीजिए।
३. प्रेम से पशु भी किस प्रकार वश में हो जाते हैं? इस कहानी के आधार पर समझाइए।
४. सुन्दरिया और हीरासिंह की बातचीत किस विषय पर होती थी?
५. इस कहानी की शैलीगत विशेषताओं को बताते हुए यह दिखाइए कि इसमें हमारे युग की कौन-सी पीड़ा को वाणी दी गई है?
६. इस कहानी में आये हुए मुहावरों को छाँटिए और उनका अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए।

८. प्रायश्चित्त

शब्दार्थ

करधनी=तगड़ी, कमर में बाँधी जाने वाली सोने या चाँदी की जंजीर,

कँधौरा ; छक्के पंजे = पाँचों उँगलियाँ घी में, पौ बारह; नदारद = लुप्त, अन्तर्धान, काफ़ूर, चम्पत ; जिन्स = आटा-दाल, घी आदि सामान ; परक गई = परच गई, अभ्यस्त हो गई ; दुश्वार = मुश्किल ; सतर्क = सावधान ; मोरचाबन्दी = शत्रु से मुकाबला करने के लिए सैन्य व्यवस्था ; सरगरमी = अत्यन्त व्यस्त कार्य-कलाप ; चम्पत = लुप्त हो जाना, गायब हो जाना ; खून सवार होना = भीषण क्रोध के वशीभूत होना ; न रहे बाँस न बजे बाँसुरी = न नौ मन तेल हो न राधा नाचे, मूल साधन ही नष्ट कर देना ; पतोहू = पुत्रवधू ; किफ़ायत = मितव्ययिता कमखर्ची ; अखरेगा = चुभेगा, खटकेगा।

प्रश्न

१. 'प्रायश्चित्त' कहानी की मुख्य विशेषताएँ बताते हुए यह दिखाइए कि यह इतनी मनोरंजक क्यों है ?
२. यह कहानी हिन्दू-समाज की किस दुर्बलता को हमारे सामने रखती है ?
३. 'प्रायश्चित्त' कहानी की शैली की क्या विशेषताएँ हैं ?

९. मनुष्य यह !

शब्दार्थ

मद्धम = धीमा, मन्द ; लील जाए = निगल जाए ; अन्यमनस्क भाव से = विचारों में डूबे-खोए से ; शुष्क = सूखा, नीरस ; स्थायित्व = स्थिरता ; दत्तचित्त होकर = एकाग्रता से ; सोल्लास = उल्लास सहित ; कान्तकामिनी = कमनी[illegible] सुन्दरी ; नफ़ीस = महीन, बारीक, उच्च कोटि का ; अनौचित्य = उचित न होन[illegible] विद्युत्-सा = बिजली के समान ; निमिष मात्र = पल भर ; स्निग्ध धूप = चि[illegible]ती रसीली धूप ; केशराशि = बालों का समूह ; परस = स्पर्श ; स्तब्ध = [illegible]वल, मुग्ध-से ; सलीके वाली = सफ़ाई, व्यवस्था व चतुराई वाली ; कुँवारे के तो [illegible]ढ़ाई पर होते हैं = कुछ दिनों के लिए माँग बहुत होती है ; विपन्नता = विपत्ति[illegible]स्तता, कष्ट व अभाव ; अनिंद्य = निर्दोष, पूर्ण ; नशा हिरन हो गया = नशा उ[illegible]र गया।

प्रश्न

१. 'मनुष्य यह !' कहानी के शीर्षक की स्पष्ट व विस्तृत व्याख्या की[illegible]ए।
२. पं० परसराम का चरित्र-चित्रण कीजिए। उनके चरित्र में कौ[illegible]-सी असंगति थी ?

३. यह कहानी यथार्थवादी है, या आदर्शवादी ? आदर्शवाद व यथार्थवाद का आशय बताते हुए उत्तर दीजिए।
४. विमला कौन थी ? उसका इस कहानी में क्या महत्त्व है ?

१०. अपना घर

शब्दार्थ

अवहेलना=घृणा, उपेक्षा ; हिरस=इच्छा ; फरमाइशें=माँगें; खून चूसती रहतीं=भीतर ही भीतर पीड़ा पहुँचातीं ; आकाश के तारे दीखना=निराशा के अन्धकार में डूबना ; दूध में गिरी मक्खी के समान=त्याज्य ; हथिया बैठा=अपने कब्जे में कर बैठा ; मिसरानी=खाना बनाने वाली ; बिंध-सा गया=आर-पार चुभ-सा गया ; चिट्टी=साफ, उजली ; स्तब्ध=ठिठका-सा, मौन, जड़ ; चलचित्र=सिनेमा की तसवीर ; आशा-तन्तु=आशा के सूत्र ; प्रबल प्रवाह=तेज बहाव ; स्वप्न-भंग=स्वप्न का टूटना ; प्रकृतिस्थ होकर=मानसिक दृष्टि से स्वस्थ होकर; आकाश से गिर पड़ी=घोर निराशा में डूब गई ; आतंक=दबदबा, रौब ; हाथ मलकर रह जाना=बेसहारा या लाचार हो जाना ; अविरल=अविराम, निरन्तर ; आकाश का चाँद मुट्ठी में आ गया=अपनी प्यारी से प्यारी कामना पूरी हो गई।

प्रश्न

१. उमा कौन थी ? उसके जीवन की करुण परिस्थिति का वर्णन कीजिए।
२. अपने मामा के घर में नीलम का मन क्यों दुःखी व अशान्त रहता था ? अपने शब्दों में लिखिए।
३. उमा अपना एक निजी स्वतन्त्र घर क्यों चाहती थी ?
४. इस कहानी की मुख्य विशेषताएँ क्या-क्या हैं ?

११. राजपूतानी का प्रायश्चित्त

शब्दार्थ

फूला न समाता था=आनन्द की सीमा न जानता था ; लट्टू=मुग्ध ; अगवानी=स्वागत ; मन में घर कर लिया=मन में बस गई ; हन्त=खेद या पश्चात्ताप का वाचक शब्द ; सजातीय=अपनी जाति के ; बख्शा=पुरस्कार में दिया,

भेंट किया; हृदयहीन=निर्मम; वक्तृता=भाषण; शुभ्रज्योत्स्ना=स्वच्छ, उज्ज्वल चाँदनी; विशाल नदी का पाट था=बहुत चौड़ा अन्तर था; प्रतिकार का विष-पान=बदले का विष पीना, किये का परिणाम भोगना; साख=साक्षी, आबरू, इज्जत; सहस्र गुना=सौ गुना; दाँत खट्टे कर दूँगा, कड़ी हार दूँगा, बुरी तरह हराऊँगा; नाईं=समान; वेतन ग्राही=वेतन ग्रहण करने वाले; दुन्दुभी=नगाड़ा; पासा पलट गया=बात उल्टी हो गई; साखे=पूर्वजों का विरुद; कलमा=कुरान; गजब ढा रही थी=कमाल कर रही थी; तुमुल संग्राम=भयंकर युद्ध; रसद=खाद्य सामग्री; गेहूँ के साथ घुन भी पिसेंगे=अपराधी के साथ निरपराध भी मारे जाएंगे; ईंट से ईंट न वजा देगी=बराबर का मुकाबला न करेगी; दीन=धर्म; निकाह=विवाह, शादी; कटाक्ष=बाँकी चितवन; घावों पर नमक छिड़कना=पीड़ित व्यक्ति को और अधिक जलाना; कुल भूषण=वंश की शोभा; नींद खुल गई=वास्तविक या सात्त्विक प्रकृति जाग्रत हो गई, चैतन्य जग गया; आँखें अब खुलीं=अब विवेक उत्पन्न हुआ; क्यों बाल बाँका हो=क्यों तनिक भी अनहित हो; प्राणों को हथेली पर रख ले= प्राण देने को सहर्ष तैयार हो जाय; आशा को श्यामल भूमि=आशा का आनन्ददायी अवसर; हृदय-वेधक =हृदय में आर-पार हो जाने वाला।

प्रश्न

१. वीरमदेव और राजवती का चरित्र-चित्रण कीजिए।
२. बन्हीगृह में राजपूतानी सुलक्षणा के मन में किन भावनाओं की आँधी उठी थी? उसका क्या परिणाम हुआ?
३. वीरभदेव की वीरता का वर्णन कीजिए।
४. सुलक्षणा का चरित्र रोचक और रतिशील क्यों है? सुलक्षणा और राजवती में से किसका चरित्र आपको अधिक आकर्षित करता है?
५. सुलक्षणा ने किस रूप में प्रायश्चित्त किया? वह झूठ क्यों बोली थी?
६. ऐतिहासिक कहानी किसे कहते हैं? उसकी क्या विशेषताएँ हैं?

१२. अनाथालय

शब्दार्थ

वसीयत=पैतृक सम्पत्ति; जीवनाधार=जीवन का सहारा; वली=

संरक्षक, अभिभावक; यतीमखाना=अनाथालय; अन्तर्वेदना=मानसिक पीड़ा; भोजन-वसन=भोजन-वस्त्र; जीविका-उपार्जन=रोटी कमाना।

प्रश्न

१. 'अनाथालय' कहानी के द्वारा लेखिका ने कौन-सी सामाजिक क्रान्ति करनी चाही है?
२. मोहन का चरित्र-चित्रण कीजिए।
३. धनियों की कोठी में मोहन को कैसा व्यवहार मिला?
४. मोहन ने कौन-सा नया प्रयोग किया? उसका क्या परिणाम निकला?

१३. मैना

शब्दार्थ

समाधान=हल; प्रतिशोध=बदला, प्रतिकार; सतर्क;=सावधान; नथ=नाक का एक प्रकार का गहना; अभीष्ट=वांछित; भतार=भर्तार, पति; डग भरता हुआ=कदम रखता हुआ; गैर=पराये; मुराद=इच्छा; सेवा-सुश्रूषा=सेवा-सहायता, टहल; घरौंदे=छोटे-छोटे घर; ममत्व=अपनापन; धूल-धूसरित=धूल में सने हुए; आत्म-विस्मृति दशा में=आत्म-विभोर होकर; फूटी आँखों भी नहीं देखना=किसी भी तरह न देखना; परिक्रमा करके=चारों ओर घूमकर; निर्वासित=देश से बाहर निकाला हुआ; हाथ-पाँव फूल गए=घबरा गया।

प्रश्न

१. 'मैना' कहानी में लेखक ने कौन-सी पारिवारिक समस्या उठाई है?
२. 'ताई' और 'मैना'—इन दोनों कहानियों की तुलना कीजिए।
३. मैना को सबसे अधिक प्यार कौन करता था?
४. मैना और मनोहर ('ताई' कहानी का) को बहन-भाई बनाकर आप उनकी क्रीड़ा का वर्णन कीजिए।

१४. मूँछ का बाल

शब्दार्थ

पारङ्गत=जो पार जा चुका हो, निष्णात, कुशल; जन्नत=स्वर्ग; कुतू-

हल=आश्चर्य, अचम्भा; सल्तनत=राज्य, शासन, साम्राज्य; चाँद सितारों से बातें करना=ऊँची से ऊँची होना; रूहें=आत्माएँ; इबादत=प्रार्थना, उपासना; खैरियत=कुशलता; ठंडा करके खाता था=उतावली नहीं करता था; प्रश्रय=आश्रय, सहारा; भृकुटी=आँखों के ऊपर की तीर के आकार-सी बालों की रेखा, भौंह; दखलअन्दाजी=हस्तक्षेप, विक्षेप, व्यवधान; खिराज=राजाओं से लिया जाने वाला कर; दलील=तर्क; बेशकीमती=बहुमूल्य; शुबे की=शक की, सन्देह की; हिमाकत=ढिठाई, धृष्टता; आईना=दर्पण, मुकुर; गलतफहमी=भ्रांति; नामाकूल=गलत, भद्दे, असभ्य; लातों का भूत बातों से नहीं मानता=सीधी उँगली से घी नहीं निकलता; गैरमुमकिन=असम्भव; कलम हो जाने के लिए=काट देने के लिए; नाचीज=तुच्छ; कक्ष=प्रकोष्ठ, सजा हुआ कमरा; पैगाम=सन्देश; एक-एक सीढ़ी चढ़ा जाता है=हरएक काम क्रमशः होता है; बरकत=वृद्धि, उन्नति; तिजारत=व्यापार; बेबात की हुज्जत=अकारण बहस; पेंच ताव खा रही थी=क्रोध व जटिलता का अनुभव कर रही थी; मरहूम=दिवंगत, स्वर्गस्थ; पाक हस्ती=पवित्र सत्ता; वरासत=सम्पति; नज़र किया=भेंट किया; मजलिस=सभा; मजबूरन=लाचारी से; तलब की=माँगी; कदरदानी=गुणग्राहकता; माले गनीमत=लाभ की बात; मुआयना=निरीक्षण; इतमीनान=भरोसा; हैरत=खेदपूर्ण आश्चर्य; बन्धक=गिरबी; त्योरियाँ=भौंहें; हौसले पस्त हो जाएँगे=उत्साह ढीला पड़ जाएगा; ज़र्कबर्क=कीमती व चमकीली; परख बेदाग है=परीक्षा की दृष्टि गहरी या निर्दोष है; प्रतीक्षा=इन्तज़ार।

प्रश्न

१. 'मूँछ का बाल' कहानी किस युग का वातावरण प्रस्तुत करती है? उस युग की विशेषताएँ बताइए।
२. 'मूँछ का बाल' कहानी की रचना का क्या उद्देश्य है? स्पष्ट कीजिए।
३. बीरबल कौन था? उसका इस कहानी से क्या महत्त्व है?
४. अकबर के राजसी ठाठ का वर्णन कीजिए।
५. इस कहानी के मनोरंजक होने के क्या कारण हैं?
६. इस कहानी की भाषा तथा शैली सम्बन्धी विशेषताएँ बताइए।

१५. सहपाठी

शब्दार्थ

कौतूहल नाच उठा=गहरी जिज्ञासा जाग पड़ी; निस्तब्ध=शान्त और मौन; आर्द्र स्वर=करुणा से गीला स्वर; उपार्जन करके=कमा कर; आश्चर्य-मिश्रित=अचम्भे से मिले हुए; निर्वाह करता हूँ=गुजारा करता हूँ; आश्चर्य विस्फारित नेत्रों में=आश्चर्य के कारण फैली हुई आँखों में; अयाचित निधि=बिना माँगे प्राप्त हुआ धन; उपक्रम=सम्भार, तैयारी; व्यग्र=चंचल; चाट=व्यसन, चस्का; प्रलोभन=लालच; जीवन-सौंदर्य=जीवन की सुन्दरता; दो शरीर एक प्राण=एक-दूसरे में लीन; विकराल=भयानक, भयंकर; आग में कूदना=जान-बूझकर अपने को कष्टों की ज्वाला में फेंकना।

प्रश्न

१. चन्द्रमणि का चरित्र-चित्रण कीजिए।
२. वह कौन-सी प्रेरणा थी जिसके कारण धनी घर के घनश्याम ने अपने आपको हैजे वाले क्षेत्र में भी सहर्ष पहुँचा दिया ?
३. चन्द्रमणि के जीवन की परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।
४. इस कहानी से क्या प्रेरणा मिलती है।
५. यह कहानी यथार्थवादी है या आदर्शवादी ? आदर्शवादी कहानी की क्या विशेषताएँ हैं ?

सामूहिक प्रश्न

१. अपनी पठित कहानियों के आधार पर कहानी में 'वस्तु' का महत्त्व निरूपित कीजिए।
२. चरित्र-चित्रण किसे कहते हैं ? प्रसाद, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र और गुलेरी का कहानियों के आधार पर चरित्र-चित्रण की विविध पद्धतियों को स्पष्ट कीजिए।
३. कहानी में संवाद का क्या स्थान व महत्त्व है ? नाटक और कहानी में संवादों की स्थिति पर विचार कीजिए।
४. कहानी में भाषा का क्या महत्त्व है ? प्रसाद, प्रेमचन्द व भगवतीचरण वर्मा की भाषा की विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।
५. इस संग्रह में ऐतिहासिक कहानियाँ कौन-कौन-सी हैं। श्रेष्ठ ऐतिहासिक कहानी की क्या विशेषताएँ होनी चाहिए ? सोदाहरण समझाइए।
६. कहानी का क्या उद्देश्य होता है ? 'उसने कहा था', 'एक गौ', 'प्रायश्चित्त' और 'मूंछ का वाल' कहानियों का उद्देश्य बताइए।
७. आदर्शवाद और यथार्थवाद किसे कहते हैं ? इनके आधार पर इस संग्रह की कहानियों का विभाजन कीजिए।
८. 'कहानी' किसे कहते हैं ? श्रेष्ठ कहानी की क्या-क्या विशेषताएँ हैं ? साहित्य की विधाओं में कहानी का क्या स्थान और महत्त्व है ?